संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

वर्ष 22 सितम्बर 2012 अंक 21

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2012

इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

ISSN : 0975 - 4342

संरक्षक	:	डा. परमजीत सिंह
प्रधान सम्पादक	:	डा. देवेन्द्र कुमार सिंह
सम्पादक मण्डल	:	डा. आर. सी. श्रीवास्तव
		डा. प्रतिभा गुप्ता
		डा. एस. एस. दाश
		श्री नवीन चौधरी
		श्री संजीव कुमार

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र

एनिमोन विटिफोलिया

सौजन्य : डा० मिथिलेश कुमार पाठक

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

अनुक्रमणिका

विशिष्ट निबन्ध

1.	पौधों के वानस्पतिक (लैटिन) नामकरण की जटिल संहिता : एक सरल परिचय	: सुधांशु कुमार जैन	1

वनस्पति विविधता

2.	गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य की जैव विविधता	: बिपिन कुमार सिन्हा, एवं रनजित दैमारी	6
3.	पूर्वोत्तर भारत के कीटभक्षी पौधे	: सुशील कुमार सिंह, हुसैन अहमद बरभूईया एवं दुर्गेश वर्मा	13
4.	असम की मिशिंग जनजाति के जनजीवन में वनस्पतियाँ	: कांगकन पगाग, नन्दिता शर्मा एवं सुशील कुमार सिंह	17
5.	फुयांग्पुई (ब्लु माउंटेन) राष्ट्रीय उद्यान, मिजोरम की वनस्पति	: समीरन पांडे एवं बिपिन कुमार सिन्हा	20
6.	मेघालय के महत्वपूर्ण औषधीय पौधे और उनकी उपयोगिता	: रमेश कुमार, सचिन शर्मा एवं बिपिन कुमार सिन्हा	24
7.	अरूणाचल प्रदेश में बेगोनिया की जातियाँ	: एस. एस. दाश	30
8.	अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह की कुछ उपयोगी वनस्पतियां	: जी. एस. लकड़ा, लाल जी सिंह, एम. वाय् कांबले एवं सी. मुरूगन	35
9.	ओडिशा के आदिवासी क्षेत्रों में जंगली फूलों के पारम्परिक घरेलू उपयोग	: हरीश सिंह 'भुजवान'	41
10.	मध्य प्रदेश की औषधीय वृक्ष सम्पदा	: विनीत कुमार रावत एवं अच्युता नन्द शुक्ला	46
11.	सुलतानपुर राष्ट्रीय उद्यान - वर्तमान परिदृश्य	: मानस रंजन देवता, एस. के. श्रीवास्तव एवं अरविन्द कुमार	51

राजकीय वृक्ष एवं पुष्प

12.	पश्चिम बंगाल के राजकीय वृक्ष एवं पुष्प	: आर. सी. श्रीवास्तव एवं सुबीर सेन	53
13.	पंजाब का राजकीय वृक्ष	: रमेश चन्द्र श्रीवास्तव	55

अपुष्पी वनस्पति

14.	शैवाल से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य	: प्रतिभा गुप्ता	56
15.	शैवाल के ज्वर एवं पीड़ा नाशी प्रभाव	: प्रतिभा गुप्ता	66
16.	हिमालय में विगलक कवकों की विविधता व संरक्षण	: दीपा मिश्रा, जे. आर. शर्मा एवं बी. पी. उनियाल	68
17.	पर्णांग एथिरियम का विस्तृत अध्ययन	: हिमांशु द्विवेदी एवं एच. सी. पाण्डे	74

चिर परिचित वनस्पति

18.	''नागलिंगम'' वृक्ष का महत्व : एक पुनरावलोकन	: रसानन्द कार, भावना जोशी, अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं ए. ए. अंसारी	78
19.	'गूलर' का महत्व : पुनरावलोकन	: ए.ए.अंसारी एवं भोलानाथ	80
20.	नीम का औषधीय एवं आध्यात्मिक महत्व	: भावना जोशी, अर्जुन प्रसाद तिवारी व ए. ए. अंसारी	82
21.	जटामांसी के औषधीय उपयोग एवं संरक्षण नीति	: पुष्पी सिंह एवं आरती गर्ग	85
22.	नागफनी (कैक्ट्स) : एक परिचय	: शिव कुमार	87
23.	सिसुण : एक उपयोगी पौधा	: भावना जोशी पाण्डे	94
24.	मुनि वृक्ष : अगस्त	: वीना चन्द्रा एवं महेन्द्र सिंह	97
25.	घास और उसकी उपयोगिता	: बंदना भट्टाचार्जी, पी. लक्ष्मीनरासिम्हन एवं अभिषेक भट्टाचार्जी	98

26.	पार्थीनियम : एक हरा कैन्सर	: अरविन्द कुमार, महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया एवं संदीप कुमार सिरावत	100
27.	बिदुल	: भोलानाथ घोष	102

तकनीकी परिदृश्य

28.	प्रदूषित वातावरण का पादपीय उपयोग द्वारा शोधन	: दुर्गेश वर्मा एवं सुशील कुमार सिंह	103
29.	पादप ऊतक संवर्धन	: गिरिराज सिंह पंवार	108
30.	जीवित वट मूल (जड़) सेतु	: हुसैन अहमद बरभूईया एवं सुशील कुमार सिंह	110
31.	राभा जनजाति का पारंपरिक पेय 'यविरा' या 'हरि'	: एन. एन. राभा, सचिन शर्मा एवं रमेश कुमार	112

वानस्पतिक विस्मय

32.	पेमाश्री यात्रा वृतांत	: मिथिलेश कुमार पाठक एवं गोपाल कृष्ण	114
33.	प्रकृति की अनुपम धरोहर - मेघालय की गुफायें	: ब्रह्मदेव राम तिवारी एवं सुशील कुमार सिंह	119
34.	वनस्पति जगत से जुड़ी कुछ रोचक जानकारियां	: प्रशान्त केशव पुसालकर एवं संजय उनियाल	121
35.	विश्व के दस अति विलक्षण पौधे	: अच्युता नन्द शुक्ला संजय उनियाल एवं विनीत कुमार रावत	124
36.	फेबेसी कुल के कुछ अल्पज्ञात नृवनस्पतिक विवरण	: ए. के. साहु	125
37.	भारत की ऑर्किड विविधता	: जीवन सिंह जलाल एवं जे. जयंती	126
38.	वनाग्नि : कारण, दुष्परिणाम एवं बचाव के उपाय	: कुमार अम्बरीष	131
39.	सौन्दर्य प्रसाधनी पौधे	: सौम्याश्री पाठक	133
40.	पादप वर्गीकरण अनुसंधान में उपयोगी संदर्भ पुस्तकें व सूचना संसाधन	: हेमन्त कुमार दास एवं सुशील कुमार सिंह	136
41.	वनस्पति जगत पर विहंगम दृष्टि	: अन्वेषा गुह मजूमदार	139
42.	सैनिकों के लिए वानस्पतिक औषधियां	: संजीव कुमार एवं आर. के. गुप्ता	140
43.	प्रोफेसर टी. वी. देसिकाचारी : प्रख्यात शैवालविद्	: आर. के गुप्ता	142

काव्योपवन

44.	वे वैज्ञानिक विभूतियां अमर रहें	: भोलानाथ	143
45.	ये कैसी सन्तान ?	: प्रसाद म. पाध्ये	146
46.	वृक्ष और मैं	: संजय उनियाल	147
47.	वृक्ष बचाएँ - बनें अच्छे इंसान	: महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया एवं एस. के. श्रीवास्तव	148
48.	मैं अब भी बहती रहती हूं....	: संजय कुमार	149
49.	संरक्षित करो-इन पेड़-पौधों को	: महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया	150
50.	वन मूर्छित सहमी सी नदियाँ	: संदीप चौहान एवं कुलदीप डोगरा	151
51.	सच्चा दोस्त पेड़ हमारा	: सुरेश रघुनाथ पित्रे	152
52.	पानी है जीवन	: सुरेश रघुनाथ पित्रे	153
53.	मानव के सुख साधन	: कुमारी राजरूपा साहा	154
54.	इन दिनों	: मनोज कुमार	155
55.	मन तरसे इक आंगन को	: मनोज कुमार	156

पटाक्षेप

56.	पर्यावरण समाचार	: संजीव कुमार	157
57.	लेखकों के लिये निर्देश	:	158
58.	राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु	:	159

पौधों के वानस्पतिक (लैटिन) नामकरण की जटिल संहिता : एक सरल परिचय

सुधांशु कुमार जैन
भूतपूर्व निदेशक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
26-A,माल एवेन्यू कालोनी, लखनऊ

इस लेख का उद्देश्य पौधों के लैटिन नाम देने की आवश्यकता तथा उनमें कभी-कभी बदलाव की आवश्यकता समझाना मात्र है; इसका आशय न संहिता (ICN) का अनुवाद करना है, न सारे सिद्धांतों तथा नियमों का विस्तृत उल्लेख करना।

किसी व्यक्ति या वस्तु के नाम का कितना महत्व है ये प्राय: ठीक से समझा नहीं जाता।

जैसे देश में रीति-रिवाज, आपसी व्यवहार आदि पर आचार संहिता तथा अपराधों के वर्गीकरण को रोकने के लिये दंड-संहिता (Penal Code) होती हैं उसी तरह नामकरण संहिता में अशुद्ध नाम (पर्याय नाम) रोकने के आशय से ऐसी ही व्यवस्था करने का प्रयास है अत: उसकी भाषा भी वैधानिक अर्थात कानूनी जैसे होने के कारण, उसके अनेक नियमों में कुछ इस प्रकार के शब्दों का बाहुल्य है जो उसे अत्यंत जटिल बना देते हैं; उदाहरण के लिये ; 'यदि ऐसा किया गया हो तो उस स्थिति के सिवाय जब नए नाम का प्रकाशन....तिथि के पूर्व का हो तो प्रकाशन प्रभावी होते हुए भी ....' अर्थात नियम में कहीं कहीं इतने 'यदि', 'उस स्थिति के सिवाय', 'जबकि ऐसा हों, आदि शब्दों से सही आशय निकालना जटिल हो जाता है। वर्गिकी के शोधकर्ता इन नियमों का पढ़ते तथा समझते हुए नियम के आशय से अभ्यस्त हो जाते हैं। सामान्य वैज्ञानिक को तो ये अत्यंत जटिल लगते हैं। इसीलिए परिवार तथा समाज के दृष्टांत उदाहरण स्वरूप लिए हैं।

परिवार में नया बच्चा पैदा होने के समय पहला काम उसे किसी नाम से पुकारना होता है, ये भिन्न बात है कि आरम्भ में उसे केवल मुन्ना, मुन्नी, लला, लली या बेबी कहा जाए। सच ये है, कि इस सृष्टि में जितनी जैव तथा अजैव वस्तुएं ज्ञात हैं सबका कोई नाम है निश्चय ही अनेक ग्रह, द्वीप तथा जीव-जन्तु, पौधे अज्ञात भी विद्यमान होंगे तथा जैसे-जैसे उनकी खोज होती जायेगी उनको नाम भी दिये जायेंगे।

पौधों के लैटिन नामों में एकाएक परिवर्तन सामान्य पाठकों को ही नहीं वरन् वनस्पति-विज्ञान पढ़ने, पढ़ाने वाले तथा शोध करने वालों को भी अच्छा नहीं लगता किन्तु नामों के द्वारा सही उपयोग के लक्ष्य में कभी-कभी नाम बदलना अनिवार्य हो जाता है।

ये रोचक बात है कि पौधों की संहिता लगभग हमारे परिवार, समाज तथा देश में व्यक्तियों को नाम देने की प्रथा जैसी ही है। अत: संहिता का मूल आशय समझने के लिए उदाहरण स्वरूप अपने ही देश में प्रचलित कुछ प्रथाओं का उल्लेख कहीं-कहीं करेंगे।

पौधों के लैटिन नामों की आवश्यकता :

कुछ वर्ष पूर्व का अनुमान है कि छोटे-बड़े, पुष्पी तथा पुष्पहीन पौधों की संख्या इस पृथ्वी पर लगभग 4 लाख से अधिक है तथा केवल भारत में 46550 है। इन 46550 में लगभग 18000 पुष्पी पौधें हैं। लगभग 200 जातियॉ प्रति वर्ष नई खोज ली जाती हैं।

कुछ पौधों का वितरण सीमित क्षेत्र में अर्थात एक छोटे क्षेत्र, प्रांत तथा देश में ही होता हैं, तथा अनेक का दूर देशों तक होता है।

मानव जाति ने सदा से ही अपने प्रयोग में आने वाले तथा अपने जीवन से किसी प्रकार से भी सम्बंध रखने वाले पौधों को कोई नाम अवश्य दिया है। ये नाम भिन्न भाषाओं तथा क्षेत्रों में अलग-अलग होते हैं। उदाहरण हेतु आम जैसे सुपरिचित फल को अधिकांश भारत में आम कहते हैं किन्तु इसके भिन्न भाषाओं में नाम कुछ इस प्रकार है। जैसे संस्कृत में *आम्र*, गुजरात में *अमरी*, तेलेगू में *मामीढी, माती*, तमिल में *मंग* और *माऊ*, कन्नड़ में *माऊ*, मलयालम मे *आम्मम* और अंग्रेजी में *मैंगो*, कहते हैं। इसी प्रकार एक और सुपरिचित वृक्ष नीम को संस्कृत मे *निंब* कन्नड़ में *बेवू*, गुजरात में *लीबड़ो*, तेलगू में *बोप*, मलयालम में *आर्य-बेप* और अंग्रेजी में *मारगोसा* कहते हैं। निश्चय ही विदेशों में जहां-जहां ये वृक्ष पाये या उगाये जाते होंगे इसके नाम अलग ही होंगे।

किसी भी परिवार में सामान्यत: ऐसी भूल जैसे निकट संबंधियों का एक ही नाम होने की संभावना बहुत कम रहती है। किन्तु वनस्पतियां तो समूचे जगत में फैली हैं। हमारे देश की पुष्पी पौधों की लगभग 18,000 जातियों में से केवल 5-6 हजार जाति ऐसी हैं जो केवल भारत में ही मिलती हैं, बाहर नहीं 12-13 हजार जातियाँ विदेशों में भी मिलती है। कुछ तो लगभग आधी धरती पर फैली हैं। अनेक देशों के वैज्ञानिक वनस्पतियों का अध्ययन करते हैं। सामान्य बात है कि जितने अधिक काम करने वाले होते हैं उतनी ही अधिक अशुद्धियां

और विषमताएं होने की संभावना हो जाती हैं। इन त्रुटियों से बचने अथवा कम करने के आशय से ही संहिता में अनेक प्रकार के नियम हैं।

पौधों पर वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए प्रत्येक जाति के पौधे का कोई एक ऐसा नाम होता नितांत आवश्यक है जिससे संसार भर में उस पौधे की पहचान हो। ऐसे नामों को पौधें का वानस्पतिक (बोटेनिक), वैज्ञानिक नाम व लैटिन नाम कहते हैं। लगभग ३ शताब्दी पूर्व यूरोप तथा अन्य कई देशों मे लैटिन भाषा अधिक प्रचलित होने के कारण इन नामों का रूप और व्याकरण लैटिन के अनुसार निश्चय किया गया। इसलिए वैज्ञानिक नाम को लैटिन नाम भी कहते हैं।

पौधों के नामों के सम्बंध में जो स्थिति आती है वो प्राय: दो प्रकार की है

१. पौधों की किसी नई जाति या वंश को खोजते समय उसको सही नाम देना तथा इस खोज का विधिवत प्रकाशन। नई जाति अथवा वंश के पौधों को नाम देना और उनका प्रकाशन करते समय अनेक त्रुटियों से बचने के लिये नियमों का विधिवत पालन करना आवश्यक होता हैं। जैसे नामों के लिये शब्दों का चुनाव, उनका रूप, लिंग, प्रकाशन की वैधता आदि संबंधी नियम। क्योंकि इनकी आवश्यकता विरलय ही होता है। इनका विस्तृत उल्लेख यहॉ नहीं है।

२. उनके अतिरिक्त पौधों के लैटिन नाम का प्रयोग वनस्पति विज्ञान के विद्यार्थी, शिक्षक, शोधकर्ता तथा कृषि, एवं वन अथवा पौधों से संबंधित अन्य विभाग करते हैं। इस लेख मे ऐसे ही पाठकों को ध्यान में रखते हुए केवल आवश्यक बातें बताई गई हैं।

पौधों की नामकरण संहिता

यह संहिता पिछले वर्ष तक International Code of Botanical Nomenclature (ICBN) कहलाती थी; वर्ष 2011 मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय वानस्पतिक कांग्रेस में बदल कर International Code of Nomenclature of algae, fungi and Plants (ICN) कर दिया क्योंकि वर्तमान में साधारणतया कवक व शैवाल को वनस्पति जगत का हिस्सा नहीं माना जाता है।

संहिता के सिद्धांतों तथा नियमों को सहज ढंग से समझाने के लिए परिवार, समाज तथा देश से व्यक्तियों के उदाहरण दिए गये हैं।

नामकरण की संहिता के छ: मूल सिद्धांत हैं, (जैन एवं जैन, १९८१) इन्हें आधार मानकर अनेक नियम बनाऐ गए हैं जिनका पालन करना अनिवार्य हैं। संहिता में नियमों की क्रमानुसार संख्या है जिनका पालन करना अनिवार्य हैं। संहिता में नियमों की क्रमानुसार संख्या है। प्रस्तुत लेख में ICPN के सब नियमों की व्याख्या आवश्यक नहीं है **अत: यहॉ की क्रम संख्या मूल पुस्तक से भिन्न है।**

सिद्धांत १ : नामकरण की ये पद्धति पौधों पर लागू होगी, जन्तुओं पर नहीं।

उदाहरण : उत्तरी भारत में प्राय: व्यक्ति के नाम के बाद परिवार का नाम (Surname) लगता है जैसे राम कुमार गुप्ता, संत कुमार खन्ना, अजय कुमार जैन, तथा मो० साहिल जाफर, आदि। गुजरात में व्यक्ति के नाम के बाद पिता का नाम तथा अंत में परिवार नाम देते हैं जैसे मोहन दास (करम चंद्र) गॉधी, देवदास (मोहन दास) गॉधी (पिता का नाम कोष्टक में है)। कर्नाटक के कुछ परिवारों में पहले ग्राम का नाम तब पिता का नाम और अंत में व्यक्ति का अपना नाम जैसे होतेनारासीपुर (योगानरसिंहम) नारायणदत्त (हिन्दी पत्रपत्रिका में सुपरिचित नाम) इनके दो सगे भाइयों के नाम हो० यो० शारदा प्रसाद (श्रीमती इन्द्रा गॉधी के सूचना सचिव रहे थे) तथा हो० यो० मोहनराम (वनस्पति विज्ञान के सुपरिचित प्राचार्य) है। महाराष्ट्र में कभी-कभी मूल निवास के ग्राम में 'कर' जोड़कर परिवार नाम बन जाता है जैसे लता मंगेशकर, महेश मांजेरकर, सचिन तेंदूलकर आदि है। हम यह कह सकते हैं कि उतरी भारत के नामों की प्रथा गुजरात, महाराष्ट्र, व कर्नाटक की प्रथाओं से स्वतंत्र है, वहां लागू नही होगी (संहिता का सिद्धांत १)

सिद्धांत २ : पौधे की प्रत्येक कोटि (जैसे कुल, वंश, एवं जाति) किसी प्रारूप (type) पर आधारित होती है अर्थात हर कुल का कोई वंश उसका प्रारूप होता है जैसे पोआसिए ; (Poaceae) कुल का प्रारूप *पोआ* (Poa) वंश हैं। आस्टेरासिय ; Asteraceae) का प्रारूप *आस्टर; (Aster)* वंश है। हर वंश की एक जाति उसका प्रारूप होती है। *मानीसुरिस* लिने *(Manisuris)* वंश की प्रारूप जाति मानीसरिस मायुरॉस लिने है, अर्थात *मानीसुरिस* वंश के प्रमुख लक्षणों की धारणा करते समय इसके प्रारूप जाति के लक्षण होना आवश्यक है। किसी जाति का प्रारूप वह पौधा अथवा उसका एक नमूना (specimen) होता है जो जाति स्थापित करते समय उस स्थापक वैज्ञानिक ने प्रारूप निर्धारित (Holotype) किया था। अर्थात इस जाति के लक्षणों की सीमाओं में कोई शंका हो तो इस प्रारूप पौधे के अध्ययन से उसका निवारण होता है। प्रारूप पौधे का महत्व इतना अधिक होने के कारण यह आवश्यक है कि किसी नई जाति को स्थापित करते समय उसके प्रारूप का उल्लेख अनिवार्य है साथ ही यह प्रारूप कहॉ और किस संस्था में सुरक्षित है इंगित किया जाता है।

उदाहरण : संसार भर में व्यक्ति की सही पहचान हेतु उसकी प्रमाणिक ID मांगी जाती है। (जैसे आधार कार्ड, निर्वाचन प्रमाण-पत्र, आदि जिन पर व्यक्ति का फोटो तथा नाम अनिवार्य है।)

सिद्धांत ३ किसी भी वर्गीय समूह का नामकरण उसके प्रकाशन की प्राथमिकता; तिथि, (priority) पर आधारित होता है। अर्थात यदि संयोग वंश एक ही जाति के पौधों का दो भिन्न वैज्ञानिक नया नाम देखकर नई जाति की रचना करें और उनके नाम प्रकाशित करें तो जिसकी प्रकाशन तिथि पहली है वही मान्य होगा (अर्थात, नई जाति, वंश अथवा किसी भी वर्ग की प्रथम नई स्थापना के समय उसकी प्रकाशन तिथि लिखना आवश्यक है)।

उदाहरण : एक परिवार में नवजात पुत्र को राम कुमार नाम देकर जन्म कुन्डली बनवायी। बच्चे के नाना नानी ने बहुत पहले से सोच रखा था कि उनके पहले पोते या नाती को कपिल देव नाम देंगे। कुछ दिन बाद बच्चे की जन्म की सूचना मिलने पर उन्होनें आशीर्वाद का पत्र लिखा तथा कपिल देव नाम की भी सूचना दी। क्योकि पहले राम कुमार नाम दिया जा चुका था, प्राथमिकता के आधार पर राम कुमार नाम स्वीकृत रहा तथा कपिल देव अस्वीकृत पर्याय नाम हो गया।

सिद्धांत ४ एक विशेष सीमा ; (circumscription) स्थिति ; (position) तथा कोटि ; (rank) में, किसी भी वर्ग का केवल एक ही शुद्ध (correct) नाम होगा।

उदाहरण : आजकल हमारे देश में सरकारी काम-काज के लिए नियम यह है कि High School परीक्षा में दिया हुआ नाम तथा जन्म तिथि जीवन भर के लिए स्थायी तथा प्रमाणिक माने जाते हैं।

सिद्धांत ५ वर्गीय समूहों के वैज्ञानिक नाम चाहे वे किसी भी भाषा से बने या लिये गये हों लैटिन माने जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार पौधों के वंश और उनकी जाति के नामों का रूप लैटिन व्याकरण के अनुसार होता है। उदाहरण के लिए जिन पौधों के नाम भारत ; India पर आधारित है ऐसी इंडिका ; (*indica*) इंडिकुम *(indicum)* तथा इंडिकश ; *indicus)* उनके वंश के रूप के अनुसार होता है।

सिद्धांत ६ इस नाम पद्धति के नियम पूर्वव्यापी ; retroactive) होते हैं, अर्थात पिछले दिये हुए नामों पर भी लागू होते हैं। यदि आज १९१८ में दिया हुआ कोई नाम नियमों के अनुसार नहीं था तो उसे भी बदल कर ठीक किया जाएगा।

कुछ प्रमुख नियमों का उल्लेख आवश्यक है :-

नियम १ पौधों के ठीक अध्ययन के लिये उनके रूप आकार पारस्परिक समानता आदि के आधार पर अनेक समूहों में बॉटा गया है। ऊपर से आरम्भ करें तो पुष्पी और अपुष्पी(पुष्पहीन) दो मुख्य है। उनके अन्तर्गत अनेक कोटि (स्तर) जैसे गण (order) कुल (Family), वंश (Genus) तथा जाति ; (species) मुख्य है। इनके बीच तथा नीचे भी कुछ वर्ग है जिन्हें उप (Sub) कह कर पुकारते हैं। इन सब के लिये एक समान शब्द वर्ग (Taxon) बनाया गया है। अर्थात वर्ग मात्र कहने से किसी कोटि को नहीं जताता सभी पर लागू हो सकता है।

नियम २ सबसे छोटा प्रमुख वर्ग जाति है। कई जातियों (Species) का वंश (Genus) कई वंशों का कुल (Family) है। नामकरण में प्राय: कुल से ऊँचे वर्गो में बदलाव नहीं होता अत: उसका वर्णन यहॉ नहीं है।

नियम ३ पौधे के नाम में दो शब्द होते है। एक वंश का तथा दूसरा जाति का नाम होता है इसलिए इसे द्विपद अथवा द्विनाम (Binomial) पद्धति कहते हैं। जैसे *हिबिस्कस रोसासीनेसिस* (गुड़हल) तथा *हिबिस्कस* कैनाबीनस (पटसन) जातियॉ हैं। इन दो जातियों का वंश *हिबिस्कस*; (Hibiscus) है। कई वंश मिलकर एक कुल बनाते हैं। *हिबिस्कस* तथा सीडा (Sida) आदि मिलकर मालवेसी कुल बनाते हैं।

पौधोंको नए नाम देने की आवश्यकता :-

नियम ४ कभी-कभी गहन अध्ययन से किसी जाति को उसके वंश से हटाकर किसी दूसरे वंश में ले जाया जाता है तो उस जाति के नए नाम मे पहला शब्द नए वंश का नाम होता है तथा जाति सूचक नाम पुराना ही बरकरार रहता है। इसमे कुछ अपवाद है। सबकी व्याख्या सामान्य कार्य में आवश्यक नही है।

Eugenia fruticosa Roxb. को Syzygium में स्थानांतरित किया गया तो नया नाम *Syzygum fruticosa* (Roxb.) DC. हो गया। क्यों कि नये नाम का जाति सूचक शब्द पुराने नाम पर आधारित है, पुराने नाम को आधार नाम अथवा आधार पर्याय नाम (Basionym) कहा जाता है।

उदाहरण : एक खन्ना परिवार की वन्दना नाम की कन्या का विवाह कपूर परिवार में होता है। तो वंदना के नाम में नया परिवार नाम कपूर जुड़ जाता है। अर्थात एक नाम का नया संयोग बन गया।

नियम ५ यदि एक जाति को किसी दूसरे वंश में स्थानांतरित करते समय (अर्थात नव संयोग करते समय) यह देखा जाए की जाति

सूचक शब्द नये वंश में पहले से ही प्रयोग हो चुका है (preoccupied) तो एक नया जाति सूचक शब्द दिया जाता हैं।

उदाहरण : यदि कपूर परिवार मे वन्दना नाम की कोई महिला (बेटी, बहू या सास) पहले से थी तो वंदना शब्द के स्थान पर कोई नया शब्द जैसे कमला दिया जाता है।

नियम ६ यदि किसी नए खोजे गए वंश को भूल से वही नाम दे दिया जाए जो पहले ही किसी अन्य वंश को दिया जा चुका था तो वह अस्वीकृत समनाम (Later Homonym) हो जाता है तथा नए खोजे वंश को एक और ही नाम देना आवश्यक हो जाता है।

नए नाम का विधिवत प्रकाशन

नियम ७ जब कोई नई जाति अथवा वंश खोज लिया जाता है तो उसका सही विधिवत प्रकाशन आवश्यक है. इसके लिए कुछ नियम हैं : प्रकाशन के पूर्व इनको पढ़ लेना अथवा किसी अनुभवी वैज्ञानिक से समझना उपयोगी है।

प्रभावी प्रकाशन

नियम ८ नए नामों की वैधता के लिये उनका प्रभावी तथा वैध प्रकाशन अनिवार्य है। यहां प्रभावी तथा वैध का अंतर समझना आवश्यक है। नाम संबंधी नई खोज ऐसी पत्रिका में प्रकाशित करना चाहिए जिसे सामान्यत: वर्गीकी से सम्बंधित वनस्पतिज्ञयों द्वारा पढ़ने की सम्भावना रहती है, तभी यह प्रभावी प्रकाशन माना जाता है। आजकल अनेक विज्ञान की पत्रिकाएं शोधपत्रों को केवल 'ऑन लाइन' (इलेक्ट्रोनिक) हीं डाल रही हैं; उन्हे छाप कर (हार्ड-कॉपी) प्रकाशित नहीं करती हैं। अब इलेक्ट्रानिक प्रकाशन भी वैध माना जायेगा। किसी नये नाम के ''वैध प्रकाशन'' में प्रभावी होने के साथ-साथ नियत नियमों के अनुसार उस नाम की रचना तथा अन्य निर्धारित बातों को पूरा करना भी आवश्यक है। जैसे : १. नये नाम के प्रारूप का उल्लेख, २. नये नाम के कोटि (उपजाति, जाति, वंश आदि) ३. संस्थापक के नाम का उल्लेख तथा ४ नए वर्ग का लैटिन में विस्तृत वर्णन अथवा लैटिन में उन विशेष लक्षणों का वणन जिनको पृथक समझ कर नए वर्ग की स्थापना की जा रही हो (लैटिन डाइगनोसिस)। इस वर्ष नई संहिता के अनुसार लैटिन अथवा अंग्रेजी में भी यह किया जा सकेगा अर्थात लैटिन या अंग्रेजी किसी भी भाषा में यह मान्य होगा। इनके बिना प्रभावी होते हुए भी नाम वैध नहीं माना जाता।

नियमों के साथ कुछ सुझाव भी है जो नियमों में तथा उनके पालन में सहजता, सरलता, तथा कठिनाइयों से बचने के उपाय मात्र हैं, बाध्य नहीं हैं। (जैसी पौधों के नाम उनके रुप आकार वितरण आदि दर्शाना उपयुक्त होता है। एक काले फल वाले पौधे को काले रंग का सूचक (nigra) देना उचित है न कि लाल रंग सूचक (rosea, rubra) एक छोटे पौधे को विशालकाय सूचक नाम *gigantea, arborea* देना अनुचित है)

भिन्न प्रकार के प्रारूप (type)

Holotype मूल प्रारूप

पौधे का वह नमूना जिसे संस्थापक ने मूलप्ररूप निर्धारित किया।

Cotype, Isotype सह प्रारूप

मूलप्रारूप वाले पौधे से ही लिये हुए उस पौधे के अन्य नमूने।

Paratype अपर प्रारूप

नई जाति के पौधों के वह नमूने जो संस्थापक ने मूल तथा सहप्रारूप के अतिरिक्त रचना के समय स्वयं अध्ययन किये हों तथा अपरप्रारूप भी इंगित कर दिये हों।

Syntype सम प्रारूप

यदि संस्थापक ने किसी पौधों के नमूनों को मूलप्रारूप इंगित नही किया है तो उसके ही द्वारा अध्ययन किये हुए सभी समप्रारूप कहे जाते हैं। (आशय यह हुआ कि समप्रारूप कि स्थिति तभी आती है यदि संस्थापक ने मूल -, सह-, तथा अपर प्रारूप इंगित नहीं किये हैं।)

Lectotype वरण प्रारूप

यदि मूल प्रारूप उपलब्ध न हो तो सह में से एक नमूना मूल के कार्य हेतु चुन लिया जाता है। यदि सहप्रारूप भी उपलब्ध न हो तो अपरप्रारूप में से चुन लिया जाता है। एवं अपरप्रारूप भी उपलब्ध न हो ऐसी स्थिति मे समप्रारूपों में से वरण प्रारूप चुन लिया जाता हैं।

Neotype नव-प्रारूप

यदि मूल-, सह-, अपर-, तथा सम-, कोई भी उपलब्ध न हो तो अत्यंत सावधानी से एक नव प्रारूप चुना जा सकता है, किन्तु इसकी विश्वसनीयता में संशय ही रहता है।

भिन्न प्रकार के पर्याय नाम (Synonym)

Synonym पर्याय नाम

किसी जाति के सही नाम के अतिरिक्त जितने अन्य अस्वीकृत नाम हैं सबको पर्याय नाम कहते हैं ये कई प्रकार के हैं।

Basionym आधार नाम

वह द्विपद नाम जिसका जाति सूचक शब्द जो नव संयोग नाम (Comb. Nov.) में भी जाति सूचक हो। (नियम ४)

Later homonym उत्तर समनाम

जब त्रुटि वश किसी जाति या वंश को वही नाम दे दिया जाए जो उस कोटि में पहले दिया जा चुका है तो बाद में दिया गया नाम उत्तर समनाम कहा जाता है।

पौधों की वर्गिकी पर साहित्य पढ़ते समय प्राय: ही कुछ शब्द या संकेताक्षर (Abbreviation) मिलते हैं; इनमें से कुछ प्रमुख का विवरण नीचे दिया हैं (जैन आदि, २०००) :

Author name in Bracket लघु कोष्टक मे संस्थापक का नाम

किसी द्विपद नाम के बाद लघु कोष्टक में संस्थापक का नाम यह दर्शाता है कि जाति सूचक शब्द उस संस्थापक द्वारा रचित किसी द्विपद (आधार) नाम से आया है। (नियम ४)

p.p. (pro parte) आंशिक

जब किसी जाति के नाम से प्रचलित वर्णन के कुछ अंश पृथक करके एक अलग जाति बना दी जाती है, तब इसका प्रयोग होता है।

Sensu lato वृहत आशय

लेगुमिनोसी कुल को तीन कुलों में विभाजित किया गया। उनके नाम Fabaceae, Caesalpiniaceae एवं Mimosaceae किया गया, पहले वाली Leguminosae का भी नाम रखा गया। ऐसी स्थिति में आशय जब पूरी leguminosae का हो तो *Fabaceae sensu lato* लिखा जाएगा यदि विभाजित Fabaceae का आशय है तो *Fabaceae sensu stricto* कहा जाएगा।

sensu stricto सीमित आशय

जैसे *Fabaceae* कुल जब विभाजित Leguminosae का आशय दे तो यह लागू होगा। comb. nov. (combination nova) नव-संयोग (देखें नियम ४)

sp. nova (species nova) नवजाति

ये अक्षर तब प्रयोग होता है जब सर्वप्रथम नई जाति का वर्णन किया जाता है। यह शब्द केवल एक प्रकाशन (एक मात्र) में ही प्रयोग हो सकता हैं। इसी प्रकार var. nov. (variety nova. नव-प्रभेद) का प्रयोग होता है।

अंत में दो बातें स्पष्ट करना आवश्यक है

१. यह लेख नाम करण संहिता (ICN) की प्रमुख नियमों का सरल भाषा में पौधों के वैज्ञानिक नामों को प्रयोग करने वाले सामान्य पाठकों तथा शोधकर्ताओं के हित के लिए है; वर्गिकी के शोधकर्ता नियमों की विस्तृत जानकारी के लिए मूल पुस्तक पर (ICN) ही निर्भर करे।

२. संहिता के विभिन्न नियम जैसे प्रारूप का निर्धारण, वैध प्रकाशन आदि भिन्न तिथियों से लागू होते है। जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं समझा गया है। वर्गिकी के शोधकर्ता इनका विवरण संहिता में देखें।

आभार

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ के डॉ० लाल बाबू चौधरी ने संहिता के नियमों में परिवर्तन की कुछ जानकारी दी हैं। डॉ श्याम लाल कपूर ने लेख में अनेक तकनीकी, तथा श्रीमती सत्या जैन ने भाषा संबंधी अनेक सुझाव दिये हैं; श्री पंकज कुमार ने लेख का कम्पयुटीकरण किया है; लेखक इन सभी का आभारी है।

संदर्भ-सूची

जैन, सुधांशु कुमार, एवं सत्या जैन, १९८९, पौधों का नामकरण *(ICN)* का हिन्दी रूपांतरण), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

जैन, सुधांशु कुमार, सर्वेश कुमार एवं विश्वनाथ मुद्गल, २०००, वनस्पति शास्त्र का तकनीकी शब्दकोश, बिशन सिंह मेहन्द्र पाल सिंह, देहरादून.

गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य की जैव विविधता

बिपिन कुमार सिन्हा, एवं रनजित दैमारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

जैवविविधता के दृष्टिकोण से भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र अपनी दुरुह भौगोलिक संरचना, अनूठी जलवायु एवं प्राकृतिक सुंदरता के लिये जाना जाता है। यहॉ के मूल निवासी अपनी जैवविविधता को संरक्षित रखने में बहुत जागरूक हैं। असम के उपरी ब्रह्मपुत्र क्षेत्र में जोरहाट शहर से लगभग 25 कि. मी. की दूरी पर गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य स्थित है। सन 1881 तक ये अभयारण्य हलङापार रिजर्व वन के नाम से जाना जाता था क्योंकि यहॉ नर *डिप्टेरोकार्पस रेट्यूसस* (*Dipterocarpus retusus*) जिसे स्थानीय भाषा में 'हलंग' कहते हैं अधिक मात्रा से पाये जाते हैं। डिप्टेरोकार्पस रेट्यूसस वृक्ष असम के सबसे ऊँचे वृक्षों में जाने जाते हैं और इसे असम के राजकीय वृक्ष की मान्यता भी दी गई है। गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य की स्थापना 30 जुलाई, सन 1997 में की गई। ये अभयारण्य भौगोलिक 26°40'-26°45' उत्तरी अक्षांश तथा 94°20-94°25 पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है एवं इसका कुल क्षेत्रफल 20.98 वर्ग कि. मी. और समुद्र तल से ऊँचाई 100-120 मीटर तक है। ये अभयारण्य नागालैंड के निचले पहाड़ियों के पास में स्थित है और चारों तरफ से चाय के बगानों से घिरा हुआ है। इस अभयारण्य की मुख्य विशेषता यह है कि भारत के केवल इस अभयारण्य मे ही आदि वनमानुष - हुलक गिब्बन (*Bunopithecus hoolock*) पाये जाते हैं। इस कारण ही इसका नाम गिब्बन वन्य जीव अभयारण्य रखा गया है। इस अभयारण्य में कुल सात प्रजातियों के प्राइमेट्स एवं आदि वनमानुष भी पाये जाते हैं जैसे : हुलक गिबन, केपद लंगुर, स्लो लोरिस, रेसस मेकक, असमिस मेकक, पिकटैल मेकक और स्टम्पतेल मेकक।

चेम्पियन और सेठ (1968) के अनुसार गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य उष्णकटिबन्धीय अर्ध-सदाबहार वन क्षेत्र में आता है। यहां के वन एवं वनस्पतियों का संक्षेप में ब्यौरा निम्नवत है।

वृक्ष : विभिन्न प्रजातियों के बड़े वृक्ष इस अभयारण्य में उपलब्ध हैं जैसे *डिप्टेरोकार्पस रेट्यूसस, एक्टिनोडैफिनी अंगुष्टीफोलिया, एक्टिनोडैफिनी ओबओवेटा, अल्टिनंगिया एक्सेल्सा, बिसकोफिया जावानिका, कैलिकर्पा अबोरिया, सिन्नामोमम ग्लैन्डुलिफेरम, कनारियम स्ट्रिकटम, करेलिया ब्रेक्किआटा, कैस्टानोप्सिस इंडिका, चुक्रासिया टेबुलेरिस, कोरडिया डाइकोटोमा, डायोस्पाइरोस मलाबरिका, डिलेनिया पेन्टागाइना, डाइसोजाइलम बाइनेक्टेरिफेरम, डाइसोजाइलम गोबेरम, दुवाबंगा ग्रैन्डीफ्लोरा, इलिओकारपस अरिस्टेटस, इलिओकारपस फ्लोरिबुन्डास, इलिओकारपस लेन्सिफोलिअस, इलिओकारपस वरुनुवा, गारसिनिया काइडिया, लेजारस्ट्रोमिया स्पेसिओसा, लिट्सिया इलंगेटा, लिट्सिया मोनोपिटेला, मेंगिफेरा सिलवेटिका, मेसुआ फेरिया, माइकेलिया चम्पाका, प्रेम्ना मिलेफ्लोरा, पिथेकेलबियम हेटेरोफाइलम, सिजाइजियम क्यूमिनी, स्पेथोडिया केम्पेनुलेटा स्टेरिओस्पारमम सेलोनइडस, टर्मिनेलिया अर्जुना, टर्मिनेलिया बेलेरिका* आदि। इस अभयारण्य में बड़े वृक्षों की संख्या अधिकतम है।

झाड़ी : इस अभयारण्य में विभिन्न प्रजातियों के झाड़ी जैसे *एब्रोमा अगस्ता, अर्डिसिया कोलोरेता, अर्डिसिया सोलानेसिया, क्लेरोडेंड्रम ब्रेकटियटम, क्लेरोडेंड्रम कलेब्रुकियनम, क्लेरोडेंड्रम सिरेटम, सिमप्लोकोस रेसिमोसा, फ्लेमिनजिया स्ट्रोबिलिफेरा, नेटम नीमान, केसेरिया भेरेका, कलिकरपा लोंगिफोलिया प्रभेद लेनसिओलेरिया, केमेलिया साइनेनसिस, ग्लाइकोसमिस पेन्टाफाइला, आयोडिस हुकेरियाना, इक्सोरा एकुमिनेटा, लिया इन्दुका, लेपिसेन्थस इरेक्टा, लिटसिया सेलिसिफोलिया, मेलास्तोमा मालाबथ्रिकम, माइक्रोमेलम इन्टेजेरिमम, मोरिन्डा अंगुस्टिफोलिया, मुसेन्डा रक्सबर्घी, ओसबेकिया नेपालेनसिस, पेजिया नितिदा, फ्लेगेकेनथीस थिरसीफलोरस, फ्लोगेकेन्थस ट्यून्बीफ्लोरस, साइकोट्रिया डेन्टिकुलेटा, रावल्फिया डेन्सिफ्लोरा, रावल्फिया टेट्राफाइला, रिनकोटेकम इलिपटेकम, रूबस नगासावानस, सेप्रोसमा टर्नेटम, जेन्थोजाइलम रेटसा* आदि पाये जाते हैं।

शाक : इस अभयारण्य में शाकों के वार्षिक या बहुवर्षीय पौधे जैसे *एकोन्थस लिउकोस्टेकिअस, बेगोनिया एन्नुलेटा, बेगोनिया रक्सबर्घि, ब्लुमिया प्रोसेरा बायोफाइटम सेनजितिभम, बोरेरिया अर्टिकुलेरिस, बिडेन्स पिलोसा, केलानथि मेसुका, कोडोनोकेन्थस,*

पाउसिफलोरस, कोलोकेसिया विरोसा, कोमेलिना डिफिउसा, करकुलिगो अर्किअइडस, एक्लिपटा प्रस्ट्रिटा, इमपेसेन्स ट्राइपेटेला, लेसिया स्पाइनोसा, लुड्वीजिया प्रास्ट्रेटा, मोलुगो पेन्टाफाइला, अफिओराइजा सक्किरूब्रा, पार्सिकेरिया पारफोलियटम, पगोस्तेमन अउरिकुलेरियस, पालिगोनम प्लेबेजम, पालिगोनम साइनेन्से, सिउदइरेनथेमम प्लाटिफेरम, रेननकुलस स्कलेरेतोस, सेरकोपाइरेमिस नेपालेन्सिस, स्कोपेरिया डलसिस, स्पाइलेनथीस पेनिकुलेटा, टेट्राफाइलम बेंगालेन्से, टोरेनिया एसियाटिका आदि पाये जाते हैं।

आरोही : विभिन्न प्रजातियों के आरोही इस अभयारण्य में उपलब्ध हैं जैसे *एब्रस प्रिकेटरियस, आकेसिया डायेदेनिया, एम्पेलोसिसस बरबेता, बिटनेरिया ग्रण्डिफलोरा, ब्यूटिया पार्वीफ्लोरा, सिसमपेलोस पेरेरा, केरेसिया पेडेता, क्रिप्टोलेपिस साइनेनसिस, डिस्किडिया नम्मुलेरिया, डेलहाउसिया ब्रेकटियाटा, होया अर्नोसियाना, हग्सोनिया मैकोकरपा, सिसस क्वाड्रेंगुलारिस, मेरेमिया अम्बेलाटा, पिडेरिया फोइटिडा, पेरिकेमपाइलोस ग्लोकस, पाइपर नाइग्रम, स्टेफेनिया जेपोनिका, स्टिक्सिस सुवाभिओलेन्स, टेट्रासेरा सरमेन्टोसा* आदि।

अभयारण्य के वन को प्रमुख वृक्षों के अधिकता के आधार पर भी पुन: विभक्त कर सकते हैं जैसे :

i. *डिप्टेरोकार्पस-मेसुआ वृक्षों की बहुलता वाला क्षेत्र* : अभयारण्य के कुछ भाज में डिप्टेरोकार्पस रेट्यूसस एवं मेसुआ फेरिया की बहुतायत है। यहां पर अन्य वृक्षों में *डायसोजाइलम बाइनेक्टरीफेरम, गारसीनिया जेन्थोजाइलम, लीया इण्डिका, मेग्नोलिया होग्सोनी एवं वेटिका लेंसिफोलिया* आदि प्रमुख हैं।

ii. *लेजरस्ट्रोमिया- टरमिनेलिया वृक्षों की बहुलता वाला क्षेत्र* : अभयारण्य के अन्य भाग में *लेजरस्ट्रोमिया स्पेसियोसा की बहुलता के साथ-साथ बोम्बेक्स सिबा, कनेरियम स्ट्रिक्टम, निओलैर्माकिआ कदम्बा, टरमिनेलिया मेरियोकार्पा एवं टेट्रामेलिस न्यूडिफ्लोरा* प्रमुख वृक्ष हैं।

iii. *माइकेलिया-एग्लिया वृक्षों की बहुलता वाला क्षेत्र* : अभयारण्य के कुछ भाग में माइकेलिया डाल्टसोपा की बहुलता है। साथ में *ऐग्लिया स्पेकटेबिलिस, चुकरेसिला टेबुलेरिस, स्टिरिओर्स्पमम सेलोन्यूयाडिस, टूना हेक्जेन्ड्रा एवं ट्रेविया न्यूडिफलोरा* प्रमुख वृक्ष हैं।

iv. आर्टोकार्पस - बालाकाटा-एग्लिया वृक्षों की बहुलता वाला क्षेत्र : अभयारण्य के कुछ क्षेत्र में आर्टोर्कापस चामा की बहुलता के साथ-साथ *एग्लिया स्पेकटेबिलिस, बालाकाटा बकेटा, करेलिया ब्रेकिअटा, गेरूगा पिन्नेटा एवं एलिओर्कापस फ्लोरिबन्डा* के वृक्ष प्रमुख से मिलते हैं।

v. *दुआबंगा-कैलिकारपा-मेकरांगा वृक्षों की बहुलता वाला क्षेत्र* : अभयारण्य के कुछ क्षेत्र में दुआबॅगा ग्रेन्डीफलोरा की बहुलता के साथ-साथ कैलिकार्पा आरबोरिया, ओरोजाइलम इण्डिकम एवं मेकारॅगा डेन्टिकुलेटा प्रमुखता से मिलते हैं।

इसके अलावा अभयारण्य में विभिन्न प्रजातियों के बेंत और बाँस भी पाये जाते हैं जैसे *केलेमस फ्लोरिबन्डस, सिजोस्टेकियम पोलिमारफम, मेलोकोना बेकिफेरा, बम्बूसा अरूनदिनेसिया* आदि हैं।

अभयारण्य के कुछ भाग जल से डूबे रहते है यहाँ पर ऐसे पौधों की बहुतायत है जो इस वातावरण में रह सके। इनमें से *एलपीनिया नाइग्रा, साइपेरस कोमप्रेसस, आइकोर्निया क्रेसिपिस, मोनोकेरिया हेस्टेटा, लुडविजिया प्रोस्ट्रेटा, ओटेलिया एलिसमोयाडिस* आदि प्रमुख है।

वनस्पतिक विविधता :

सन 2009-2012 में तीन बार व्यापक तरीके से किये गये सर्वेक्षण कार्य में लगभग 1500 पौधों से भी अधिक पादप नमूने एवं सजीव पौधे एकत्रित किये गये। इनमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं, शाकों एवं आर्थिक रूप से उपयोगी पौधों के नमूने शामिल हैं। अबतक कुल 535 जातियों को लिपिबद्ध किया जा चुका है। यहां पर पाई जाने वाले पौधों की वंश, कुल व जातियों को नीचे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका–1 : गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य में वंश, कुल एवं जातियों की संख्या।

समूह	पादप कुल की संख्या	वंश की संख्या	जातियों की संख्या
फेनेरोगैम्स			
एन्जिओस्पर्म्स			
द्विबीजपत्री (Dicotyledons)	94	268	392
एकबीजपत्री (Monocotyledons)	18	79	123
अनावृतबीजी (Gymnosperms)	1	1	2
क्रिप्टोगैम्स			
पर्णांग (Ferns)	12	16	18
योग :	**125**	**364**	**535**

तालिका 2 : गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य के पौधों के आकार पर कुल जातियोंकी संख्या

पौधों के आकार	जातियों की कुल संख्या
वृक्ष	144
झाड़ी	98
शाकीय	207
आरोही लतायें एवं जातियां	70
पर्णांग	**16**
योग :	**535**

तालिका 3 : गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य में प्रमुख वंश एवं जातियां।

वंश	कुल	जातियां
पोएसी	28	45
रूबिएसी	24	32
यूफोरबिएसी	19	26
फेबेसी	15	22
वरबिनेसी	8	16
लोरेसी	7	16
एसटेरेसी	13	15
मोरेसी	3	15
एरेसी	9	15

इस अभयारण्य में पाये जाने वाले पौधों को उनकी उपयोगिता के आधार पर निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है। जैसे :

औषधि प्रदान करनें वाली वनस्पतियाँ:

डिलेनिया इंडिका : अतिसार एवं पेट दर्द के उपचार में इसके फल के लसलसे भाग को खाते हैं।

सिसमपिलास परेइयरा : मूत्र विकार के उपचार में इसकी जड़ों को पानी में उबालकर लेते हैं।

स्टिफेनिया जपोनिका : मलेरिया ज्वर के उपाचार में इसके राइजोम को उबालकर पीते हैं।

वायोला बेटोनिसीफोलिया: इसके सम्पूर्ण पौधे का उपयोग उल्टी को रोकने के लिये करते हैं। इसे पागलपन के उपचार में भी करते हैं।

गारसिनिया जेन्थोकाइमस : मीजल्स के उपचार में इसकी पत्तियों को उबालकर नहाने से आराम मिलता है।

मेसुआ फेरिआ : पेड़ की छाल को अदरक एवं लौंग के साथ दिन में ३ से ४ बार चबाने से खांसी में आराम मिलता है।

साइडा रोम्बीफोलिया : सम्पूर्ण कोमल पौधे को पीसकर इसके रस को पानी के साथ पीने से मधुमेह में लाभ होता है।
यूरेना लोबाटा : कोमल पौधों का काढ़ा पीलिया रोग मे प्रयोग करते हैं।
सिजीजियम क्यूमिनी : इस पेड़ की छाल का रस निकाल कर पीने से मधुमेह में लाभ मिलता है।
मेलास्टोमा मालाबथ्रिकम : कट जाने पर या चोट आदि घाव के लिये पत्तियों का रस लाभकारी होता है।
हागसोनिया मैक्रोकार्पा : कटे एवं घाव के उपचार में इसकी पत्तियों का लेप बनाकर घाव पर लगाते हैं।
बिगोनिया रोक्सबर्गी : पौधों की कोमल पत्तियों को पीसकर चर्म रोग में उपयोग किया जाता है।
सेन्टेला एसियाटिका : यह शक्तिवर्धक एवं स्नायु तन्त्रों को ठीक करने में सहायक है। पानी में उबाल कर पीने से पेट सम्बंधी परेशानियों में उपयोगी है।
हेडियोटिस स्केन्डेन्स : आंख लाल होने पर पौधे की कोमल पत्तियों का रस डालने से लाभ मिलता है।
पेडेरिया फोएटिडा : अतिसार एवं पेट सम्बन्धी अन्य परेशानियों के उपचार में इसकी पत्तियों का रस लेने से आराम मिलता है। पत्तियों का रस हरपिस रोग में बाहर से लगाने से जलन कम हाती है।
एजेरेटम कोनिजॉइडिस : बुखार होने पर इसकी पत्तियों को अदरक के साथ पीस कर सिर मे बांधने से बुखार कम हो जाता है।
अरडीसिया सोलेनेसिया : जोड़ों के दर्द में इसकी जड़ों का काढा पीते हैं।
एल्सटोनिया स्कोलेरिस : पेड़ की चाल मलेरिया बुखार में लाभदायक है।
टेबेरनिमोन्टाना डाइवेरिकाटा : पौधों की कोमल पत्तियों को पीसकर कपड़े में लपटेकर सिर दर्द या बुखार होने से मस्तक में बांधते है जिससे रोग ठीक हो जाता है।
सोलेनम टारवम : दाँत दर्द के उपचार में इसके बीजों को पीसकर दांतों पर लगाते हैं।
ओरोजइलम इण्डिकम : अतिसार, पेट सम्बधी अन्य बीमारीयों एवं पाइल्स के उपचार में इसके बीजों एवं कोमल फलों को खाते हैं।
कैलीकार्पा अरबोरिया : अतिसार, पेट दर्द एवं विकार के उपचार में इसके छाल का रस पीने से आराम मिलता है।
क्लेरोडेन्ड्रम कोलिब्रोकियेनम : उच्च रक्तचाप के उपाचार में इसकी पत्तियों का रस लेते हैं एवं पत्तियों की सब्जी बनाकर भी खाते हैं। यहां के लोग इसे पीस कर गठिया रोग में भी प्रयोग करते हैं।
अमरेन्थस स्पाइनोसस : शाखाओं सहित पत्तियों को पीस कर जोड़ो के दर्द में बाहर से लेप करने से दर्द ठीक हा जाता है।
लिट्सिया मोनोपेटेला : इसके फल का उपयोग सरदर्द, चक्कर आने, मिरगी, पक्षाघात एवं विस्मृति के उपचार में उपयोगी है।
बिस्कोफिया जवैनिका : हैजा एवं अतिसार के उपचार हेतु इसकी छाल का काढा पीते हैं।
कोस्टस स्पीशियोसस : इसकी जड़ें और कंद शोधक एवं कृमिनाशक हैं।
करक्यूमा ऐरोमेटिका : चर्म रोग एवं घाव के उपचार में इसके राइजोम का लेप लगाते हैं।
डायोस्कोरिया पेन्टाफाइला : इसके कंद का उपयोग बवासीर रोग एवं पेट के कीड़े मारने में किया जाता है। कंद मछली को मारने हेतु भी प्रयोग होता है।
स्टिमोना टयूबीरोसा : ज्वर एवं सर्दी जुकाम के उपचार में इसके राइजोमका काढा पीते हैं।

आर्थिक पौधे : विभिन्न प्रजातियों के आर्थिक पौधें इस अभयारण्य में पाये जाते हैं जैसे *माइकेलिया चम्पाका, तूना सिलियेटा, अल्बीजिया लेबेक, अल्पिनिया नाइग्रा, दुवाबंगा ग्रैंडीफ्लोरा, मेसुवा फेरिया, डिप्टेरोकार्पस रेट्यूसस, लेजरस्ट्रोमिया स्पेसिओसा, स्टरकूलिया विलोसा, मेलोटस फिलिपेन्सिस, मोरिन्डा अंगुस्टिफोलिया, एक्विलेरिया मालाकेनसिस, सिन्नामोमम बिजलघोटा, आर्टेकारपस चामा,* एवं *पिन्नेंगा ग्रेसिलिस* आदि।

काष्ठोत्पादक पौधे : यह अभयारण्य कई प्रकार मूल्यवान काष्ठोत्पादक पौधों से भरा है। बांस की कई प्रजातियाँ भी यहां प्रमुखता से मिलती है जैसे : *मेलोकोना बेकिफरा, बम्बूसा बल्कोआ, बम्बूसा नूटेन्स, बम्बूसा पैलिडा, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनी एवं साइजोस्टेकियम पालिमार्फा आदि है। काष्ठोत्पादक पौधों में एसर लेविगेटा, आर्टोकार्पस लकूचा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, डिलेनिया इंडिका, दुआबन्गा ग्रैन्डिफ्लोरा, हल्डिना कार्डिफोलिया, अल्बीजिया लेबक, शोरिया रोबस्टा, मेलिना अर्बोरिया, लेजरस्ट्रोमिया स्पीसिओसा, डिप्टेरोकार्पस टरबीनेटस* एवं *मेसुआ फेरिया* प्रमुख हैं।

खाद्य उपयोग पौधे : अभयारण्य में पाये जाने वाले पौधों को उनकी उपयोगिता के आधार पर निम्न वर्गो में बांट सकते हैं।

1. **राइजोम या तना :** बांस प्रजाति के मुलायम तने, *अमोमम डिल्बेटम, कोलोकेसिया, अरिसिया, एलोकेसिया, लेसिया* एवं *डायसकोरिया की प्रजातियों के राइजोम* एवं *मुलायम* तने खाद्य हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं।
2. **फलों में :** *आर्टोकार्पस चामा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, डिलेनिया इंडिका, एम्बलिका आफिसीनेलिस, मैन्गीफेरा इंडिका, केला, निओलेर्माकिया कदम्बा, करेलिया ब्रेकिएटा, बेकुरिया रेमिफलोरा, कोर्डिया डाइकोटोमा, केलेमस टेनुइस, गारसिनिया एवं जामुन* आदि प्रमुखता से मिलता है। *आर्टोकार्पस हेटेरोफाइलम* के पके फलों को छीलकर तथा सब्जी बनाकर खाते हैं।
3. पत्तियों में : *आलटरनैथरा सिसेलिस, अमरेन्थस स्पाइनोसा, बिगोनिया हेटाकोआ, बोरहेविया डिफ्यूजा, सिलोसिया अर्जेन्टिया, सेंटेला एसिएटिका, क्लेरोडेन्ड्रम कोलिब्रोकियेनम, ड्राइमेरिया डाइएन्ड्रा, एक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा, ओक्सेलिस कोरनिकूलेटा, पडेरिया फोइटिडा, फ्लोगाकेन्थस थिरसीफलोरस* एवं *पोलिगोनम* की प्रजातिया।
4. **बांस की प्रजातियां :** *मेलोकाना बेकीफेरा, बम्बूसा टुल्डा, बम्बूसा बल्कोआ, बम्बूसा खासियाना, बम्बूसा नूटेन्स, बम्बूसा पैलिडा, बम्बूसा वलगेरिस, डेन्ड्रोकैलमस हेमिलटोनी, डेन्ड्रोकैलेमस हुकेरियाना, एवं साइजोस्टेकियम पालिमार्फम* प्रमुख हैं।
5. **शाक व सब्जियॉ :**

मुसेन्डा रोक्सबर्गी (Mussaenda roxburghii) : पौधों की कोमल पत्तियों की सब्जी बनाते हैं।
कोलोकेसिया अफिनिस (Colocasia affinis) : स्थानीय लोग इसे उबाल कर खाते हैं।
लेसिया स्पिनोसा : स्थानीय लोग कोमल पत्तियों और स्तंभ की सब्जी खाते हैं।

उपयोगी पौधों की जंगली प्रजातियां : अभयारण्य में उपयोगी पौधों की कई जंगली प्रजातियां प्रचुरता से उपलब्ध है। जैसे : *आर्टोकार्पस, साइट्रस, केमेलिया, मूसा, कोलोकेसिया, अमोमम, सिन्नामोमम, करक्यूमा, गारसिनिआ, पाइपर एवं जिन्जीबर* की जंगली प्रजातियों से भरा है। जो भविष्य में शोध कार्य हेतु उपयोगी है।

विविधता का विश्लेषण :

प्राचीन पौधे : प्राचीन पौधों में से *एसकुलस असामिका, मैग्नोलिया ग्रैन्डीफलोरा, मैग्नोलिया होग्सोनी, माइकेलिया चम्पाका, एक्टिनोडेफनी ओबोवेटा, एलटिंगिया एक्सेलसा, एन्जिओपटेरिस इविक्टा, क्लोरेन्थस इलेटर, होलबेलिया लेटिफोलिया, लिट्सिया ग्लूटिनोसा, लिट्सिया मोनोपेटेला, लिट्सिया सेलिसीफोलिया, परसिया बोम्बिसिना, फोयबे लेन्सिओलेटा, टरमिनेलिया न्यूडीफ्लोरा* आदि प्रमुख हैं।

दुर्लभ, रोचक, लुप्तप्राय संकटग्रस्त एवं लुप्तप्राय पौधे : इस अभयारण्य में पाये जानेवाले दुर्लभ, रोचक, लुप्तप्राय संकटग्रस्त एवं लुप्तप्राय पौधों में से *नीटम निमान, एलोफाइलस करतेसियस, अल्टिनजिया एकसेल्सा, एमपेलोसिसोस बरबेटा, एमोमम पाइसिफलोरम, अरट्रिसिया थामसोनाइ, बिगोनिया हाताकोवा, ब्रिट्रेलिया असामिका, केलिकार्पा लोडिफोलिया प्रभेद लेनसियोलेरिया, केनथियाम ग्रेसिलाइपस, सासालिया कारबीफलोरा प्रभेद अफियक्सिलइदस, क्लेयोजाइलन लोंगिपैटिवलेतम, देलहाउसिया ब्रेक्टिओता, देसमस लोंगिफलोरस, डायोस्कोरिया पिउबेरा, फिसोदियेलसिया फोरनिकेता, फिसिष्टिगमा वालिसाइ, ग्लोसिदियन असामिकम, हेडिओटिस अल्लमिफोलिया, हिप्टेज बेंघालेन्सिस, हलबोलिया लेटिफोलिया, आयोडिस हुकेरियाना, नक्सिया मोलिस, लोरसेनियनथोस केरियोनोस, लिटसिया खासियाना, मेंगिफेरा सिलवेटिका, मेसुआ असामिका, मिट्रेफोरा टोमेन्टोसा, पेलिओसेनथिस तेता, फोबे गोवालपारेनसिस, पाइपर बेटलिअइदस, पाइपर ग्रिफिथी, पाइपर हाइमेनोफाइलम, पाइपर सिलवेटिकम, पोथोस केथकारटी, पोथोस कुनस्टलेरि, राउल्फिया डेनसिफ्लोरा, राउलफिया टेट्राफाइला, स्टिउडनेरा कोलोकेसिअइडस, स्टिकसिस सुआविअलेन्स, सिजाईजिअम फ्रुटिकोसम, सिजाइजियम ओबलेटोम, टेट्राफाइलोम बॅन्न्गालेन्से, टेट्रस्टिगमा डूबिअम* आदि प्रमुख हैं।

स्थानिक पौधे : पूर्वात्तर भारत के विशेष क्षेत्रों के पौधे जो कि इस अभयारण्य में उपलब्ध है उनमे से *एगलाया एदुलिस, एमप्लोसिस बरबेटा, ग्लोबा मल्टिफ्लोरा, ग्लोचिडियन असामिकम, फ्लोगोकेन्थस ट्यूबीफ्लोरस, फोएबे गोवालपारेनसिस, स्टरकुलिया हेमिल्टोनी, स्टिउडनेरा असामिका* आदि प्रमुख हैं।

असम राज्य से पहली बार पाये गये पौधे : जिनजिबारेसी वंश *एमोमम पाउसिफलोरम* को पूर्वोत्तर भारत से पहली बार रिपोर्ट किया गया है।

1

2

3

4

5

6

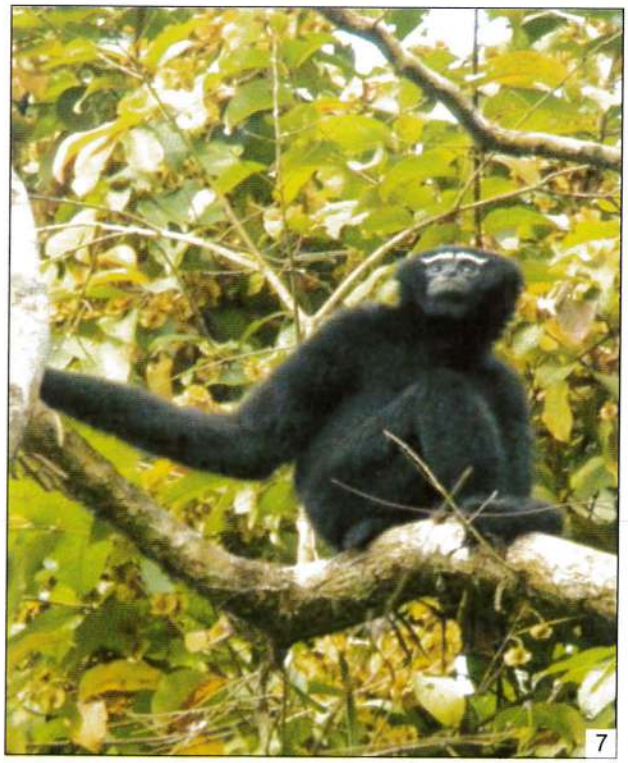
7

8

1. गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य की मुख्य द्वार 2. डिप्टेरोकार्पस रेट्यूसस का समूह 3. अभयारण्य के कम्पार्टमेन्ट नंबर 2 के अंदर 4. उष्णकटिबन्धीय अर्ध-सदाबहार वन 5. डिलेनिया इंडिका 6. मेसुआ फेरिआ 7. & 8. पश्चिमी हुलक और पूर्वी हुलक

पचास या और अधिक वर्षो के बाद पुनः पाये गये पौधे : जिनजिबारेसी वंश का *लरसेनियनथोस केरियानोस* और *इसेसिनेसि* वंश का आयोडिस हुकेरियाना को असम से ६० से अधिक साल बाद पुनः रिपोर्ट किया गया है।

गिब्बन द्वारा खाये जाने वाले पौधे : गिब्बन अभयारण्य में पाये जानेवाले बहुत पौधे आदि वनमानुष-हुलक गिब्बन या अन्य प्रजातियों के प्राइमेटस एवं आदि वनमानुष के आहार उपयोगी है। उनमें से *एक्टिनोडेफ्नी ओबोवेटा, एइलेनथस इनटेग्रिफोलिया, एक्विलेरिया मालाकेनसिस, आरटोकारपस चामा, आरटोकारपस लाकुचा, बेक्काउरिया रेमिफलोरा, बेक्केटा, बिसकोफिया जावानिका, बमबेक्स सीबा, कानारिअम स्ट्रिकटम, कैस्टोनोफ्सिस इंडिका, कोरोस्पेनदियस एक्सिलोरिस, सुकासिया तेबुलोरिस, खाइसोफाइलम लेन्सिओलेटम, कोफिया बेंघालेन्सिस। कोरडिया दाइकोटोमा, डिलेनिया इंडिका, डायोस्पाइरोस मालाबारिका, डाइसोजाइलोस गोबेरोम, इलिओकारपस टेक्टोरियस, फाइकस आरिकुलेटा, फाइकस बेंघार्लेसिस, फाइकास बेनजामिना, फाइकास नारवोसा, फाइकस रिलिजिओसा, मेंगिफेरा इंडिका, मेग्नोलिया होगसोनी, निओलैमारकिया कदम्बा, फाइलेनथस रेटिकुलेटस, स्पोनडियास पिन्नेता, सिजाइजिअम क्युमिनी, टरमिनेलिया बेलेरिका, टरमिनेलिया चिबुला, केमेलिया साइनेनसिस, ट्रिबिया नुडिफलोरा* आदि प्रमुख है।

बाहर से आये पौधे (खर पतवार) : गिब्बन अभयारण्य में पाये जानेवाले खर पतवार में से *एकासिया औरिकुलिफोरमिस, एजारेटम कोनिज्वाइडस, एलामेन्डा केथाकार्टिका, केसिया अक्सिडेन्टेलिस, केसिया सोफेरा, केसिया टोरा, एक्लिपटा प्रास्ट्रेटा, यूफोर्बिया हिरटा, लैंटेना केमारा, माइकेनिया माइक्रेन्था, माइमोसा प्युडिका, अकजैलिस कोर्निकुलेटा, स्कोपेरिया डल्सिस, साइडा रोम्बीफोलिया, टेमेरिन्डस इंडिका, यूरेना लोबेटा, जैनथियम इण्डिकम* आदि प्रमुख हैं।

गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य में पाये जाने वाले कुछ जीवजन्तु : गिबन वन्यजीव अभयारण्य में स्थानीय व देशी तथा विदेशी पर्यटकों के लिये हुलक बंदर एक आकर्षण का केंद्र है। पक्षियों में बुलबुल, तोता, मैना, आदि प्रमुख है। सर्पो में पाइथन एवं कोबरा बहुलता से मिलता है। पक्षियों में हार्नबिल, मोर, ऊल्लू व हिलमैना प्रमुख है। आदि वनमानुष अर्थात हुलक गिब्बन की एक विशेषता है कि यह एक वृक्षीय प्रजाति है जो नीचे जमीन पर नहीं उतरता । भारत में पाये जानेवाले हुलक गिब्बन को संकटग्रस्त प्रजातियों में से एक माना गया है। नर गिब्बन मुख्यतः काले और मादा गिब्बन भूरे होते है। भारत में केवल दो प्रजातियों के गिब्बन जैसे हुलक गिब्बन (पश्चिमी हुलक) और हुलक लिउकोनेदिस (पूर्वी हुलक) पाये जाते हैं। दोनो प्रजातियाँ पूर्वोत्तर भारत में सीमित है।

पूर्वोत्तर भारत के कीटभक्षी पौधे

सुशील कुमार सिंह, हुसैन अहमद बरभूईया एवं दुर्गेश वर्मा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

कीटभक्षी पौधे रोचक एवं विचित्र वनस्पतियाँ हैं, जो कि सामान्य पौधों की तुलना में अधिक विविधता प्रदर्शित करते हैं। यह पौधे प्राय: उन जगहों पर पाये जाते हैं जहाँ पोषक तत्वों की मात्रा सीमित होती है, और कीटों को पकड़ने की क्रियावली का विकास शायद पोषक तत्वों का पूरक स्रोत खासकर नाइट्रोजन प्रदान करने के लिए हुआ। सन 1875 में, चार्ल्स डार्विन ने अपने एक निबंध में कीटभक्षी पौधों की तरफ वैज्ञानिक समुदाय का ध्यान आकर्षित किया। वर्तमान समय में कीटभक्षी पौधों की लगभग 600 (छह सौ) प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से 44 प्रजातियाँ भारतवर्ष में पायी जाती हैं। कीटभक्षी पौधों को उनके शिकार पकड़ने की विधि के आधार पर निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया गया है।

वह पौधे जो अपने पत्ती-जाल को कीट आने पर ठीक उसी प्रकार बंद कर लेते हैं जैसे कि हम अपनी उंगलियों को हथेली पर बन्द कर लेते हैं जब कोई चींटी हमें काटती है।

वह पौधे जिनमें डहक प्रक्रिया (pitfall mechanism) होती है। इस प्रक्रिया में घड़े जैसी संरचना पायी जाती है जिसमें कीट फिसलकर गिर जाते हैं और अंत में उनका पाचन हो जाता है। ऐसे घड़े जैसी संरचना के मुख पर एक आच्छादन/ढक्कन पाया जाता है जो कि मौत के कुएं के दरवाजे के समान कार्य करता है। यह आच्छादन/ढक्कन कुछ प्रजातियों में सक्रिय व कुछ में निष्क्रिय रहता है।

प्राय : कीटभक्षी पौधों में बहुत से आकर्षण जैसे सुन्दर लुभावने रंग, मीठा स्राव व अन्य संरचनाएं पायी जाती हैं जो कि निर्दोष कीटों को फसाने में मदद करते हैं। ऐसे पौधे सामान्य जड़ें व हरी प्रकाश-संश्लेषण करने वाली पत्तियाँ होने के बावजूद भी कीटों का भक्षण करते हैं क्योंकि यह प्राय: अधिक वर्षा वाली, पोषकतत्व रहित भूमि अथवा नम और असिंचित अम्लीय भूमि में पाये जाते हैं। ऐसी नम भूमि अवायवीय होने के कारण अम्लीय होती है जिससे कि कार्बनिक पदार्थों का आंशिक विघटन होता है और अम्लीय पदार्थ आस-पास की जगह में फैल जाते हैं। जिसके फलस्वरूप बहुत से सूक्ष्म जीव जो कि कार्बनिक पदार्थो के पूर्ण अपघटन के लिए आवश्यक होते हैं पर्याप्त आक्सीजन उपलब्ध न होने के कारण मर जाते हैं। सामान्य पौधों के लिए ऐसी पोषक तत्व रहित जगह में जिंदा रहना कठिन हो जाता है परन्तु कीटभक्षी पौधे ऐसी जगहों पर आसानी से उगते हैं। क्योंकि यह प्रकाश संश्लेषण द्वारा निर्मित अल्प भोजन जो कि उनके जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अपर्याप्त होता है को, कीट पकड़ कर उनके नाइट्रोजन से भरपूर शरीर को पचा कर परिपूर्ण करते हैं।

उत्तर-पूर्वी भारत में कीटभक्षी पौधों की 21 प्रजातियों पायी जाती हैं जो 4 वंशों तथा 3 कुलों (ड्रोसेरेसी, नेपेन्थसी एवं लेंटीबुलरिऐसी) से संबन्धित हैं। प्रस्तुत लेख इन्हीं के बारे में जानकारी देने का प्रयास है।

पादप कुल ड्रोसेरेसी :

इस कुल में कीटभक्षी पौधों के चार वंश *ड्रोसेरा, ड्रोसोफिल्लम, एल्ड्रोवंडा* और *डाइओनिया* पाये जाते हैं। भारत में इस कुल के दो वंश *एल्ड्रोवंडा* व *ड्रोसेरा* पाये जाते हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में केवल *ड्रोसेरा* पाया जाता है।

ड्रोसेरा या (मुखजली) : *ड्रोसेरा,* जिसे आम भाषा में ''संड्यू'' के नाम से जाना जाता है, कीटभक्षी पौधों के समुदाय का एक बड़ा वंश है। इसकी विश्व में लगभग 150 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिसमें से भारत में 3 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिन्हें *ड्रोसेरा इंडिका, ड्रोसेरा बरमैनाइ* तथा *ड्रोसेरा पेल्टाटा* के नाम से जानते हैं। ये प्रजातियाँ आमतौर पर पूरे उत्तर-पूर्वी भारत में मिलती हैं। इस प्रजाति के पौधों में पत्तियों की ऊपरी सतह पर लंबे ग्रंथि-युक्त रोंम पाये जाते हैं जिन्हें स्पर्शक (tentacle) कहते हैं इनके पुष्प गुलाबी, बैंगनी तथा सफेद रंग के होते हैं।

कीटों को पकड़ने की प्रक्रिया : पत्तियों के ऊपरी सतह पर पाये जाने वाले स्पर्शक (tentacle) एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ स्रावित करते हैं जो धूप में ओस की बूंदों की भांति चमकता है। इसलिए *ड्रोसेरा* प्रजातियों को संड्यू कहते हैं। जब कोई कीट इन चमकती बूंदों के आकर्षण में आकार पत्तियों की सतह पर बैठता है तो वह इस द्रव में चिपक जाता है, जल्द ही स्पर्शक जो कि प्रोटीन संवेदनशील होते हैं नीचे झुक जाते हैं और कीट को मजबूती से पकड़ लेते हैं ताकि वह भाग न सके। पत्ती की सतह पर उपस्थित ग्रंथियां प्रोटीन को पचाने वाले एक एन्जाइम का स्राव करती हैं। यह स्पर्शक तब तक बंद अवस्था में रहते हैं जब तक कि कीट का पाचन पूर्ण नहीं हो जाता है। फिर

यह पचित पदार्थ पत्तियों द्वारा शोषित कर लिए जाते हैं।

आर्थिक महत्व : *ड्रोसेरा* की प्रजातियाँ औषधीय रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह पौधे कार्बनिक अम्ल व एन्जाइम की बहुलता के कारण दूध को दही बनाने में लाभप्रद हैं। एथ्नोमेडिसिन में *ड्रोसेरा* की पिसी हुई पत्तियों को नमक के साथ या बिना नमक के फोड़े-फुंसियों पर लगाते हैं। *ड्रोसेरा इंडिका* की पत्तियों के अर्क को गोखुरुओं (कोर्न्स) के ऊपर लगाया जाता है। *ड्रोसेरा पेलटाटा* को आयुर्वेदिक चिकित्सकों द्वारा स्वर्ण-भस्म बनाने में इस्तेमाल किया जाता है जो कि अच्छी बलवर्धक औषधि है। इसी प्रजाति से निकलने वाले पीले-भूरे क्रिस्टलीय रंग को रेशम की रंगाई में प्रयोग किया जाता है। *ड्रोसेरा* की प्रजातियों में *नैप्थोकुइनोन्स* जैसे कि *प्लम्बैजीन, ७-मेथाएलजगलोन* और *फ्लेवेनोइडस* पाये जाते हैं जिनका औषधीय रूप से काफी महत्व है। *ड्रोसेरा* से मिलने वाले *प्लम्बैजीन* नामक पदार्थ को गले के संक्रमण, काली खाँसी, मधुमेह, क्षय रोग, अकड़न, सूक्ष्म जीवों का संक्रमण, कुष्ठ रोग, लीस्मानियासिस, मलेरिया, कर्कट रोग (कैंसर), जनन क्षमता से संबन्धित विकार, गठिया, अस्थमा, प्रतिरक्षा परिवर्तक, सौन्दर्य, कामोत्तेजक, कीटनाशक, गर्भपातक, तथा परजीवी निमेटोड्स को दूर करने में प्रयोग किया जाता है। *7-मेथाएलजगलोन* कुछ कीटों के लिए दमनात्मक तथा कवकों के लिए अत्यन्त जहरीला होता है। *क्वेर्सेटिन फ्लेवेनोइड* कर्कट रोग के लिए लाभदायक है।

पादप-कुल नेपेन्थेसी :

इसमें एकल वंश नेपेंथिस है जिसकी विश्व में लगभग 85 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इस कुल के सदस्यों को प्राय: घटपर्णी या ''पिचर प्लांट'' के नाम से जाना जाता है। क्योंकि उनकी पत्तियाँ एक घड़े जैसी बनाती हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में इस कुल की केवल एक प्रजाति *नेपेंथिस खासियाना* पायी जाती है।

नेपेंथिस खासियाना (घटपर्णी) : इसे प्राय: उष्णकटिबंधीय घटपर्णी पादप के नाम से जाना जाता है। इंडो-मलेशियन क्षेत्र को इस वंश के विकास का केंद्र माना गया है। इस वंश की बहुत सी प्रजातियाँ यहाँ की स्थानिक (endemic) हैं या कुछ सीमित जगहों पर पायी जाती हैं। मेघालय *नेपेंथिस खासियाना* के लिए तप्तस्थल हैं। इस जैविक तथा पर्यावरणीय रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण, दुर्लभ, स्थानिक संकटग्रस्त, कीटभक्षी पौधे के प्राकृतिक आवास बहुत ही अनोखे हैं तथा पृथक आबादी में पाये जाते हैं। यह प्रजाति पश्चिमी खासी पहाड़ियों से लेकर पूर्वी खासी पहाड़ियों तथा जयंतिया पहाड़ियों और दक्षिणी गारो पहाड़ियों में समुद्र तल से 1000 से 1500 मीटर की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। इन पिचर पौधों की सुंदरता के कारण इसे संकरण द्वारा नये गुणों वाले पिचर पौधों को विकसित किया जाता है। इस कारण यह प्रजाति वानस्पतिक तथा बागवानी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह पिचर पत्तियों का एक रूपान्तरण है। पर्णदण्ड का निचला हिस्सा चपटा होकर पत्ती जैसी एक संरचना (फिल्लोड) का निर्माण करता है और पर्णदण्ड का ऊपरी भाग संकरा व स्प्रिंगनुमा एक संरचना-लतातन्तु (टेंड्रिल) बनाता है। जो कि सहारे के लिए पौधों से लिपट जाती है। पिचर का रंग चटख लाल, हरा, पीला अथवा इन रंगों का मिश्रण होता है। यह पिचर वायु में लटकते रहते हैं। पिचर की लम्बाई 5 से 30 से. मी. तक होती है। पिचर के मुख पर आधा-खुला हुआ ढक्कन पाया जाता है जो कीटों को पकड़ने में सहायता करता है।

कीटों को पकड़ने की प्रक्रिया : नेपंथिस में कीटों को पकड़ने के लिये डहक विधि पायी जाती है। चटख रंगीन तथा रहस्य से भरे हुए पिचर कीटों को आकर्षित करने का माध्यम हैं। पिचर के आगमन द्वार तथा आच्छादन/ढक्कन की निचली सतह पर एक शहद जैसा पदार्थ स्रावित होता है। जो कि कीटों को आकर्षित करता है। पिचर के अन्दर का भाग काफी फिसलन वाला होता है। एक बार जब कीट पिचर के अन्दर घुस जाते हैं तो फिसलन के कारण बाहर नहीं निकल पाते हैं। पिचर के निचले हिस्से में अन्दर की भित्ति पर बहुत सी ग्रंथियां पायी जाती हैं जोकि प्रोटीन पाचित करने वाले एन्जाइम का स्राव करती हैं। यह एन्जाइम कीटों के शरीर का पाचन करते हैं और पचे हुए पदार्थ पौधों द्वारा शोषित कर लिए जाते हैं।

आर्थिक महत्व : *नेपंथिस खासियाना* के पिचरों के अर्क को स्थानीय खासी एवं गारो लोग आँखों की खुजली, लाली, मोतियाबिन्दु व रतौंधी के उपचार में प्रयोग करते हैं। इसे पेट से संबन्धित विकारों, मधुमेह व स्त्री रोगों में भी इस्तेमाल किया जाता है। बिना खुले हुए पिचर को उसके तरल पदार्थो सहित पीस कर उसके लेप को विभिन्न त्वचा रोगों (जैसे कुष्ठ रोग) के उपचार में प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी इसे चावल से निर्मित मदिरा में मिश्रित कर मूत्र सम्बन्धी विकारों में प्रयोग करते हैं। पिचरों को कीट सहित पीसकर औषधि के रूप में पानी के साथ विसूचिका के रोगियों को दिया जाता है। यह प्रजाति औषधीय रूप से बहुत ही महत्वपूर्ण है अत: इसका संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

पादपकुल लेंटीबुलेरिएसी :

इस कुल में 3 वंश एवं उनकी 280 प्रजातियां हैं जो कि पूरे विश्व में पायी जाती हैं। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इनकी बहुलता है। भारतवर्ष में इस कुल के दो वंश *यूटीकुलेरिया* व *पिंगुइकुला* पाये जाते हैं। जिनको लोकप्रिय भाषा में ''ब्लैडरवर्ट्स'' और ''बटरवर्ट्स'' कहते हैं।

यूटीकुलेरिया या ब्लैडरवर्ट्स (भृंगी) : *यूट्रीकुलेरिया* एक बृहद व सर्वत्र पाया जाने वाला वंश है जिसकी कुल 220 प्रजातियाँ हैं जो विश्व के उष्णकटिबंधीय और शीतोष्ण क्षेत्रों में पायी जाती हैं। भारत में इस वंश की कुल 38 प्रजातियां हैं, जिनमें से 21 प्रजातियां स्थानिक हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में इस वंश की कुल 17 प्रजातियां : *यूट्रीकुलेरिया आरिया, यूट्रीकुलेरिया बाइफिडा, यूट्रीकुलेरिया सेरूलिया, यूट्रीकुलेरिया फारसीलाटा, यूट्रीकुलेरिया गिब्बा, यूट्रीकुलेरिया हिरटा, यूट्रीकुलेरिया जंसिया, यूट्रीकुलेरिया कुमाओनेन्सिस, यूट्रीकुलेरिया मल्टीकौलिस, यूट्रीकुलेरिया प्युबीसेन्स, यूट्रीकुलेरिया रेक्टा, यूट्रीकुलेरिया स्कैनडेन्स, यूट्रीकुलेरिया स्टीलेरिस, यूट्रीकुलेरिया स्टैनफीलडाइ, यूट्रीकुलेरिया स्ट्रीएटुला* एवं *यूट्रीकुलेरिया सुबुलाटा* है। जिसमें *यूट्रीकुलेरिया आरिया* एवं *यूट्रीकुलेरिया रेकटा* प्राय: सभी जगहों पर पाये जाते हैं। मेघालय राज्य में इनकी 14 प्रजातियाँ ज्ञात हैं। ब्लैडरवर्ट्स प्राय: शुद्ध पानी के झीलों और जल भराव वाले क्षेत्र में पाये जाते हैं। वर्षा के दौरान इनमें से कुछ प्रजातियाँ नम मिट्टी एवं पत्थर की सतहों को ढकने वाली मॉसों के साथ जुड़ी पायी जाती हैं। इनके पुष्पों के दलों में ऊपरी व निचली दो विशिष्ट ओष्ठ पाये जाते हैं तथा पुष्पों का रंग प्राय: चटख सफेद, पीला, नीला और बैंगनी होता है।

कीटों को पकड़ने की प्रक्रिया : *यूट्रीकुलेरिया* अपने शिकार (छोटे जलीय कीट) को एक विशिष्ट थैली में पकड़ता है। इस थैली में मुख के पास संवेदनशील रोम पाये जाते हैं तथा मुख एक आवरण द्वारा ढका रहता है जो कि अन्दर की तरफ खुलता है। जब कोई कीट इनके रोम के सम्पर्क में आता है तो इस थैली का आवरण स्वत: खुल जाता है और कीट पानी के प्रवाह के साथ खाली थैली में चले जाते हैं तथा थैली पानी भर जाने के बाद स्वत: बंद हो जाती है। यह प्रक्रिया कुछ ही क्षणों में पूर्ण हो जाती है। थैली के भीतरी भित्ति द्वारा निर्मित एन्जाइम कीटों का पाचन करते हैं और पचे हुए पदार्थो का अवशोषण कर लिया जाता है, थैली पुन:शिकार पकड़ने के लिये तैयार हो जाती है।

आर्थिक महत्व : *यूट्रीकुलेरिया आरिया* का उपयोग सजावट खासकर जलजीवालय (aquarium) में किया जाता है। *यूट्रीकुलेरिया स्टीलेरिस* खाँसी के उपचार में, *यूट्रीकुलेरिया सेरुलिया* को घावों की पट्टी करने में तथा *यूट्रीकुलेरिया बाइफिडा* को मूत्राशय संबन्धित विकारों में प्रयोग किया जाता है।

पिंगुइकुला अथवा बटरवर्ट : *पिंगुइकुला* वंश की विश्व में 55 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। जिनमें से भारतवर्ष में केवल *पिंगुइकुला एल्पाइना* प्रजाति ही पायी जाती है। यह जलधाराओं के किनारे ठंडी, दलदल वाली जगहों पर पाया जाता है। उत्तर-पूर्वी भारत में यह अरुणाचल प्रदेश व सिक्किम राज्य में पाया जाता है। *पिंगुइकुला एलपाइना* को ''एलपाइन बटरवर्ट'' के नाम से भी जाना जाता है। इसकी पत्तियाँ हरे तथा लाल और पुष्पों का रंग सफेद होता है।

कीटों को पकड़ने की प्रक्रिया : *पिंगुइकुला* पौधे में सम्पूर्ण पत्ती ही कीटों को पकंड़ने का कार्य करती है। जब कोई कीट पत्ती की सतह पर बैठता है तो वह पत्ती द्वारा स्रावित एक चिपचिपे पदार्थ से चिपक जाता है। और पत्ती की सतह पर उपस्थित संवेदनशील रोम कीट के बैठने का एहसास होने पर, पत्तियों के किनारे को मोड़ने में मदद करते हैं जिससे शिकार फस जाता है। पत्तियाँ शिकार का पाचन व अवशोषण होने के बाद पुन: सीधी हो जाती हैं।

कीटभक्षी पौधों का संरक्षण :

कीटभक्षी पौधे की कई जातियाँ संकटग्रस्त हैं तथा कुछ तो विलुप्त होने की कगार पर पहुँच चुकी हैं। *ड्रोसेरा पेल्टाटा* व *नेपेंथिस खासियाना* को लुप्तप्राय प्रजातियों की सूची में शामिल किया गया है। इन पौधों के औषधीय महत्व के कारण हो रहा इनका दोहन इनके विलुप्त होने का प्रमुख कारण है। ग्रामीण बस्ती के विस्तार एवं शहरीकरण के दौरान इनके प्राकृतिक आवासों का तेजी से विनाश हो रहा है। पौधों के प्राकृतिक आवासों में जाने वाले प्रदूषकों जिसमें उर्वरक, अपमार्जक, कीटनाशक व मल पदार्थ इत्यादि शामिल हैं, इनके विलुप्त होने के कारण है। कई कीटभक्षी पौधे जलीय आवासों के नजदीक उगते है जहां जलीय खरपतवार व प्रदूषित जल इनके विनाश के कारणों में से एक है।

ड्रोसेरा के औषधीय गुणों के कारण कई यूरोपीय देश *ड्रोसेरा इंडिका* और *ड्रोसेरा बरमैनाइ* को ''हारबा ड्रासेरी'' नाम की एक आयुर्वेदिक उत्पाद के लिए एशिया से आयात कर रहे हैं। बिना किसी उगाने के उपायों को अपनाये हुए एशिया के निर्यातक, जंगली प्रजातियों को अंधाधुंध उपायों से निर्यात कर रहे हैं। दूसरी अन्य मानव गतिविधियों जैसे कोयला खनन, पशु चरान, भूस्खलन, सड़क

निर्माण, कृषि कार्य, वनों की कटाई, दुर्लभ व स्थानिक *नेपेन्थेस खासियाना* के प्राकृतिक निवासों को नष्ट कर रहा है। सरकारी तौर पर इस पौधे के दुर्लभ एवं संकटग्रस्त प्रजाति की सूची में शामिल होने के बावजूद स्थानीय संग्राहकों द्वारा इस पौधे को भारत के अन्य राज्यों में निर्यात किया जा रहा है। इसके अवैध व्यापार को राकने के लिए इस प्रजाति को CITES के परिशिष्ट–1 में शामिल किया गया है।

इनके प्राकृतिक आवासों से संग्रहण व निष्कर्षण पर रोक लगायी जाय तथा इन पर केन्द्रित होकर कार्य किए जाये जिसमें पर स्वस्थाने संरक्षण तथा टिसू कल्चर तकनीकी की महती भूमिका हो सकती है। स्थानीय नागरिकों में जागरूकता इनके संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। सरकारी स्तर पर हो रहे विकास कार्यो में कीटभक्षी पौधे पाये जाने वाले स्थानों का विशेष ध्यान रखा जाय तथा ऐसे स्थानों को चिन्हित कर उसके संरक्षण करने के उपाय किए जायें ताकि प्रकृति की इस अनोखी देन को विलुप्त होने के खतरों से बचाया जा सके।

1. यूट्रीकुलेरिया स्ट्रीएटुला

2. ड्रोसेरा बरमैनाइ

असम की मिशिंग जनजाति के जनजीवन में वनस्पतियाँ

कांगकन पगाग, नन्दिता शर्मा एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में लगभग 23 जनजातियाँ निवास करती हैं। ये जनजातियाँ जीविकोपार्जन के लिए वनों तथा वहाँ की वनस्पतियों पर निर्भर है। इन्हीं जनजातियों में से एक है मिशिंग जनजाति। ये जनजाति पूर्व में मिरी कहलाती थी। ये असम की दूसरी सबसे ज्यादा आबादी वाली जनजाति है तथा यह ऊपरी असम के धेमाजी, लखीमपुर, सिबसागर, डिब्रूगढ़, जोरहाट, सोनितपुर, तिनसुकिया, गोलाघाट जिले में निवास करती है। 'मि' का शाब्दिक अर्थ होता है मनुष्य और 'शिंग' का अर्थ हैं शांत अर्थात शांत मनुष्य। इनका जनजीवन प्रकृति पर बहुत हद तक निर्भर है। मिशिंग जनजाति दोनयी-पोलो (सूर्य और चंद्रमा) की पूजा करते हैं। यह नदी और उसके लाभ से भली-भाँति परिचित है जिसकी वजह से ये ब्रह्मपुत्र एवं उसकी सहायक नदियों के समीप रहना पसंद करते हैं। नदियों के पास बसने के कारण इनको बाढ़ की समस्या का अक्सर सामना करना पड़ता है। इस समस्या के निदान के लिए ये अपने घरों को बाँस की सहायता से ऊंचाई पर बनाते हैं जिन्हे वे 'तासे ओकुम' कहते हैं। वनस्पति इनके जीवन का अपरिहार्य हिस्सा है। वनस्पतियों का उपयोग इनके रीति-रिवाज, समारोह, उत्सव, विवाह और दैनिक जीवन में होता है। वनस्पतियों से इनका लगाव इनकी परंपरागत पोशाकों में भी देखने को मिलता है जिन्हें मिशिगं जनजाति की महिलाएँ और लड़कियाँ खुद अपने हाथों से बुनती है। इनकी पोशाकों (एगे-गासोर (महिलाओं का परिधान), मिबू गालुक (जैकेट), रिबी गासोर (शॉल), गेरो (शॉल), डुमर (मफलर))में वे विभिन्न प्रकार के फूल, पत्तियों और पशु के डिजाइन बनाते हैं जो कि काफी सुंदर और आकर्षक होते हैं। मिशिंग जनजाति के लोग जीवन्त शैली वाले हैं। ये अपना जीवन उत्साह-उल्लास के साथ खेती, नाच-गाना एवं भोज करके व्यतीत करना पसंद करते हैं। वनस्पतियों का वर्णन इनके पारंपरिक लोकगीत ओई-नितोम में भी मिलता है। मिशिंग का मुख्य उत्सव आली-आए-लिगांग है जिसमें फागुन माह में प्रथम आहु धान का बीज रोपण करते हैं। धान की रोपाई के साथ अदरक, आलू, डाएस्कोरिया, मकई आदि भी लगाते हैं। इसके लिए वे खुले मैदान में एकत्रित होते हैं तथा उनमें से एक व्यक्ति दीप प्रज्वलित करता है। तत्पश्चात सब मिलकर पूर्वजों को प्रणाम करते हैं। पूजा में धान के बीज, अंडे एवं 'आपोंग' रखते हैं। यह पूजा फसल को प्राकृतिक आपदा से बचाने के लिए की जाती है। तत्पश्चात सांस्कृतिक नृत्य एवं गीत का कार्यक्रम होता है। इनके द्वारा किए जाने वाले इस नृत्य को 'गुमराग' कहते हैं जिसमें इनके जनजीवन तथा इनकी संस्कृति का दर्शन होता है। वनस्पति इनके जीवन के हर कड़ी से जुड़ी हुई है। मिशिंग का मुख्य खान-पान आपोंग, पेरेट ओइंग, पीठा ओइंग, नामसिंग, पुरांग इत्यादि है जिसमें कई जंगली पौधों का उपयोग किया जाता है। मिशिंग खास कर उन पौधों का अपने दैनिक जीवन में ज्यादा उपयोग करना पसंद करते हैं जो कि वनों में पाए जाते हैं। प्रस्तुत लेख में मिशिंग जनजाति के जनजीवन में प्रयोग होन वाले पौधों के बारे में विवरण दिया गया है।

मिशिंग जनजाति द्वारा औषधि के रूप में प्रयोग किए जाने वाले कुछ प्रमुख पौधे :

अनेक पादप जातियाँ मिशिंग जनजाति के लोगों में विभिन्न बीमारियों के इलाज में प्रयोग की जाती हैं। इनमें से कुछ के बारे में यहाँ पर विवरण दिया जा रहा है।

पाक्कोम *(क्लेरोडेंड्रम कोलेब्रूकियानम)*-उच्च रक्त चाप के लिए पत्तियों का प्रयोग होता है।

ताजिक *(फाइकस रेसिमोसा)*- पत्तों का प्रयोग यकृत विकारों को ठीक करने के लिए होता है।

आज्जिन मानिमुनी *(हाइड्रोकोटाइल जवानिका)*-पत्तियों का प्रयोग उदर संबंधी विकारों के इलाज में होता है।

तोरा *(अलपिनिया नाइग्रा)*- पत्तियों व नूतन तनों के सार का उपयोग पेट के कीड़े के निकर्षण में किया जाता है।

तालाब *(एलियम सटाइवम)* - प्रकन्द (बल्ब) वायु विकारों के इलाज में लाभप्रद है।

सोम्पा *(डिलेनिया इंडिका)* - फल पेट संबन्धित विकारों तथा बाल संबंधी रोगों में लाभप्रद है।

ओम्बे *(सर्कोक्लेमी पलचेरिमा)*- पत्तियाँ वायु विकार मे लाभकारी हैं।

नामनिंग *(एजरेटम कोनिजोइडेस)*- पत्तियों का प्रयोग भूख बढाने एवं नेत्रउपचार के लिये किया जाता है।

पोके जिगजिग *(कास्टस स्पेसिओसस)*– पत्तियाँ गर्भवती महिलाओं को देने से स्वस्थ रहती है।

दुरोन बोन *(ल्यूकस एस्पेरा)*– पत्तियाँ साइनस के उपचार में लाभकारी है।

एंगे *(कोलोकेसिया एक्यूमिनाटा)*– नये अंकुर गले संबंधित उपचारों में लाभप्रद है।

बोंकी रिपूग *(पेडेरिया फोएटिडा)* – पत्तियाँ वायु विकार संबंधी व्याधियों में लाभप्रद है।

मूसोंदरी *(हुटोनिया कोरडेटा)* – पत्तियाँ उदर संबंधी विकारों में लाभप्रद है।

पसोटिया *(वाइटेक्स निगुण्डो)*–पत्तियों के लेप को त्वचा संबंधी बीमारियों में लगाने से आराम मिलता है।

सिते बांकों *(सोलेनम टार्वम)* – फल पेट दर्द के लिए इलाज में लाभकारी है।

मिशिंग जनजाति द्वारा खाद्य के रूप में प्रयोग किए जाने वाले कुछ प्रमुख पौधे :

कई जातियों के पौधे इस जनजाति द्वारा खाद्य पदार्थो के रूपों में प्रयोग की जाती हैं। उनमे से कुछ के बारे में जानकारी (स्थानीय मिशिंग नाम, वानस्पतिक नाम तथा भोज्य भाग) देने का प्रयास किया गया है : बेजा ओई ईसिंग (*क्लेरोडेंड्रम सेरटिम*)–पत्ते; मारसांग जो (*स्पाइलेन्थस एक्मेला*)– पुष्प, पत्ते; कपाक (*मूसा बल्बिसियाना*)– पुष्प, तने; सोम्पा (*डिलेनिया इंडिका*)– थैलमस; ओम्बे (*सर्कोक्लेमीस पलचेरिमा*) –पत्ते; बांगको (*सोलेनम कुर्जी*)– फल; देरमी ओइंग (*मेलिओसमा पिनाटा*)–पत्ते; नकुंग (*पैसिफ्लोरा असमिका*)–पत्ते; एंगे (*कोलोकेसिया एक्यूमिनाटा*) – कन्द; बाँ गजाली (*डेंड्रोकेलमस हेमिल्टोनी*) – नया तना; कोलमो (*आइपोमिया एक्वेटिका*)–पत्ते; आलि (*डायोस्कोरिया एलाटा*) – कन्द; पातांग (*अलटरनेन्थेरा सेसाइलिस*) – पत्ते; ओगोरा (*जैन्थियम स्ट्रूमेरियम*)– पत्ते; पेरेट (*विगना मूंगो*)–दाल; आसी कुहसुंग (*मार्सिलिया क्वाड्रिफोलिया*) – पत्ते

मिशिंग जनजाति द्वारा धार्मिक रूप में प्रयोग किए जाने वाले कुछ प्रमुख पौधे :

पौधों की अनेकों जातियाँ इनके धार्मिक अनुष्ठानों, रीति रिवाजों तथा त्याहारों में प्रयोग की जाती हैं। उनमें से कुछ का स्थानीय मिशिंग नाम तथा वानस्पतिक नाम निम्नवत है।

मानिमुनी (*सेंटेला एसियाटिका*); ताके (*जिंजिबर ओफिसिनेल*); तालाब (*एलियम सटाइवम*); कपाक (*मूसा बल्बिसियाना*); सोम्पा (*डिलेनिया इंडिका*); ओम्बे (*सर्कोक्लेमीस पलचेरिमा*); बोंकी रिपूग (*पेडेरिया फोटिडा*); मूसोंदरी (*हुटोनिया कोरडेटा*); बोन जालूक (*स्कोपेरिया डल्सिस*); ताबाद (*सैकेरम ओफिसिनेल*); मोदोरी (*सिडियम गुवाजावा*); जेयिंग (*केलेमस रोटंग*); तुलोखी (*ओसिमम सेंक्टम*); आम्बुन (*ओराइजा स्टाइवा*), ईसिंग ओकांग (*लाइगोडियम फ्लेक्सिओसम*); सुमयों यूमरांग (*यूपेटोरियम ओडोरेटम*); पेरेट (*विगना मूंगो*); जाति दिबांग (*बम्बूसा टुल्डा*); तोरा (*अलपिनिया नाईग्रा*); गुमधन (जिया मेज़ा); पीरो (*इम्पेराटा सिलिन्ड्रिका*) आदि।

मिशिंग जनजाति द्वारा आर्थिक रूप में प्रयोग किए जाने वाले कुछ प्रमुख पौधे :

पौधों की कई जातियाँ जैसे हलोधी (*करकुमा लाँगा*); ताके (*जिंजिबर ओफिसिनेल*); तालाब (*एलियम सटाइवम*); कपाक (*मुसा बल्बिसियाना*); सोम्पा (*डिलेनिया इंडिका*); एंगे (*कोलोकेसिया एकुमिनाटा*); एजार (*लेगरोस्ट्रोमिया स्पेसिओसा*); आम्बुन (*ओराइजा सेटाइवा*); नूनी (*मोरस एसिडोसा*); पेरेट (*विगना मूंगो*); एरा (*रिसिनस कमुनिस*); होरियो (*ब्रेसिका नाइग्रा*) आदि हैं जो इनकी आमदनी का प्रमुख जरिया है जिनमें से अधिकांश की ये खेती करते हैं तथा स्थानीय बाजारों मे बेच कर मुद्रा अर्जित करते हैं।

मिशिंग जनजाति के लोगों को वनस्पतियों से काफी लगाव है। इसी लगाव के कारण वे वनों मे पाए जाने वाले पौधों को अपने गृह वाटिका मे लगाते हैं। शहर में बसे मिशिंग जन जाति के लोग भी इन वनस्पतियों को अपने रीति रिवाज में प्रयोग करना पसंद करते हैं। ये अपने उत्सव, *आली–आये–लिगांग* जो कि एक सप्ताह चलता है, के दौरान पेड़ नहीं काटते, हल नहीं जोतते, नदियों में मछली नहीं पकड़ते।

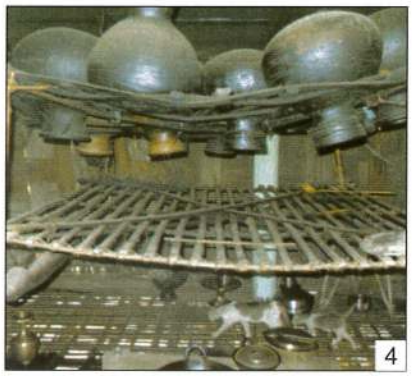

1. अपने पारंपरिक परिधानों में मिशिंग जनजाति 2. मिशिंग जनजाति का पारंपरिक घर 3. मिशिंग के मुख्य उत्सव 'आली-आए-लिगांग' में बीजरोपण करता समुदाय का एक व्यक्ति 4. मिशिंग जनजाति का पारंपरिक रसोईघर 5. मिशिंग द्वारा पारंपरिक वस्त्र की बुनाई 6. पोके जिगजिग 7. तोरा 8. मारसांग 9. कोलमो - एक खाद्योपयोगी पादप 10. ओम्बे - एक बहुपयोगी पौधा 11. एवं 12. होरिअरा (बांए) तथा आंबुन (दाएं) के लहलहाते खेत खलिहान

फुयांग्पुई (ब्लु माउंटेन) राष्ट्रीय उद्यान, मिजोरम की वनस्पति

समीरन पांडे एवं **बिपिन कुमार सिन्हा**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान, उत्तर पूर्वी भारत के मिजोरम राज्य के दक्षिण - पूर्व में 22°37'-30°15' उत्तरी अक्षांश एवं 89°22'-97°03' पूर्वी देशांतर मे बीच लंगत्लाई जिला में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 50 वर्ग किलोमीटर है। इसे मिजोरम सरकार ने वनस्पतिक विविधता के कारण सन 1992 में राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया। यह राष्ट्रीय उद्यान इंडो-म्यानमार क्षेत्र में स्थित है। यह समुद्र तल से 1360-2368 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है जो मिजोरम राज्य मे पाये जाने वाले पर्वत श्रेणियों मे सबसे ऊंची है। फुयांग्पुई ब्लू माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान अपनी प्राकृतिक सुंदरता एवं वनस्पतिक विविधता के साथ ही रोडोडेंड्रोन, बांस एवं ओर्किड्स के लिये जाना जाता है। यहाँ का तापमान मुख्यत: 12°C से 30°C तथा औसत वर्षा 2000-3000 मिली मीटर प्रति वर्ष के बीच में रहता है। इसके कारण यह उद्यान उष्ण कटिबंधीय अर्ध-सदाबहार वन की श्रेणी में आता है। इस क्षेत्र की मुख्य नदी कोलोडाइन है जो मिजोरम राज्य की प्रमुख नदियों में से एक है। इस क्षेत्र में बहुत से जंगली जानवर जैसे बार्किंग हिरन, सांबर, लंगूर, स्टम्प टैल बंदर एवं पंछियों की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती है। यहां के वनों में पाई जाने वाली प्रमुख वनस्पतियों में :

वृक्ष : *एक्टिफिला एक्सेल्सा, अरालिया सबकोर्डेटा, केस्टनोप्सिस इंडिका, ग्लोचिडिओन खासिकम, मैरिका एस्कुलेंटा, फोटिनिया टिंग्रीफोलिया, कुएरकास ग्रिफिथी, रोडोडेंड्रोन आर्बोरेटम, सौरोपस मैक्रोफ्यल्लस, शिमा वालिची, सिंप्लोकोस स्पीकाटा, ट्रिमा ओरिएंटेलिस, वेबेरा कोरियम्बोसा, प्रूनस सोरोसोइडेस।*

झाड़ी : *केलिकार्पा रुबेल्ला, क्लोरेन्थस ब्रेकिस्टेकिस, सिन्नेमोमम तमाला, कोल्कौहोनिया कोक्सीनिया, डेस्मोस लोंगीफ्लोरस, यूरिया अकुमीनाटा, गोनिओथेलेमस सेस्कुईपीडेलिस, इंडिगोफेरा हेटेरंथा, लेप्टोडर्मिस ग्रिफिथि, लुकुलिया पिनसियाना, मोरिंडा एंगस्टीफोलिया, निओलित्सिया केसिया, पोलीगेला एरिलाटा, रावल्फिया डेन्सीफ्लोरा, सेबिया लेन्सिओलेटा, सिल्बीयन्थस ब्रक्टियेटस, स्ट्रोबिलेन्थस कोलोरेटस* पाये जाते हैं।

शाक : शाक पादपों में मुख्यत : *एनिमोन इलोंगेटा, बेगोनिआ हेटाकोआ, कार्डमाइन डेबाइलिस, सेरास्टीयम सेस्पिटोसम, कूफिया बल्सामोना, ड्रोसेरा पेलटाटा, गेलियम रोटंडीफोलियम, इंपेसेन्स रेडीकाटा, इंडीगोफेरा सेस्कुइपीडेलिस, लेपिडागेथिस रीजीडा, लीम्नोफिला ग्रेटिओलोइडिस, पौजलजिया हिर्टा, प्रेटिया बेगोनीफोलिया, रेननकुलस सिफयुसस, सलोमोनिया कांटोनिएन्सिस, वायोला सरपेन्स* इत्यादि पाये जाते हैं।

आरोही : उद्यान के मुख्य आरोही पादपों में *बिट्नेरिया पइलोसा, डायोस्कोरिया आलाटा, डायोस्कोरिया हेमिल्टोनी, फाइकस स्केंडेन्स, पेरिकंपाइलस ग्लौकस, पोराना रेसीमोसा, सेनेसिओ स्केंडेन्स, टेट्रास्टिग्मा रूमीसीस्पेरम, वाईटिस डिस्कलर* आदि उल्लेखनीय।

पराश्रयी एवं परजीवी पौधे : उद्यान की पराश्रयी एवं परजीवी पादपों में *एग्नेसिया इंडिका, एगापेटिस एफीनिस, बैलेनोफोरा डायोइका, डेंड्रोबियम पेगुयनम, डिसचिडिया नुमुलारिया, एपिपोगीयम रोसीयम, इरिया मस्कीकोला, हुपेर्जिया हमील्टोनाई, मोनोट्रोपा युनीफ्लोरा, नियोहाईमेनोपोगोन पेरासीटिकस, पाइरोसिया पोरोसा, सेडाम मल्टीकोली* आदि प्रमुख हैं।

घास : *अरुन्डीनेला म्यूटिका, अरुन्डीनेरिया रेसीमोसा, एराग्रोस्टिस नाइग्रा, पोआ एनुआ, सीटरीया वार्टीसिल्लाटा, थायसेनोलिना मेक्सिमा, थेमेडा बिलोसा।*

वनस्पतिक विविधता : अब तक 367 जातियाँ, 310 वंश एवं 109 कुल के पौधों को लिपिबद्ध किया जा चुका है। यहां पर मुख्यत: *एस्टेरेसी, रूबिएसी, लेमिएसी, यूफोर्बिएसी* एवं *पोएसी* कुल के पौधों की बहुलता है।

पौधों की प्रमुख प्रजातियां : *ओरन्डीनेला म्यूटिका, बाईडेन्स पिलोसा, केस्टनोप्सिस इंडिका, क्लोरोफायटम खासियनम, सिम्बोपोगोन खासियनस, यूपेटोरियम, ओडोरेटम हेडिओटीस हिस्पिडा, मेलेक्सिस एकूमिनाटा, ऑसबेकिया नेपालेन्सिस, पोलिगोनम*

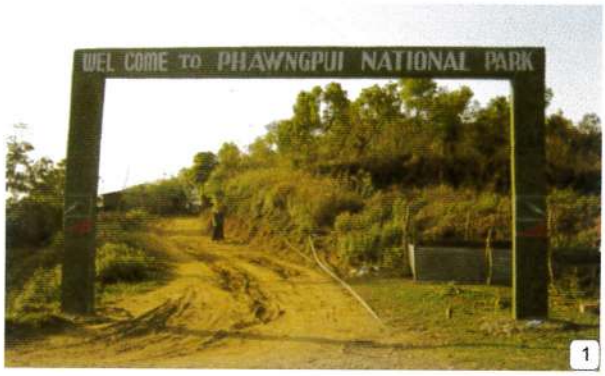

1. राष्ट्रीय उद्यान का मुख्य प्रवेश द्वार; 2. ब्लू माउंटेन का एक दृश्य; 3. कोलाडाइन नदी; 4. *दुवाबंगा ग्रैंडीफ्लोरा*; 5. *एल्लोफिलस विलोसस*; 6. *एनाईसोंचीलस पेलीडस*; 7. *इरिओकोलोन लुजुलीफोलियस*; 8. *स्कुटेलारिया डिसकलर*

9. *लोबेलिया पायरामिडलीस;* 10. *स्वेर्सिया कोर्डेटा;* 11. *मोनोट्रोपा यूनिफ्लोरा;* 12. *हेबेनेरिया डेंटाटा;* 13. *स्टिक्सिस सुवाविओलेंस;* 14. *बिटनेरिया पाइलोसा;* 15. *केंपानुमिया जेवानिका;* 16. *ग्लोबा वार्डियाई*

चाइनेन्स, पोटेंटिला फुलजेन्स, पौजोल्जिया हिर्टा, क्वर्कस ग्रिफिथी, रोडोडेंड्रोन आर्बोरेटम, रूबस इलिप्टिकस, थायसेनोलिना मेक्सिमा, ट्रायमफेटा पाइलोसा आदि।

दुर्लभ प्रजातियां : दुर्लभ प्रजातियों में *अगापिटिस अफीनिस, केंपानुमिया जेवानिका, सिंबीडीयम साइपेरीफोलियम, डेल्फिनियम आल्टीसिमम, इरिया मस्कीकोला, ग्लोब्बा वार्डियाई, हुपेर्जिया हेमिल्टोनी, मोनोट्रापा युनीफ्लोरा, फ्रयमा लेप्टोस्टेचिया, जुक्सिन एफीनिस, गोम्फोस्टीमा वेलुटिना* उल्लेखनीय हैं।

उपयोगी पेड़-पौधे :

खाद्य पौधे : *केस्टनोप्सिस इंडिका, रूबस इलिप्टिकस, फ्रेगेरिया इंडिका, एलिग्नस अंबेलाटा, हौतूनिया कोर्डेटा, मेनीहाट एस्कुलेंटा* इत्यादि।

औषधीय पौधे : *एल्लोफिलस विलोसस, डेंटेला रेपेन्स, फ्लेमेंजिया कोंजेसटा, हायड्रोकोटाइल एशियाटिका, रावोल्फिया डेन्सीफ्लोरा, वेलेरियाना वालीची, वेडेलिया वालीची* इत्यादि।

इमारती लकड़ी : *केस्टनोप्सिस इंडिका, गार्सिनिया एनोमोला, ग्लोचिडिओन खासिकस, प्रूनस सेरिसोइडेस, ट्रिमा ओरिएंटेलिस, शीमा वलीची* इत्यादि।

सजावट के लिए : *एग्रस्टोफिलम केलोसम, बल्बोफिलम सिलिनड्रीएसम, सिलोगायनी लोंगिपेस, डेन्ड्रोबियम लोंगिकार्नु, आटोकाइलस पोरेक्टा, वेंडा सेरुलिया* इत्यादि।

संकट एवं संरक्षण : फुयांग्पुई ब्लु माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ मिजोरम की प्राकृतिक संपदा है और इसका संरक्षण करना एवं इसे बचाये रखना हमारे पर्यावरण के लिए आवश्यक है। बाहर से आए हुऐ खर पतवार जिसमें प्रमुख है *लेंटाना केमारा, यूपेटोरीयम ओडोरेटम, बाईडेन्स पिलोसा* को खत्म करना आवश्यक हैं, जो उद्यान में तेजी से फैल रहे हैं और यहां के मूल वनस्पतियों को नष्ट कर रहे हैं।

मेघालय के महत्वपूर्ण औषधीय पौधे और उनकी उपयोगिता

रमेश कुमार, सचिन शर्मा एवं बिपिन कुमार सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

पूर्वोत्तर भारत सिक्किम, असम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड एवं त्रिपुरा राज्यों का अद्‌भुत समायोजन है। मेघालय इन्ही आठ राज्यों में से एक है। मेघालय में मुख्य तीन जनजातीय समुदाय खासी, गारो तथा जैन्तिया निवास करते हैं। मेघालय राज्य 25°00' व 26°10' उ तथा 89°45' व 92°45' पू० के मध्य स्थित है, यहां की भौगोलिक एवं जलवायु विविधता यहां के घने वनों में अद्‌भुत जड़ी-बूटियों के पाये जाने का प्रमुख कारण है। न केवल भोजन, आश्रय एवं स्वास्थ्य की देखभाल बल्कि मन की शांति के लिये भी औषधीय पौधों का उपयोग होता रहा है, किन्तु हाल ही में इन पौधों के अत्यधिक दोहन और विकास की गतिविधियों के कारण इनको संरक्षित करने तथा इनके घटकों का अध्ययन करने की जरूरत समझी जाने लगी है।

मेघालय में रहने वाले जनजातीय समुदाय के लोगों को स्थानीय औषधीय पौधों के बारे मे पर्याप्त ज्ञान है, इन्होंने यह ज्ञान पारंपरिक रूप से तथा प्रयासों एवं असफलताओं से मिली सीख द्वारा अर्जित किया है। इनके इस ज्ञान को वैज्ञानिक रूप से इस्तेमाल कर अनेक असाध्य रोगों का इलाज खोजा जा सकता है। आकड़ों के अनुसार उत्तर-पूर्वी भारत में प्रचलित चिकित्सा प्रणालियां तथा उसमें उपयोग होने वाले पौधों का विश्लेषण इस प्रकार है :

चिकित्सा प्रणालियां	प्रजातियों की संख्या
एलोपैथी	38
आयुर्वेद	1769
स्थानीय पद्धति	4671
होम्योपैथी	482
सिद्ध	1121
तिब्बती	279
यूनानी	751

हर जनजातीय समुदाय का अपना पारंपरिक चिकित्सक होता है। खासी प्रजातियों मे पारंपरिक चिकित्सकों को 'नोंग एइ दवाई किनबत', जैंतिया हिल्स में 'उवा ए दवाई' और गारो हिल्स में 'कवीराज' के नाम से जाना जाता हैं। मेघालय में स्थानिक और लुप्तप्राय औषधीय पौधों तथा पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त औषधीय पौधों की प्रजातियों की सूची उनके वनस्पतिक नाम, स्थानीय नाम तथा प्रयोग किये जाने वाले उपयोगी हिस्सों तथा बीमारी जिसमें प्रयोग किया जाता है, का विवरण निम्न प्रकार है :

राज्य में स्थानिक और लुप्तप्राय औषधीय पौधों की सूची :

वानस्पतिक नाम	स्थानीय नाम	उपयोगी हिस्सा	बीमारी
केमेलिया केडुका	दाइंग तेरनेम	जड़	त्वचा रोग
सिट्रस लेटीपस	सोह हेए	फल, पत्तियां	बदन दर्द, उल्टी, सर्दी, बुखार
गोनियोथेलेमस साइमोनोसाई	--	फल	गला जलन
नेपेन्थिस खासियाना	थीयू राकोट	तना	मूत्र विकार, पेट संबंधी विकार, रतौंधी, त्वचा रोग, कुष्ठ रोग
ओफीओराइजा सबकेपिटेटा	समाचीक	जड़, पत्तियां	बुखार, गले में खराश, टोन्सिल,
ओसबेकिया केपिटेटा	सोह पाइथेम	पूरा पेड़	सर्प काटने, मांसपेशियों की सूजन
सोफोरा एकुमीनेटा	पलवंग	छाल	गर्भावस्था (प्रसव के बाद

			रक्तशोधक)
जाइलोसिमा लोंगीफोलियम	दाइंग कनी, फूलवल	छाल	पेट दर्द

मेघालय की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में उपयोगी औषधीय पौधों की प्रजातियों की सूची :

वानस्पतिक नाम	स्थानीय नाम	उपयोगी हिस्सा	बीमारी
टर्मिनेलिया चेबुला	अरतक	छाल, फल	अस्थमा, पेचिश, खांसी, प्लीहा विकार दस्त
पैडेरिया स्केनडन्स	पासीम, दाइंग जाइरमी	पूरा पेड़	चोट, पेचिश, पेट के विकार, दस्त
एपोरुसा डायोका	चमोलजा	छाल	कुष्ठ
होलेरिना एंटीडीसैन्ट्रिका	गोलमात्रा	छाल, बीज,पत्तियां	पेचिश, मिरगी, चक्कर आना
लिट्सिया मोनोपेटेला	बोलदोकाकी, लाहाम बोल	छाल. बीज	कुष्ठ, गर्भपात, चोट लगने
रावोल्फिआ सरपेन्टीना	डोगरीक्म	जड़	मलेरिया, चेचक, बुखार, क्षय रोग, उच्च रक्तचाप, सांप के जहर, पेट दर्द
साइजीजियम प्रजाति	चमबू	छाल	मधुमेह
स्वरसिया चिराइता	चीरोता, शरीता	पूरा पेड़	मलेरिया, बुखार, टीबी, हैजा, मधुमेह
कुरकुमा प्रजाति	दाइक ची	शल्ककंद	साँप का जहर, मलेरिया
	अगटची	छाल	साँप का जहर
सेन्टेला एशियाटिका	माना, मुनी, खाह पो	पत्तियां	बुखार, खाँसी व सर्दी, रक्तचाप, पेचिश, हैजा, पेट में दर्द
कुरकुमा अंगस्टिफोलिया	दाइक काटोंगगीसीम	शल्ककंद	अस्थमा, पेचिश, उल्टी
कुरकुमा केसीया	दाइक बेहोली	शल्ककंद	गठिया, फ्रैक्चर
इमब्लिका ओफीसिनेलीस	आमबरे, सोहमाइलेंग	छाल, फल,पत्तियां	मासिक धर्म समस्या, रक्तचाप, त्वचा रोग, खाँसी व सर्दी
एलो वेरा	सल कोमला, सीनतीयू शाइलूइत	पूरा पेड़	कमजोरी, बुखार, फ्रैक्चर, अस्थमा, सर्दी, जला घाव, कैंसर
मोरिंडा अंगस्टिफोलिया	चीनोंग	पूरा पेड़	पीलिया, नेत्र रोग
	मठरीया बोल	पत्तियां	मिरगी
टर्मिनेलिया बेलिरिका	चूरी बोल, चाइरोर	छाल, फल	अरक्तता, खाँसी व सर्दी, मासिक धर्म विकार
जिमनोकार्डिया ओडोरेटा	बोलरीबू		अस्थमा
एवेरोहा केरमबोला	एमलेंगा सोहखलू	फल	पीलिया, पेचिश
	बोलन्ची	छाल	फ्रैक्चर
	डोकरीकरा	पूरा पेड़	फ्रैक्चर
कोलोकेसिया प्रजाति	मानीया	कंद	फ्रैक्चर
बोहिनीया प्रजाति	मेगोंग	छाल	कब्ज अतिसार, फ्रैक्चर
	इकबातिया	छाल	पेचिश
	डोचेंगब्रिप	छाल	माहवारी की समस्या

कुरकुमा जीओडेरीया	होल्दीयासोक, सेयींग खलू	कंद	पीलिया, पेचिश
एसपेरेगस रेसीमोसस	मेमंग तमटची	जड़	मधुमेह, उदर विकार, रक्तचाप
पाइपर ग्रेफिथी	असीरा	पूरा पेड़	पक्षाघात
पाइपर प्रजाति	मटचा पेन	पूरा पेड़	पक्षाघात
कुरकुमा अमादा	दाइक टेगटचू	शल्ककंद	गाल स्टोन
मोलीनेरीया रिकर्वेटा	रीकोकसी	कंद, पत्तियां	दस्त, पेचिश
	दोकाइम	पत्तियां	फ्रैक्चर
टेमरिंडस इंडिका	चीग	पत्तियां	फ्रैक्चर
	डोचेंगचेंग	पत्तियां	फ्रैक्चर
केसिया आक्सिडेंटेलिस	डोपवंग	पत्तियां	फ्रैक्चर
	मतसम	पत्तियां	फ्रैक्चर
	गोलबीरा	पत्तियां	अस्थमा
फ्लोगाकेंथस टयूबीफ्लोरस	अलोट	पत्तियां, फल	रक्तचाप
केसिया फिस्टुला	स्नारु	छाल, जड़	दस्तावर,टॉनिक,ज्वरनाशक,पीलिया
हेडिकियम कोरोनेरियम	गोंग	शल्ककंद	उल्टी, पेट दद, मिर्गी
एगल मारमेलास	सेलप्री, बेलेथी	पत्तियां, जड़, छाल, फल	कमजोरी, अल्सर, बुखार, उदर रोग
ओरोजाइलम इंडिकम	काइरींग	छाल, पत्तियां	पीलिया, बुखार
कैमफेरिया प्रजाति	चूपल दाइक	शल्ककंद	बदहजमी, पेट दर्द
स्टीफेनिया हरन्डिफोलिया	समकुसीम	कंद	अस्थमा
	बोगा सलग्रो	पत्तियां	कमजोरी, पीलिया
	बोलरासीम	छाल	हैजा, मिर्गी
	समकातोंग	शल्ककंद	उदर गेस
	दाइक बीसी	शल्ककंद	गठिया
सिफलेरा वेनूलुसा	जेंगजील	छाल, पत्तियां	निमोनिया
	डोरीमीत	छाल	पीलिया
	मेमंग वारडो	तना	फ्रैक्चर
	डेरास्तेंग	पत्तियां	माहवारी की समस्या
	डेयरचीक बुडू	छाल	माहवारी की समस्या
	समप्रेत	पत्तियां	मोतियाबिंद
टाइलोफोरा इंडिका	ममलोकी	पत्तियां	कैंसर
	दगल	पत्तियां	कमजोरी
कुरकुमा प्रजाति	समजंगी	पत्तियां	नेत्र रोग
	अंदाइम दाइक	कंद	माहवारी की समस्या
कैमफेरिया गलांगा	दाइक वलसारी	छाल	रक्तस्राव
	वकप्राता	पत्तियां, कंद	बदन दर्द
	दाइक चीसीक	पत्तियां, कंद	बदन दर्द
	बोगा जाचोंग	पत्तियां	पीलिया

	दाइक बन	कंद	निमोनिया
	मोंगनल	फूल,फल	बवासीर
वाइटेक्स निगुन्डो	रागरे	छाल	अरक्तता
रस एक्यूमीनेटा	बोलमाइचेंग	छाल	मूत्र संक्रमण
	अमांगो	छाल	फ्रैक्चर
	गनपींग	छाल	फ्रैक्चर
	तसरक	छाल	फ्रैक्चर
	चोंगाइ बीता	कंद	फ्रैक्चर
	तसुनदू	कंद	फ्रैक्चर
	मीचेंग	जड़, पत्तियां	फ्रैक्चर
	मेबीटची	जड़, पत्तियां	फ्रैक्चर
सिसस क्वड्रान्गुलेरीस	समरीटचु	तना	फ्रैक्चर
जसटीसीया गेंडारुसा	डोजागाइप	पत्तियां	फ्रैक्चर
	गिमबील	छाल	फ्रैक्चर
केलोपट्रोपिस प्रोसेरा	का अंग	पूरा पेड़	मलेरिया
पोटेन्टीला फुलगेन्स	लानीएंग कीनथेइ	पूरा पेड़	रक्तचाप
टीनोस्फोरा कोर्डीफोलिया	जारमाइ ख्लाओ	पूरा पेड़	निम्न रक्तचाप
यूपेटोरियम एडीनोफोरम	लतनाइओंग	पत्तियां	जला घाव, कटने पर, चोट लगने पर
एरिथ्रिना इंडिका	दाइंग सोंग	पत्तियां	जला घाव
एलपीनिया गलांगा	लाकुड	पत्तियां	जला घाव
फेगोपाइरम साइमोसम	जारैन	पत्तियां, फल	जला घाव, औषधीय सलाद, पेचिश, कटने पर, चोट लगने पर
धतूरा स्ट्रेमोनियम	थीयू शूलीम	पूरा पेड़	लकवा, गठिया, स्ट्रोक
ओसबेकिया केपीटेटा	सोह लाकथुत	पूरा पेड़	मांसपेशियों मे सूजन
नेपेन्थिस खासीयाना	मेमंग कोकसी, थीयू राकोट	रस	अस्थमा, अपच, गुर्दे की समस्या, रात का अंधापन, त्वचा रोग
एकोरस केलेमस	किनबत कासीयुड	पूरा पेड़	मानसिक रोग, गर्भावस्था
एलीयम सटाइवम	रेजिन, रीनसुन सिनतीयूवर	पूरा पेड़	पूरे पैर में जलने का दर्द
आर्टीमेशिया वल्गेरीस	जाइव	पूरा पेड़	एंटिफंगाल, घाव लगने पर
	साइंगबलाई	कंद	पेट दर्द, फ्रैक्चर
	साइंगख्मोह	कंद	लगातार खांसी
	बेट	कंद	लगातार खांसी
	जीरवींग	कंद	पेचिश
एसपेरेगस फिलीसाइनस	सीहाजेकर	कंद	पुटी, बवासीर
पाइपर पीपुलोइडस	सोहम्रीत ख्लोह	बीज	लगातार खांसी
अजाडिरकटा इंडिका	नीम	पत्तियां	पेचिश, दस्त
मुसन्डा फरोनडस	सिंतु स्लाइह	पत्तियां	शरीर की सूजन
रिसिनस कम्युनीस	दाइंग कासटोन	पत्तियां	गठिया, शरीर की सूजन

शीमा वालीची	बोलदाक, दाइंग	पत्तियां	कटने पर,चोट लगने पर,
पुहलीह	कीड़े होने पर		
बिगोनिया राक्सबर्गी	जगॉह	पत्तियां	बवासीर, पेचिश, लगातार खांसी
चीनोपोडीयम एम्ब्रोओइडस	आइदा	पत्तियां	टाइफाइड, बुखार, निमोनिया
मेलोटस फिलिपेन्सिस	जोरट, लोसन, डेग चंदन	छाल, फल	त्वचा रोग
ड्राइमेरिया कोरडेटा	नाइ के	पत्तियां	साप के काटने पर
हुटुनिया कोरडेटा	जमीरदोह	पत्तियां	खून की शुद्धि
	तराह लेमन	पत्तियां	दांत मे दर्द
सीडीयम गुआजावा	सेपरीन	पत्तियां	पेचिश
नीकोटिना टोबेकम	सद, दूमा	पत्तियां	दांत मे दर्द
स्माइलेक्स मेक्रोफाइला	स्वारथीट	पूरा पेड़	सांप के काटने पर
स्माइलेक्स लेन्सिफोलिया	स्वारथीट	पूरा पेड़	सांप के काटने पर
आग्जेलिस कोरनीकुलेटा	लदावके	पत्तियां	सर्पदंश, पेचिश, लागातार खांसी
मेसुआ फेरिया	केराई, डेंगगाई	पुष्पक्रम, कलियां	गैस्ट्रिक, मधुमेह
साइपरस रोटन्डस	सेतुइंके	कंद	पेचिश, पीलिया
जींजीबर आफिसीनेलिस	इचींग, सयींग	पत्तियां	खाँसी, बुखार
केनाबीस सटाइवा	भांग	पत्तियां	पेचिश, दस्त, त्वचा रोग
फाइकस बेन्गालेंसिस	परेप, दाइंगग्री	गोंद	दाद, अल्सर, त्वचा रोग
रस सेमीएलेटा	समा	बीज	मशरुम विषाक्तता को कम करने के लिए
अधाटोडा जिलेनिका	दाइंग / ख्लू	पत्तियां	आमवाती दर्द
एजिरेटम केनीजोएडस	सेफलंग के	पत्तियां व फल	खून बहाव को रोकने के लिए
वाइबरनम कोलेब्रूकियानम	सीनतुइप ब्रू	पत्तियां	दाने
	बत कींजरी	पत्तियां	चोट लगने, कटने पर, घाव पर
	बत आइओंग	पत्तियां	एलर्जी, कटने पर, घाव पर
	तीउ लीली	तना	फ्रैक्चर
	राइनेंग	कंद	गैस्ट्रिक, मधुमेह
	शींडो	तना	विषाक्तता, पेट दर्द
	तीउ लासीर	शल्ककंद	एंटी कैंसर, तपेदिक, गर्भावस्था
पैसीफ्लोरा नेपोलेंसिस	स्ला सोहब्राप	पत्तियां, फल	पेचिश, पीलिया
मेरिका इसकुलेंटा	सोहफाइ	फल	सिर दर्द
	सोह क्वीत	फल	सिर दर्द
	बत सोहप्डोक	फल, पत्तियां	चोट लगने, कटने पर
ओरोजाइलम इन्डिका	जारंगुन, डीनगारी	छाल, बीज जड़	उदर विकार, गैस्ट्रिक, पेट दर्द
पेन्डेनस ओडोरेटिसिमस	सोहफानसला	तेल	दर्द, शरीर की सूजन
क्लेमाइटीस गौरिना	बत बतेंग दोह	पत्तियां	चोट लगने, कटने पर
पाइपर लोंगम	बत सोहमेरीत	पत्तियां	पेचिश
लूफा एकुटेंगुला	सोहफ्रु	पूरा पेड़	पेट दर्द

	बत सोहर्मीकेन	पत्तियां	फोड़े, चोट लगने, कटने पर
	जतंगनेन्ग	फल, फूल	त्वचा रोग
	तीउ लामुंगोर	पूरा पेड़	फ्रैक्चर
	बत वातसाइ	पूरा पेड़	फ्रैक्चर
	बत सीनीया	पूरा पेड़	फ्रैक्चर
माइकेलिया चम्पाका	तीता चम्पा	बीज का तेल	त्वचा रोग
क्लेरोडन्डोम ब्रेकटियेटम	डींग कयसला, डींग रसमा	पत्तियां	मधुमेह, रक्त चाप
इलियोकारपस फ्लोरिबन्डस	सोह खल्लम	फल	कमजोरी, बुखार, अस्थमा, सर्दी
क्लेरोडन्डोम कोलेब्रोकियेनम	डींग जकांगुम	पत्तियां	मधुमेह, उदर विकार, रक्तचाप
स्टेमोना ट्युब्रोसा	सेमकुसिम	कन्द	अस्थमा, खांसी
स्टीफेनिया जपोनिका	खारखा	कन्द	दमा, खांसी, प्लीहा विकार

मेघालय में औषधीय पौधे अति-महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके साथ परिवार के प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल एवं पोषण संबन्धी जरूरतों को पूरा करने में खासी, जैन्तिया व गारो की संस्कृतियां भी शामिल हैं। मेघालय में उपस्थित इन औषधीय और सुगंधित पौधों का प्रयोग दवा बनाने तथा स्वास्थ्य एवं सौंदर्य प्रसाधन जैसे उद्योगों द्वारा किये जाने से यहां की अर्थव्यवस्था को बढाया जा सकता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुये तेजी से लुप्त होते औषधीय पौधों एवं जनजातीय समुदायों के पारम्परिक ज्ञान को संरक्षित कर इस विषय पर गहन शोध अत्यन्त आवश्यक है।

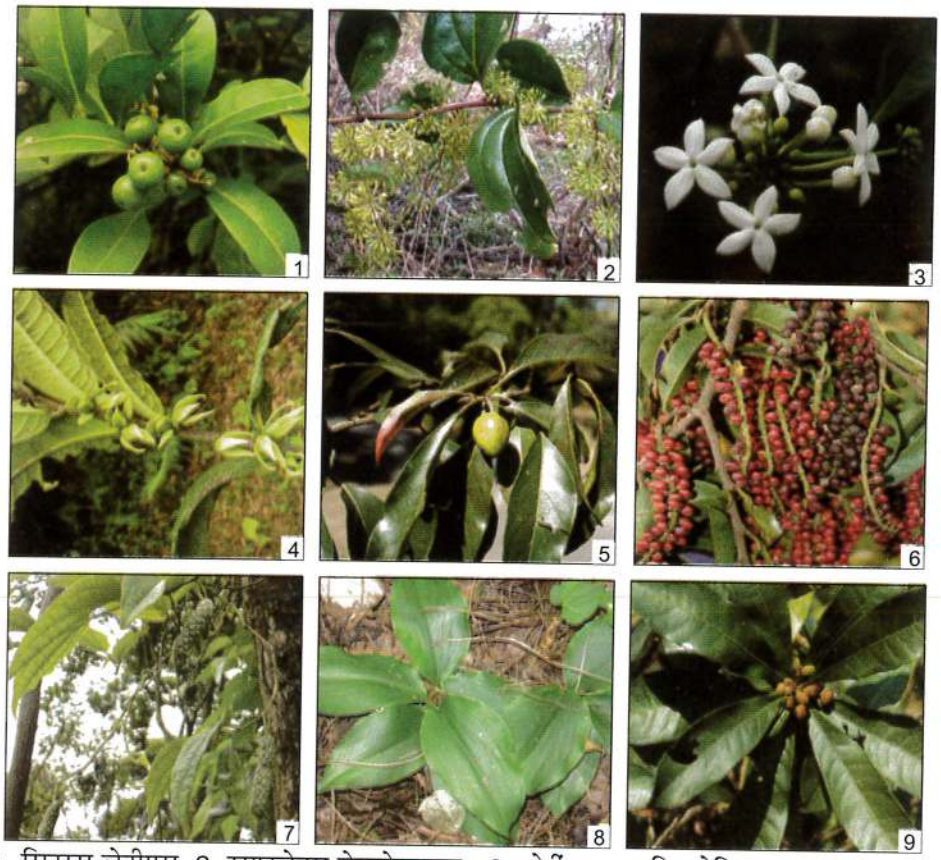

1. सिटरस लेटीपस; 2. स्माइलेक्स मेकरोफाइला; 3. मोरींडा आन्गास्टिफोलिया;
4. गोनियोथेलेमस साइमोनोसाई; 5. इलियोकारपस फलोरिबन्डस ; 6. वाइबरनम कोलेब्रूकियानम;
7. पाइपर ग्रेफिथी; 8. कैमफेरिया गलांगा; 9. मेरीका इसकुलेंटा।

अरूणाचल प्रदेश में *बेगोनिया* की जातियाँ

एस. एस. दाश
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पूर्वी हिमालय को विश्व के जैव विविधता के उत्तप्त स्थलों (हाट स्पाट्स) में से एक के रूप में मान्यता प्राप्त है। पूर्वी हिमालय में अवस्थित अरूणाचल प्रदेश तिब्बत के दक्षिणी पठार, म्यांमार एवं भूटान की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर है। यह प्रदेश उष्णकटिबन्धीय पर्वतीय वनों की विविधता से सम्पन्न है। अत्यधिक स्थानिक एवं विपुल दुर्लभ जातियों के विभिन्न वनस्पति समुदायों ने इसे अद्‌भुत स्वरूप प्रदान किया है। इसके कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 82% से अधिक क्षेत्र वनाच्छादित है। यहाँ भारत के कुल पुष्पी पौधों के लगभग 26% पौधे पाए जाते हैं। भारतीय ऑर्किड के 43%; रोडोडेंड्रन के 90%; पर्णांग के 35% तथा अनावृतबीजी की 42% जातियाँ उगती है। यहाँ की अनेक वन्य जातियाँ हमारे उद्यानों एवं संकरण प्रणाली से विभूषक प्रभेद विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ वनस्पति कई पाश्चात्य देशों मे पहुँच गई है। उद्यानों के लिए उपयोगी पौधों में बेगोनिया भी है।

बेगोनिया वंश में 1524 जातियाँ है। पुष्पी पौधों का यह छठा सबसे बड़ा वंश पूरे उष्णकटिबंधी स्थलों के छायादार नम क्षेत्रों में उगता है। दक्षिण अमेरिका में इसका वर्चस्व है। दक्षिण-पूर्व एशिया दूसरे स्थान पर है। भारत में उगने वाली 60 जातियों में अधिकांश पूर्वोत्तर भारत में पाई जाती है। हिमालय के पश्चिमी से पूर्वी भागों तक उगने वाले इन पौधों में फूलों के खिलने के समय पर मानसून का पूर्ण नियंत्रण है। प्रकंद वाली जातियों में फूल खिलने की अवधि कुछ लम्बी होती है।

आकर्षक पर्णावली और रंग बिरंगें मनोहर फूलों के कारण इसकी सभी जातियों पर उद्यानविदों एवं वनस्पति निर्यातकों की दृष्टि रहती है। आसान संकरण ने सारे विश्व के पुष्प प्रेमियों के लिये हजारों प्रकार के संकर (hybrid) उपलब्ध कराए हैं। यूरोप-अमेरिका के उद्यानों में ऐसे दस हजार से अधिक संकर आ गये हैं। ऐसे पौधे रोग मुक्त होते हैं।

बेगोनिया एबोरेंसिस, बेगोनिया सिलहेटेंसिस, बेगोनिया टेस्सरिकार्पा, बेगोनिया बर्केली आदि अरूणाचल प्रदेश में उगने वाली जातियों के जीन पूल पर अपेक्षित कार्य शेष है। ये अपने प्राकृतवास में दुर्लभ और संकटग्रस्त हैं। यूरोप, अमेरिका के उद्यानों में इनकी भरमार है। वन्यजातियां विभिन्न माध्यमों से वहाँ जाती रहती हैं।

अरूणाचल प्रदेश में उगने वाली 28 जातियों में प्रमुख *बेगोनिया एबोरेंसिस* आदि स्थानिक हैं। इन जातियों की खेती से जीविका के साधन बढ़ेंगे और इनके संरक्षण में सुविधा होगी। यहाँ बेगोनिया की विभिन्न जातियों के ऑकलन को ध्यान में रखकर एक प्रयास किया गया है।

1. *बेगोनिया एबोरेंसिस*

1912 में अरूणाचल प्रदेश के अबोर पहाड़ियों से संग्रह की गई जातियों का आइ एच बर्किल ने वर्णन किया। बाद में असम के दारांग और अरूणाचल प्रदेश के छाँगलाँग जिलों से भी इसका संग्रह हुआ। हाल में कुरूंगकुमे जिले से भी इसका संग्रह हुआ। यह जाहिर हो गया है कि 800-1500 मी. की ऊँचाई तक नमी वाले प्राथमिक वनों में ये जाति प्रचुर मात्रा में व्याप्त है। इनमें जनवरी से जून तक फल व फूल लगते हैं।

2. *बेगोनिया एसेटोसेला*

इस प्रजाति का संग्रह सर्वप्रथम लेखक ने कुरूंगकुमे जिले के उपोष्ण कटिबंधीय वन से किया। 800-1500 मी. की ऊँचाई तक चीन, म्यांमार, थाइलैंड एवं वियतनाम के प्राथमिक वनों में उगने वाली इस जाति में अप्रैल से जुलाई तक फूल-फल लगते हैं।

3. *बेगोनिया एनुलेटा*

भूटान, सिक्किम सहित पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्यों में व्याप्त प्रकंद वाली जाति के मादा पुष्प मनोरम एवं गमलों में लगाने लायक होते हैं। 1300-1800 मी. की ऊँचाई तक उपोष्ण कटिबंधीय प्राथमिक वन में इस जाति के पौधों में जनवरी से जून तक फूल-फल आते हैं।

4. *बेगोनिया बर्केली*

अरूणाचल प्रदेश की इस स्थानिक जाति का सबसे पहले सबोर पहाड़ियों से वर्णन हुआ। कुरूंगकुमे जिले में इसकी भरमार है। अपने प्राकृतवास में दुर्लभ यह जाति यूरोप एवं एशिया उप महाद्वीप में उगाई जाती है। 500-1200 मी की ऊँचाई तक प्राथमिक वनों में व्याप्त इस जाति को रंगबिरंगे पत्तों के कारण बेहद पसंद किया जाता है। इनमें जून से सितंबर तक फूल-फल आते हैं।

5. *बेगोनिया केथिएर्टो*

सर्व प्रथम जे डी हुकर द्वारा संग्रहित पूर्वी हिमालय की यह जाति म्यांमार तक व्याप्त है। *बेगोनिया एनुलेटा* से मिलती जुलती इस जाति को सघन रोम एवं अरोमिल निलंबी अनुपर्ण तथा अभ्यक्ष की ओर के पत्तों से जाना जाता है। यह 900 से 2000 मी की ऊँचाई तक उपोष्ण कटिबंधीय वनों मे पाया जाता है।

6. *बेगोनिया डाइओसिया*

पूर्वोत्तर राज्यों के अलावा यह जाति हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड में भी उगती है। 1500-2000 मी की ऊँचाई तक उपोष्णकटिबंधीय प्राथमिक वनों में इसकी व्याप्ति है।

7. *बेगोनिया फ्लेविफ्लोरा*

यह जाति अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, भूटान एवं पश्चिम बंगाल में उगती है। सिक्किम हिमालय से जे इ स्मिथ द्वारा वर्णन किए गए दो जातियों में एक यह जाति सुन्दर फूल व पत्तों के कारण पसंद की जाती है। *बेगोनिया सिक्किमेंसिस* से मिलती यह जाति लाल स्टेम एवं गुलाबी सहपत्र से पहचानी जाती है। 1500-2500 मी की ऊँचाई तक नमी वाले वनों में व्याप्त इन पौधों में अगस्त-सितंबर में फूल-फल आते हैं।

8. *बेगोनिया ग्रिफिथियाना*

बहुधा शुष्क ढलानों पर उगने वाली यह जाति 500-1600 मी की ऊँचाई तक उपोष्ण कटिबंधीय एवं चौड़े पत्ते वाले वनों में चट्टानी ढलानों में व्याप्त हैं। इनमे नवंबर से जनवरी तक फूल-फल आते हैं।

9. *बेगोनिया हेटाकोआ*

पूर्वोत्तर राज्यों के अलावा भूटान, नेपाल एवं सीमांतवर्ती चीन में 400-1500 मी की ऊँचाई तक चट्टानी नदीकूल एवं नमी वाले ढलानों में ये पौधे प्रचुरता से उगते हैं।

10. *बेगोनिया लोंगीफोलिआ*

पूर्वोत्तर राज्यों, म्यांमार, चीन, वियतनाम, लाओस, मलेशिया में छायादार जगहों में उगने वाले झाड़ीदार पौधों में मार्च से जून तक फूल-फल आते हैं।

11. *बेगोनिया इरेडेसेंस*

पश्चिम कमेंग जिले से संग्रह किया गया यह पौधा अरूणाचल प्रदेश में स्थानिक होने पर भी वन्य रूप में विरल है। इनमें अक्टूबर से मार्च तक फूल-फल आते हैं।

12. *बेगोनिया जोसेफी*

अरूणाचल प्रदेश में उगने वाली यह जाति अपने छत्रिकाकार (peltate) पत्तों के कारण आसानी से पहचानी जाती है। भूटान, नेपाल एवं चीन में व्याप्त यह जाति पश्चिमी कामेंग, तवांग, कुरूंगकुमे जिलों के उपोष्ण कटिबंधीय वनों में विरल है।

13. *बेगोनिया लिम्प्रिचटी*

सुन्दर लाल बालों वाली यह जाति पहले चीन में मिली थी। अब पूर्वी एवं पश्चिमी सियांग जिलों से संग्रहित ये पौधे उपोष्ण कटिबंधीय वनों मे पाये जाते हैं।

14. *बेगोनिया मेगेप्टेरा*

प्राकृत आवास में अत्यंत विरल ये पौधा कभी कभी 500-1800 मी तक की ऊँचाई पर चट्टानी दरारों में मिलते हैं। इनमे अगस्त से दिसम्बर तक फूल-फल आते हैं।

15. *बेगोनिया नेपालेन्सिस*

असम, मेघालय, मिजोरम, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, नेपाल, भूटान में व्याप्त यह जाति कभी-कभी पश्चिमी कामेंग में 1000-1800 मी. की ऊँचाई तक उपोष्ण कटिबंधीय वनों में मिल जाती है।

16. *बेगोनिया आबवेटिफोलिया*

मेघालय, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, भूटान में कहीं कहीं उगने वाले ये पौधे कभी कभी अपर सियांग जिले में उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय वनों के छायादार नमी वाले जगहों में भी मिलते हैं।

17. *बेगोनिया पामेटा*

पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र समेत भूटान, नेपाल, बंगलादेश, थाइलैंड, म्यांमार एवं चीन में व्याप्त यह जाति कुरूंकुमे, अपर सिआंग, लोअर सुबनसिरी के नमी वाले अंचलों में बहुतायत में उगती है।

18. *बेगोनिया पेंडंकुलोसा*

पूर्वोत्तर भारत की यह स्थानिक जाति अरूणाचल प्रदेश के उपोष्ण कटिबंधीय वनों में 900-1500 मी. की ऊँचाई तक उगती है। पत्रकक्ष में पत्र-प्रकलिका के कारण इसे आसानी से पहचाना जाता है।

19. *बेगोनिया पिक्टा*

ओडिशा, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार से लेकर भूटान, नेपाल, चीन एवं म्यांमार तक व्याप्त यह जाति अरूणाचल प्रदेश के कुरुंगकुमे एवं अपर सिआंग जिलों के नदी तट एवं नमीयुक्त छायादार अंचलों में 600-1200 मी. की ऊँचाई तक उगते हैं।

20. *बेगोनिया रैक्स*

आकर्षक पर्णावली के कारण सारी पृथ्वी पर घर के अंदर-बाहर के उद्यानों में अपने हजारों संकर के साथ उगाई जाने वाली यह जाति असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम से नेपाल, चीन, एवं वियतनाम तक व्याप्त है। कुरूंकुमे जिले के नमीयुक्त अंचलों में 200-900 मी. तक दिखने वाले इन पौधों में मार्च से दिसंबर तक फूल-फल लगते हैं।

21. *बेगोनिया रॉक्सबर्गी*

पूर्वात्तर राज्यों के अलावा उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड से लेकर भूटान, नेपाल चीन एवं म्यांमार तक व्याप्त यह जाति पश्चिमी कामेंग जिलेके नदीतट, नमीयुक्त छायादार जगहों में 600-1200 मी. की ऊँचाई तक उगते हैं।

22. *बेगोनिया सिंटीलेंस*

कुरुंगकुमे जिले के उपोष्ण कटिबंधीय वन में उगने वाली यह विरल स्थानिक जाति अरूणाचल प्रदेश में 500-2000 मी. की ऊँचाई तक उगती है।

23. *बेगानिया सिक्किमेंसिस*

मिजोरम, मणिपुर, सिक्किम, प. बंगाल से लेकर भूटान, नेपाल, चीन तक व्याप्त यह जाति कुरुंगकुमे, लोअर अपर सुबनसिरी जिलों के उपोष्ण कटिबंधीय वनों मे 1800 मी की ऊँचाई तक उगती है। इनमें जुलाई से अक्टूबर तक फूल-फल लगते हैं।

24. *बेगोनिया सिलहटेंसिस*

1911 में अरूणाचल प्रदेश के एबोर पहाड़ियों से आइ एच बर्किल ने संग्रह कर इसका वर्णन किया। बाद में कुरूंगकुमे से जी पाणिग्राही ने संग्रह किया। हाल में कुरूंगकुमे की गवेषणा में यह बहुतायत में पाया गया। अब इसे स्थानिक नहीं माना जाता है। इसके नर पुष्प में 9-10 पंखड़ी चक्राकार सुसज्जित होती है। इसकी उपजाति में जिएंजेंसिस चीन तक व्याप्त है। कुरूंकुमे एवं पश्चिमी कामेंग जिलों में 800-1500 मी. की ऊचाई तक ये पौधे उगते हैं।

25. *बेगोनिया टेस्सेरिकार्पा*

अरूणाचल प्रदेश की यह स्थानिक जाति कच्चे और पकाए रूप में खाद्य मानी जाती है। काले धब्बे वाले चमकीले पत्ते इसे संभावित विभूषक बनाते हैं. कुरूंगकुमे एवं अपर सिआंग जिलों में उगने वाले इन पौधों में जून से सितंबर तक फूल-फल आते हैं।

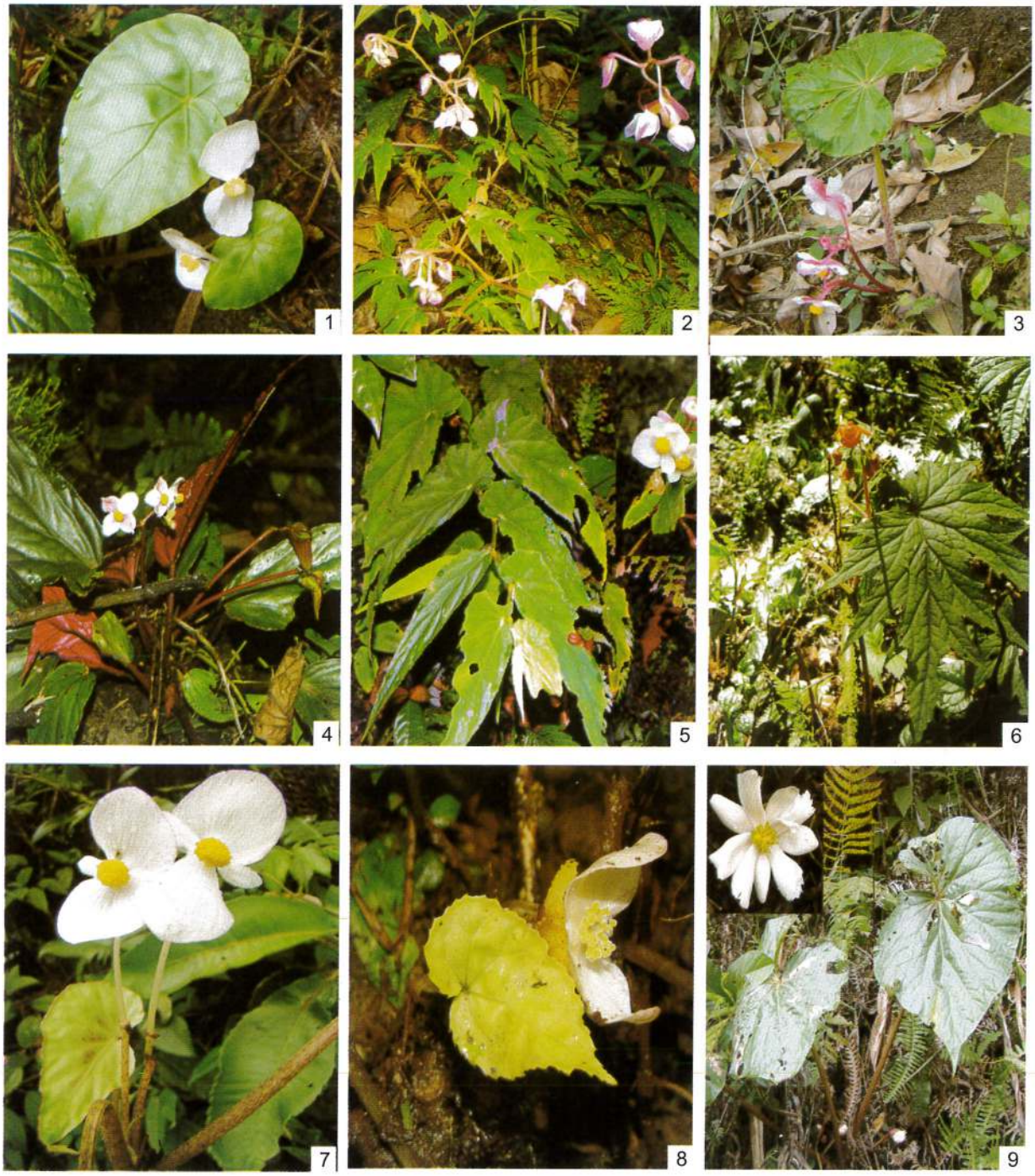

1. *बेगोनिया बर्केली;* 2. *बेगोनिया फ्लेविफ्लोरा;* 3. *बेगोनिया रैक्स;* 4. *बेगोनिया हेटाकुआ;* 5. *बेगोनिया ग्रिफिथियाना;* 6. *बेगोनिया पामेटा;* 7. *बेगोनिया टेस्सेरिकार्पा;* 8. *बेगोनिया थॉम्सोनाई* 9. *बेगोनिया सिल्हेटेंसिस।*

26. *बेगोनिया थॉम्सोनाई*

असम, मिजोरम, मणिपुर, सिक्किम में व्याप्त यह जाति अपर सिआंग में उगती है। इनमें जुलाई से नवम्बर तक फूल-फल आते हैं।

27. *बेगोनिया ट्राइकोकार्पा*

प्रायद्वीपीय भारत, पश्चिमी घाट एवं सिक्किम में उगने वाली इस जाति की अरूणाचल प्रदेश में मिलने की जानकारी नहीं थी। अब कुरुंगकुमे में पाए जाने वाले ये पौधे जुलाई से नवम्बर तक फूलते-फलते हैं।

28. *बेगोनिया जेंथिना*

मिजोरम, मणिपुर, सिक्किम, प. बंगाल से भूटान, चीन तक व्याप्त इस जाति में बेगोनिया रेक्स से समानता है। अपर सिआंग जिले में 1800 मी. की ऊँचाई तक उगने वाले इन पौधों में जुलाई से नवम्बर तक फूल-फल लगते हैं।

29. *बेगोनिया ककुलेटा*

उद्यानों में लगाए जाने वाले इन पौधों के पत्ते मोम जैसे लगने के कारण इसका प्रचलित नाम ''वैक्स टाइप'' है। यूरोप-अमेरिका में इसकी बहुत मांग है।

अरूणाचल प्रदेश में बेगोनिया की विविधता एवं व्याप्ति

जलवायु की विविधता एवं अन्य घटकों के समाहार ने राज्य को बेगोनिया का प्रमुख संसाधन केंद्र बना दिया है। 14 जातियों के प्राकृतवास होने के कारण कुरूंगकुमे पहले स्थान पर है। अपर सुबनसिरी (12 जातियां) तथा अपर सिआंग (11 जातियां) दूसरे व तीसरे स्थान पर हैं। उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय अंचलों मे इनकी सघनता है। शीतोष्ण कटिबंध में मात्र बेगोनिया जोसेफी एवं बेगोनिया फ्लेविफ्लोरा उगते हैं।

वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश में बेगोनिया के संरक्षण और संवर्धन की तत्काल आवश्यकता है। बेगोनिया संरक्षण हेतु स्व:-स्थाने तथा बर्हि-स्थाने एवं इन-विट्रो प्रयोगशाला विधि नामक संरक्षण तकनीकों के साथ बेगोनिया की विभिन्न किस्मों का संरक्षण - संवर्धन किया जा सकता है। राज्य के कुछ स्थानों में संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना करके बेगोनिया के आनुवांशिक संसाधन को सुरक्षित किया जाना चाहिये। प्रदेश के कुरुंगकमय जिले का सारलिदामीन क्षेत्र तथा पश्चिमी सियांग जिले का बसर क्षेत्र बेगोनिया संरक्षण हेतु जीन सेन्चुयेरी घोषित किये जाने हेतु सर्वाधिक उपयुक्त हैं। बेगोनिया के विभिन्न वानस्पतिक उद्यानों में बर्हि:-स्थाने संरक्षण के माध्यम से निश्चित तौर पर बेगोनिया की जंगली प्रजातियों का जर्मप्लाजम संरक्षित किया जा सकता है। किन्तु वर्तमान में अरुणाचल के किसी भी वानस्पतिक उद्यान द्वारा इसके संरक्षण पर कार्य नहीं किया जा रहा है। जैव तकनीक की इन -विट्रो प्रयोगशाला विधि से बगोनिया की किस्में विकसित करके इनका रोपण प्राकृतिक आवास में करके बेगोनिया का संवर्धन किया जाना अपेक्षित है।

विभिन्न कारणों से इनकी संख्या घटती जा रही है। प्राकृतवास का विनाश, झूम खेती, वन संसाधन का अति दोहन, वन में आग लगने से क्षति हो रही है। भंगुर प्राकृतवासों में यातायात की सुविधा बढ़ाने से भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। बेगोनिया वंश के समुचित संरक्षण पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। इससे बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलने की संभावना बढ़ेगी।

अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह की कुछ उपयोगी वनस्पतियां

जी. एस. लकड़ा, लाल जी सिंह, एम. वाय. कांबले एवं सी. मुरूगन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

572 द्वीपों का एक समूह अण्डमान एवं निकोबार 8249 वर्ग किमी का क्षेत्रफल घेरे हुए लगभग 700 किमी की लम्बाई तक फैला हुआ है। यह क्षेत्र बंगाल की खाड़ी में 6° से 14' उत्तरी अक्षांश व 92° से 94' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस द्वीप समूह में 10° उत्तरी अक्षांश अण्डमान द्वीप समूह को निकोबार द्वीप समूह से विभेदित करता है। भौगोलिक दृष्टि से अण्डमान द्वीप समूह विविध घाटियों से निर्मित पर्वतीय प्रदेश है। इसकी भूमि संरचना को देखने से ज्ञात होता है कि ये द्वीप समूह जलमग्न पर्वत शृंखलाओं के ऊपरी छोर हैं। ''सैडल पीक'' इन द्वीपों की सर्वोच्च चोटी है, जो समुद्र तल से 732 मीटर ऊँची है। निकोबार द्वीप समूह लम्बे रेतीले समुद्र तटों से युक्त छिछली जलराशि के साथ, प्रवाल भित्तियों (कोरल रीफ) से घिरा हुआ है। कार-निकोबार एवं कछाल क्षेत्र लगभग समतल है, जबकि इस समूह के अन्य द्वीप अपेक्षाकृत पहाड़ी दिखाई पड़ते हैं। इन द्वीपों में 'लिटिल-निकोबार' एवं 'ग्रेट निकोबार' सर्वोच्च गगनचुम्बी शिखर है, जो लगभग 700 मीटर की ऊँचाई लिये हुए हैं। यहाँ की भूमि भी अत्यन्त असमान व कटी-फटी घाटिओं से युक्त है। इन द्वीप समूहों में छः मूल जनजातियाँ निवास करती है। इनमें से चार यथा : ओंगी, ग्रेट अण्डमानी, जारवा एवं सेन्टीनलीज नीग्रो कुल से तथा शेष दो निकोबारी व शेम्पेन मंगोलियन कुल से सम्बन्ध रखती है।

इस द्वीप समूह की मनोरम व विहंगम भौगोलिक छटा विश्वभर के पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु होने के साथ साथ अपनी पादप विविधता के लिये विश्व विख्यात है। यहाँ की वनस्पतिक विविधता में लगभग 240 पादप कुलों की 2700 से भी ज्यादा प्रजातियाँ उपलब्ध हैं, इनमें भी 400 प्रजातियाँ औषधीय गुणों से भरपूर है। इस प्रकार यह क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध एवं अद्वितीय है।

प्रस्तुत लेख में इस द्वीप समूह की पारम्परिक व दैनिक उपयोगी (मुख्यतया सब्जी एवं औषधि के रूप में) कुछ वनस्पतियों का संक्षिप्त उल्लेख प्रस्तुत है। पौधों के अंडमान-निकोबार में प्रचलित नाम दिए गए हैं।

1. **रीठा** (*अकेशिया साइनुयेटा*: माइमोसेसी)

अंडमान में साधारणतया सभी स्थानों पर प्राप्य इन पौधों की कोमल पत्तियों से नमक, इमली व हरी मिर्च के साथ खट्टी स्वादिष्ट चटनी बनायी जाती है। कमला बिमारी में इसकी पत्तियां प्रयोग की जाती है।

2. **खोकली** (*एकेलिफा इंडिका*: युफोर्बिएसी)

नरम-कोमल पत्ते अन्य हरी पत्ती वाली सब्जियों के साथ मिलाकर सब्जी के रूप में खाया जाता है। पत्तियों का काढ़ा बनाकर कान-दर्द निवारक तथा पत्तियों की लुग्दी का लेप जले-कटे घाव के उपचार हेतु किया जाता हैं।

3. **खाड़ी भाजी** (*एक्रोस्टिकम ऑरियम*: पोलीपोडिएसी)

अंडमान के खाड़ी किनारे, खारीय भूमि वाले दलदलीय स्थानों में पाए जाने वाले इस पौधे की बहुत ही नरम-कोमल मुड़ी हुई पत्तियां, स्वादिष्ट शाकीय भाजी के रूप खाते हैं। इसका नियमित सेवन आंत्रीय घाव में होने वाले संक्रमण को रोकता है और भरने मे सहायक होता है।

4. **छतीयेन, छतवन** (*एल्सटोनिया स्कालेरिस*: एपोसायनेसी)

निकोबारी समुदाय के लोगों में कोमल पत्तियां शाकीय सब्जी के रूप में खाई जाती है। पत्तियों का लेप घावों के भरने तथा बेरी-बेरी बीमारी के उपचार में उपयोग में लाया जाता है।

5. **गुन्डरू साग/मद्रासी भाजी** (*आल्टरनैन्थ्रा सेसिलिस*: एमरेन्थेसी)

इस शाक की नयी पत्तियां सब्जी व सूप के रूप में खाते हैं। पित्ताशय के विकार तथा ज्वर-नाशक के रूप में भी उपयोग में लायी जाती है।

6. **काटा मरसा भाजी** (*एमरेन्थस स्पाइनोसा*: एमरेन्थेसी)

इनकी कोमल पत्तियां सब्जी रूप में खाते हैं। स्थानीय लोग इसकी पत्तियों को फफोले युक्त बुखार, विकर (एन्जाइम) से संबंधित आंत्रीय रोगों के उपचार में प्रयोग करते हैं। नई कोंपले पानी में डुबोकर खाज-खुजली में भी उपयोग की जाती है।

7. **मरसा भाजी** (*एमरेन्थस विरिडिस*: एमरेन्थेसी)

इसकी पत्तियां शाकीय सब्जी रूप में खाते हैं। पत्तियों का लेप बिच्छू के डंक विष तथा सर्प-दंश का उपचार करने में किया जाता है।

8. **खाड़ी फल** (*आर्डिसिया सोलेनेसिया*: मेरसीनेसी)

इसकी नरम व कोमल पत्तियां सलाद, शाकीय सब्जी आदि रूप में खाते हैं। इसकी जड़ें बुखार, अतिसार व संधिवात/गठिया जैसे रोगों में लाभदायक है। फलों से पीला रंग प्राप्त होता है।

9. **जंगली सुपारी** (*एरिका ट्राएन्ड्रा*: एरेकेसी)

तना का मध्य-मज्जा भाग व कोमल पत्तियां स्वादिष्ट सब्जी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का काढ़ा अतिसार से पीड़ित रोगी के उपचार में सहायक होता है।

10. **विलायती कटहल** (*आर्टोकार्पस इन्सीसस*: मोरेसी)

इसकी नरम व कोमल पत्तियां शाकीय भाजी के रूप में खाते हैं। चर्म रोग से सम्बन्धित विकार के उपचार हेतु इसकी पत्तियों की लुग्दी, हल्दी एवं नारियल तेल के साथ मिलाकर लेप लगाया जाता है।

11. **पोई साग** (*बेसेला अल्बा*: बेसेलेसी)

पत्ती एवं फल का प्रयोग स्वादिष्ट सब्जी, सूप आदि के रूप में होता है। स्थानीय लोगों की मान्यता है कि यह पोषक तत्वों से भरपूर है। पत्तियों का रस कब्ज निवारक दवा के रूप में दिया जाता है। विशेषकर बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं को जुलपित्ती रोग में सहायक होता है।

12. **खैरवाल** (*बाउहीनिया परपूरिया*: सीसलपीनियेसी)

कोमल पत्तियां सब्जी की रूप में खाते हैं। खांसी के इलाज के लिये इसकी पत्तियों का काढ़ा पिलाया जाता है।

13. **कोयनार साग** (*बाउहीनिया वेरीगेटा*: सीसलपीनियेसी)

पत्तियां शाकीय भाजी के रूप में खाते हैं। कब्ज, बवासीर आदि रोगों के उपचार में सहायक है। इसकी पत्तियों का उपयोग स्थानीय लोग बीड़ी पत्ती के स्थान पर करते हैं।

14. **हथाजोड़ी** (*ब्लेक्नम ओरियेन्टेल*: पोलीपोडिएसी)

ठंडे व छायेदार स्थानो मे प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाले इस पौधे को शाक-सब्जी के रूप में खाते हैं। कृमि जैसे संक्रमणीय आंत्रीय एवं मूत्राशय संबंधी रोग के इलाज में भी प्रयोग किया जाता है।

15. **सन्त शाग** (*बोरहाविया डिफ्यूज़ा*: निक्टाजिनेसी)

यह बगीचों मे स्वयं उगते हुए पाया जाता है या उगाया जाता है। कोमल - नरम पत्तियां एवं डंठल शाकीय सब्जी के रूप में खाते हैं। आंत्रीय अल्सर, पीलिया रोग, दमा के उपचार व मासिक चक्र से सम्बन्धित विकार को नियमित करने में सहायक होता है।

16. **कन्फुटि साग** (*कॉर्डियोस्पेरमम हेलिकाकाबम*: सेपिनडेसी)

फसल के खेतो में कोमल लता के रूप में उगते हुए पाया जाता है। स्वादिष्ट चटनी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का रस कान दर्द, पत्तियों का लेप जोड़ दर्द व सूखे पत्तियों का पाउडर बनाकर घावों के भरने आदि उपचार हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

17. **माड़ीपत्ती** (*कैरियोटा माइटिस*: एरेकेसी)

इसे बगानों में शोभनीय पौध के रूप में उगाया जाता है। नरम-कोमल पत्तियां व डंठल सब्जी के रूप में खाते हैं। वातावरण को शुद्ध बनाता है। चर्म के रोम-कूपों से धूल कण को साफ करने में सहायक होता है।

18. **बन्दरलौरी/अमलतास** (*कैसिया फिस्चुला*: सिसलपीनेसी)

इसे बगानों में भी शोभनीय वृक्ष के रूप में लगाया जाता है। इसकी कोमल व नरम पत्तियां शाकीय भाजी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का रस कुष्ट रोग (चर्म रोग) व कृमि रोग के उपचार में प्रयोग में लाया जाता है। लकवा से पीड़ित रोगी के उपचार में भी लाभदायक है।

19. **मझला चकोड़** (*कैसिया ओक्सीडेन्टेलिस*: सिसलपिनेसी)

कोमल पत्तियां सब्जीरूप में खाते हैं। पत्तियों का लेप विविध चर्म रोग, घाव, गॉठ व जोड़ों के दर्द निवारक के रूप में लगाया जाता हैं।

20.**चकोड़** (*केसिया सोफेरा* : सिसलपिनेसी)

कोमल पत्तियां सब्जी के रूप में खाते हैं। टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने के लिये स्थानीय लोग कुछ लकड़ियों की पट्टी के साथ इस पौधे की पत्तियों की लुग्दी का लेप करके प्लास्टर के रूप में प्रयोग करते हैं।

21. **छोटा चकोड़** (*केसिया टोरा*: सिसलपिनेसी)

इसकी नरम पत्तियों को हल्के भून कर एवं धूप में सुखाकर पाउडर बनाया जाता है व इसे चावल के मांड (स्टार्च) के साथ सूप बनाकर खाने के साथ खाया जाता है। पत्तियों का पाउडर, कृमि रोग, आंत्रीय रोग, मधुमेह जैसी बीमारियों के उपचार हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

22. **मेंढक भाजी** (*सेन्टेला एशियाटिका*: एपिएसी)

पत्तियां लहसुन व इमली के साथ स्वादिष्ट चटनी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का रस ताड़ के रस के साथ मिलाकर महिलाओं को प्रसव उपरान्त शक्तिवर्धक टानिक के रूप में दिया जाता है। पत्तियों का रस स्मरण शक्ति वर्धक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

23. **मीठा भाजी** (*चाम्पेरिया ग्रिफिथी*: सैन्टालेसी)

लोग इसे बगीचों मे भी सब्जी बनाने के लिये लगाते हैं। इसकी नरम व कोमल पत्तियां सब्जी के रूप में खायी जाती हैं। पत्तियों का प्रलेप (पुलटिस) बनाकर घावों पर लगाया जाता है।

24. **दालचीनी** (*सिन्नामोमम जिलेनिकम*: लौरेसी)

लोग इसे बगीचों मे लगाते हैं। इसकी छाल व पत्ती मसाला के रूप में उपयोग होता है। छाल व पत्ती के चूर्ण का सेवन कोलेस्ट्राल की मात्रा कम करने में सहायक होता है। दालचीनी के तेल का प्रयोग दंतशूल , सिरदर्द आदि के उपचार में किया जाता है।

25. **हरजोड़** (*सिस्सस क्वाड्रेन्गुलेसिरस*: वायटेसी)

इसकी छोटी कोमल कोंपले पापड़ तथा करी बनाने में प्रयुक्त होती है। कोमल पत्तियों का पाउडर पाचन संबंधित विकारों के निदान में प्रयोग किया जाता है। कोमल पत्तियों का रस अनियमित मासिक चक्र, स्कर्वी, कान बहना, नकसीर आदि के उपचार में प्रयोग में लाया जाता है।

26. **कुन्डुरू साग** (*कॉक्सीनिया ग्रेंडिस*: कुकरबिटेसी)

इसकी कोमल पत्तियां शाकीय भाजी के रूप में उपयोग की जाती हैं। कान दर्द में पत्तियों का रस, सरसो के तेल व पानी साथ मिलाकर दो बूँद डालने पर आराम मिलता है। त्वचा संबंधित बीमारियों जैसे फफोले आदि में पत्तियों का लेप लगाया जाता है। दाद व खुजली होने पर पत्तियों का पाउडर या लुग्दी तिल के तेल में मिलाकर प्रभावित स्थान पर लेप लगाया जाता है। घावों को भरने के लिये भी पत्तियों से बनी लुग्दी का लेप लगाया जाता है।

27. **धुइयॉ, कुचु साग** (*कोलोकेसिया एसकुलेन्टा*: एरेसी)

कोमल पत्तियां, डंठल, जड़ के पास से निकलने वाली लता (लोती) व कंद सभी विविध खाद्य रूप में प्रयोग में लाया जाता है। पादप डंठल रस एक रक्त स्तम्भक के रूप में पिलाया जाता है। मुख्यधमनी के रक्तस्राव को रोकने (रक्त स्कन्दन) में सहायक होती है। पत्तियों की सब्जी का नियमित प्रयोग उच्च रक्त-चाप को नियंत्रित करता है।

28. **केना साग** (*कॉमेलीना बंगालेन्सिस*: कॉमेलिनेसी)

बारिस के मौसम में सबसे ज्यादा देखा जा सकता है। इसकी कोमल पत्तियां शाकीय सब्जी के रूप में खाते हैं। तीखी व कड़वी पत्तियों का लेप कुष्ठ रोग निवारण के लिये किया जाता है। पत्तियों का सेवन तन्त्रिका तन्त्र उत्प्रेरक के रूप में किया जाता है।

29. **चेंच साग** (*कोर्कोरस ऑलीटोरियस*: टिलिएसी)

यह बगानों में लगाया जाता है। कोमल पत्तियां शाकीय सब्जी के रूप में। सूखी पत्तियों का पाउडर, हरी मिर्च, लहसुन, टमाटर, सरसों का तेल तथा नमक आदि के साथ मिलाकर भर्त्ता बनाया जाता है। पत्तियों का रस आंत के घावों के भरने व पेचिश से ग्रसित रोगी की क्षीण शक्ति को पूर्वावस्था में लाने के लिये पिलाया जाता है।

30. **अरगुना** (*साइकस रॅम्फी*: साइकेडेसी)

कुछ लोग इन्हें सजावटी पादप के रूप में घरों के आंगन में लगाते हैं। तरूण पत्तियां, नारियल के साथ मिश्रित करके सब्जी के रूप में खायी जाती हैं। कोमल सफेद डंठलों को मछली के साथ मिलाकर स्वादिष्ट व्यंजन बनाया जाता है। कोमल डंठल के रस को उदरसूल /पेट दर्द, हृदय के जलन एवं रक्त वमन आदि में दिया जाता है।

31. **बेल बॉम्बू** (*डायनोक्लोआ अंडमानिका* : पोएसी)

कोमल पत्ती व डंठल सब्जी के रूप में खाते हैं। डंठल के रस, कब्ज को दूर करने के लिये पिलाया जाता है। पत्तियों का काढ़ा शीत लगने, खांसी–बलगम, जोड़ों में दर्द आदि के निवारण के लिये पिलाया जाता है।

32. **कोकड़ी भाजी** (*डिप्लाजियम एसकुलेन्टम*: ड्रायोपटेरिडेसी)

यह ठण्ड व छायेदार जगहों में देखा जा सकता है। कोमल मुड़ी हुई पत्तियों को सब्जी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का काढ़ा ज्वरनाशक, खाँसी आदि की औषधि के रूप में पिलाया जाता है। पत्तियों के काढ़े में शक्ति वर्धक गुण पाया जाता है। पत्तियों की लुग्दी का लेप पैरों में फटी बेवाई / बेवार के उपचार हेतु लगाया जाता है।

33. **कडवा भाजी** (*एनहाइड्रा फ्लक्चुएन्स*: एस्टेरेसी)

यह पानी वाले जगहों में पाया जाता है। हरी पत्तियां शाकीय सब्जी के रूप में खाते हैं। सिर दर्द होने पर पत्ती की लुग्दी का लेप माथे पर लगाने से शीतलता प्राप्त होती है। इसके नियमित सेवन से यकृत की सक्रियता बनी रहती है।

34. **मसाला पत्ती** (*एरिन्जियम फोएटिडम* : एपिएसी)

पत्तियों को चटनी एवं भोजन सामग्री को स्वादिष्ट व सुगन्धित बनाने के लिये धनिये के स्थान पर उपयोग में लाया जाता है। इसकी सुगन्ध पर्यावरण को शुद्ध करती है। ऊर्ध्वपाती तेल का प्रयोग औषधियों में किया जाता है।

35. **फुटकल** (*फाइकस वाइरेन्स* : मोरेसी)

खट्टी व बन्द कोमल पत्तियों को शाकीय भाजी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का काढ़ा बुखार में दिया जाता है।

36. **खट्टाफल/कौफल** (*गार्सीनिया काउवा*: क्लुसिएसी)

कोमल पत्तियॉ सब्जी के रूप में खाते हैं। इसके खट्टे व स्वादिष्ट फल खाते हैं। पत्तियों का पेस्ट फोड़े–फुन्सी व घाव पर लगाया जाता है।

37. **परणी** (*हेल्मीन्थोस्टेकिस जिलेनिका*: ओफियोग्लोसी)

नमी व छायेदार स्थानों में सर्वत्र पाये जाते हैं। कोमल व मुड़ी हुई नर्म पत्तियां सब्जी तथा हरी सलाद के रूप में खाते हैं। पर्ण में उन्मादक एवं पीड़ा–नाशक गुण पाया जाता है। प्राय: कूल्हे से संबंधित रोग, अतिसार,श्लेष्मा एवं मल को ढीला करने वाली औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। क्षय के प्राथमिक उपचार में लाभकारी सिद्ध होता है।

38. **खट्टी भाजी** (*हिबिस्कस सबडरिफा*: मालवेसी)

कोमल पत्तियां व तरूण डंठल शाकीय सब्जी के रूप में खाये जाते हैं। मौसम के अनुसार शोरबा, चटनी, जेली, शर्बत व मदिरा बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। पत्तियों का अधिकतर प्रयोग जलन को कम करने, घाव एवं पैर की फटी दरारों को भरने की दवा के रूप में प्रयोग होता है।

39. **चिल्वा** (*हिबिस्कस टिलिएसियस*: मालवेसी)

कोमल पत्तियां व तरूण डंठल सब्जी के रूप में खाते हैं। ओंगी जनजाति के लोग इसकी पत्तियों को *हेरिटिएरा लिटोरालिस* की पत्तियों के साथ उबाल कर चाय जैसा पेय पदार्थ बनाते हैं। कभी कभी इस पेयपदार्थ के साथ नमक मिश्रित करते हैं। पत्तियों का रस ऑख से संबंधित विकारो कों दूर करने के लिये आंखों में डाला जाता है।

40. **नाली भाजी / कलमी साग** (*आइपोमिया अक्वाटिका* : कान्वोल्वुलेसी)

स्वादिष्ट व पौष्टिक शाकीय भाजी के रूप में तथा मछलियों के भोजन के रूप में। पत्तियों का काढ़ा बवासीर व सामान्य कमजोरी की दवा रूप में दी जाती है।

41. **लाल कुबड़ी बेत** (*कोर्थालिसिया लस्सिनिओसा* : एरेकेसी)

इसकी कोमल पत्तियां व डंठल कच्ची व पकी स्वादिष्ट सब्जी के रूप में खाते हैं। बीजों के पाउडर का उपयोग घावों के भरने में किया जाता है।

42. **माड़ी पत्ती** (*लिक्युला पेलटाटा*: एरेकेसी)

कोमल पत्तियां व डंठल कच्ची व पकी शाकीय भाजी के रूप में; खाद्य सामग्री तथा सलाद में उपयोग होता है तथा ताजी पत्तियों का काढ़ा तपेदिक (क्षय रोग) के उपचार में उपयोग किया जाता है।

43. **जंगली सिलाई पत्ती** (*लिक्लुला स्पाइनोसा*: एरेकेसी)

नरम कोमल पत्तियां सब्जी के रूप में खाते हैं। ताजी पत्तियों का काढ़ा तपेदिक (क्षय रोग) के उपचार में प्रयोग किया जाता है।

44. **सुनसुनिया साग** (*मार्सीलिया क्वाड्रीफोलिया*: मार्सीलियेसी)

हरी पत्तियां शाकीय भाजी के रूप में खाते हैं। सर्पदंश में पत्तियों का रस पीने से विष का प्रभाव कम हो जाता है। मवाद युक्त घाव को भरने के लिये पत्तियों की लुग्दी का लेप लगाते हैं।

45. **करेला साग** (*मोमोर्डिका चारन्सिया* : कुकरबिटेसी)

कोमल पत्तियां खाद्य रूप में प्रयोग होता है। स्थानीय लोगोंकी मान्यता है कि पत्तों को उबाल कर पीने से रूधिर शुद्ध होता है। मधुमेह को नियंत्रित करने में सहायक होता हैं।

46. **चम्मच भाजी** (*मोनोकोरिया वेजीनालिस*:पोन्टेडेरिएसी)

दलदलीय भूमि में खर-पतवार के रूप में पाया जाता है। इसकी कोमल पत्तिया साग सब्जी के रूप में खाते हैं। पत्तियों का काढ़ा खांसी के उपचार में दिया जाता है।

47. **मुनगा/सजिना पत्ती** (*मोरिंगा ओलिफेरा*: मोरिंगेसी)

कोमल पत्तियां शाकीय भाजी व स्वादिष्ट सूप के रूप में खाते हैं। पत्तियों का काढ़ा रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

48. **करी पत्ता/मीठीनीम** (*मुराया कोइनिगी*: रूटेसी)

सुगन्धित पत्ती खाद्य सामग्री को खुशबू व स्वादिष्ट बनाने में उपयोग होता है। स्थानीय लोगों की मान्यता है कि इसमें कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो शरीर की हड्डियों व दांतों को मजबूत बनाता है। हरी पत्तियों का ताजा रस मिश्री के साथ सुबह खाली पेट पीने से रक्त के शुद्धि करण में लाभप्रद होता है। ताजी पत्तियां पेचिश के उपचार के लिये चबाकर खायी जाती है। पत्तियों का रस या लुग्दी का लेप त्वचा की फोड़े-फुन्सियों के उपचार के लिए लगाया जाता है। पत्तियों का एक या दो चम्मच रस मिचली या वमन के उपचार हेतु पिलाया जाता है।

49. **अमरूल साग** (*आक्जैलिस कॉर्नीकुलेटा*: ऑक्सालिडेसी)

शाकीय पत्तेदार सब्जी के रूप में खाते हैं। हरी पत्तियाँ सैंडविच, आचार व चटनी के रूप में खाते हैं। आंखों को तरो ताजा रखने हेतु एवं धुँधलापन दूर करने के लिये इनकी पत्तियों को जल में भिगाने के बाद, इस पानी का आखों पर छिड़काव करते हैं। हरी व ताजी पत्तियों का रस या लुग्दी का लेप मस्सा तथा त्वचा के फोड़े-फुन्सियों के उपचार के लिये लगाया जाता है।

50. **पाद बेल** (*पिडेरिया फॉएटिडा*: रूबिएसी)

हरी पत्तियां शाकीय भाजी के रूप में खाते हैं। इसका काढ़ा वायु विकार के कारण पेट/उदर की पीड़ा को शांत करने के लिये पिलाया जाता है। हरी पत्ती को गर्म औषधि के रूप में चबाकर ग्रहण किया जाता है।

51. **केवड़ा** (पैन्डेनस टेक्टोरियस : पैंडेनेसी)

कोमल पत्तियों व तने को सब्जी के रूप में खाते हैं। बहुआयामी औषधि के रूप में जैसे तीखी, कडुवी व गंधमय, हरी पत्तियां चेचक जैसी रोगों के उपचार में सहायक होती है। डण्ठल के भीतरी भाग का काढ़ा बनाकर कब्ज को दूर करने के लिये पिलाया जाता है। बुखार व खसरा के उपचार के लिये तथा रक्त शुद्धिकरण हेतु डण्ठल का काढ़ा पिलाया जाता है। मूत्ररोग, हृदय रोग, जीवाणु रोग,नीद से संबन्धित बीमारी, गिल्टी आदि के उपचार में भी लाभप्रद होता है।

52. **खाड़ी खीजूर** (*फोएनिक्स पालूडोसा* : एरिकेसिएसी)

स्तम्भ मज्जा एवं हरी ताजी पत्तियां सब्जी के रूप में खाते हैं। सूखी पत्तियों को राख प्रत्यक्ष रूप से या नारियल के तेल में मिश्रित करके घाव के उपचार हेतु घाव में भरते हैं। सूखी पत्तियों की राख जबड़ों व दाँत की गुहा में सड़न के उपचार व दाँत दर्द निवारक मे रूप में लगायी जाती है।

53. **पिपली** (*पाइपर सारमेन्टोसम* : पाइपेरेसी)

कोमल पत्तियां खाद्य रूप में काम आता है। सिर दर्द में पत्तियो का लेप माथे पर लगाने से आराम मिलता है। उसके सेवन से पाचन संबधी विकार दूर होता है व अच्छी नींद आती है।

54. **दाल भाजी** (*पोर्टुलेका ओलिरेसिया* : पार्टुलेकेसी)

सब्जी के रूप में उपयोगी है। स्थानीय लोगों की मान्यता है कि इसमें विविध पोषक तत्व जैसे विटामिन्स (मुख्यतया विटामिन-सी), खनिज लवण (सोडियम व पोटेसियम) आदि प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अत: यह पौष्टिक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है जिसके सेवन से प्रतिरक्षा तन्त्र मजबूत होता है। काली मिर्च का चूर्ण इसकी पत्तियों के रस के साथ सर्पदंश तथा बिच्छू डंक के विष के उपचार में दिया जाता हैं।

55. **खट्टा दाल भाजी / खट्टा-चावल भाजी** (*पोर्टुलेका क्वाड्रिफिडा* : पोर्टुलेकेसी)

पौधे सब्जी के रूप में खाये जाते हैं। पत्तियों के नियमित सेवन से मधुमेह पर नियंत्रण होता है। पत्ती की लुग्दी का लेप घावों को भरने के लिये लगाया जाता है। दमा व मूत्राशय सम्बन्धित रोग के उपचार में पत्ती का काढ़ा पिलाया जाता है।

56. **अगाथी** (तमिल) (*सेसबानिया ग्रेन्डीफ्लोरा* : पोर्टुलेकेसी)

कोमल व मीठी पत्तियां रूचिकर व स्वादिष्ट सब्जी के रूप में तमिल लोगों द्वारा खायी जाती हैं। पत्ती का काढ़ा मासिक चक्र सम्बन्धित विकार व सिर दर्द निवारक लोकप्रिय औषधि के रूप में पिलाया जाता है। पत्ती को चबाकर खाना मुंह के छालों व नकसीर में लाभकारी है। पत्तियों के रस को आन्तरिक व मांस पेशीय चोट या मोच पर लगाया जाता है।

57. **इमली** (*टेमेरिन्डस इन्डिका* :फेबेसी)

नई पत्तियों का चूर्ण बनाकर चावल के माड़, टमाटर, धनिया, नमक आदि के साथ मिलाकर सूप या खाद्य पदार्थ बनाया जाता है। सूखे पत्तों का पाउडर (पलवा) गर्म मांड (स्टार्च) के साथ घोल बनाकर पेचिश में पिलाया जाता है। पत्ती का पाउडर (पलवा) चावल के माड़ के साथ ग्रहण करने पर शरीर में स्फूर्ति आती है। लू लगने पर इमली के गूदे का घोल बनाकर तलवे में लेप लगाया जाता है।

58. **पारस पीपल** (*थेस्पेसिया पॉपुल्निया* : मालवेसी)

कोमल व नरम पत्तियाँ एवं पुष्प कच्ची तथा पकी सब्जी के रूप में तथा पत्तियों का रस पेट दर्द, कब्ज या पाचन सम्बन्धित विकार में पिलाया जाता है।

1. *चाम्पेरिया ग्रिफिथी* (मीठी भाजी);

3. *डिप्लाजियम एसकुलेन्टम* (कोकड़ी भाजी);

2. *साइकस रम्फी* (अरगुना साग);

4. *एनहाइड्रा फ्लकचुएन्स* (कड़वी भाजी)

ओडिशा के आदिवासी क्षेत्रों में जंगली फूलों के पारम्परिक घरेलू उपयोग

हरीश सिंह 'भुजवान'
भारतीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

ओडिशा राज्य अपनी ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं वानस्पतिक विविधता के साथ-साथ सदियों से आदिवासियों की बहुलता के लिए भी प्रसिद्ध रहा है। इस राज्य के 30 जनपदों में से अधिकतर जिलों के सुदूरवर्ती वन क्षेत्रों में वर्तमान में भी आदिवासियों की 62 मुख्य जातियाँ निवास करती हैं। इन आदिवासियों का इन जंगलों से सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक संबंध रहा है। ये लोग सदियों से इन जंगलों में उपलब्ध पेड़-पौधों के विभिन्न भागों को अनेक प्रकार से उपयोग करते आ रहे हैं। पेंड़-पौधों के जड़, कन्द, पत्ती, तना, छाल, फल व बीज का ही प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है। किन्तु राज्य के मयूरभंज, सुन्दर गढ, अंगुल तथा बलागीर जिलों के 165 ग्रामीण अंचलों के भ्रमण के साथ-साथ पुराने उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात लेखक ने अनुभव किया कि इस राज्य में जंगली पेड़-पौधों के अन्य भागों के अतिरिक्त उनके पूलों का भी विभिन्न रूप से उपयोग किया जाता रहा है। इन लोगों द्वारा फूलों का उपयोग अधिकतर अपनी भूख मिटाने के लिए तथा अपने व घरेलू जानवरों के रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। इनके अतिरिक्त इन जंगली फूलों का उपयोग धार्मिक एवं मांगलिक कार्यो में, पूजा-पाठ में, मन्दिरों व घरों को सजाने में, प्राकृतिक रंग प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। इन जंगली फूलों को अधिकांशत: तेल व मसाले के साथ पकाकर सब्जी या पकोड़ी के रूप खाया जाता है। इन्हें मीठे रस के लिये चूस कर या कच्चा भी खाया जाता है। इन फूलों को खाद्य के रूप में प्रयोग करने से पहले इनके पुंकेशर को निकाल दिया जाता है ताकि किसी भी प्रकार के हानिकारक तत्वों के मिश्रण की संभावना न रहे। खाद्य पदार्थ के लिए अधिकतर फूलों के मुख्य भाग जैसे बाह्य दलपुंज (केलिक्स) तथा दलपुंज (कोरोला) का ही उपयोग किया जाता है, जबकि औषधियों के निर्माण में फूलों के अन्य भागों को भी प्रयोग किया जाता है।

इस लेख में इस राज्य के 44 जंगली फूलों के वानस्पतिक नाम के साथ उनके स्थानीय नाम, उनके प्रयोग की पारम्परिक विधियां तथा उनके घरेलू उपयोग भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यदि इन जंगली फूलों की पारम्परिक उपयोगिता के आधार पर इन फूलों की रासायनिक विश्लेषण कर इनमें सक्रिय रासायनिक तत्व की उपलब्धता की खोज की जाये तो निश्चित रूप से भविष्य में अपने देश में बढती जनसंख्या को भूख से निजात पाने के लिए नये पौष्टिक खाद्य व रोगों के निदान के लिए नये, सुरक्षित व प्रभावकारी औषधियों बनेंगी।

1. ***एनोना स्कवेमोसा*** (अट्टा, बधाल, अत्ता) के फूलों को बच्चे भूख मिटाने के लिए कच्चा खाते हैं।
2. ***अजाडिरेक्टा इन्डिका*** (निम्बो, नीम) के फूलों को तेल में पककर सब्जी के रूप में खाया जाता है, इसे खाने से त्वचा संबंधी रोग भी ठीक हो जाते है। इस सब्जी को चावल के साथ मिलाकर औरत को बच्चा पैदा होने के पश्चात खिलाने से रोग रोधक क्षमता बढती है।
3. ***बाउहिनिया परपूरिया, बा. रेसिमोसा, , बा. वेरिगेटा*** (कंचन, कुलेर, कुरल) के फूलों व फूलों की कलियों को तेल में भून कर या उबालकर सब्जी के रूप में खाया जाता है।
4. ***बारलेरिया प्रिओनिटिस*** (कांटा मालती) के पीले फूलों को शरद् ऋतु में एकत्र कर पूजा में प्रयोग करते हैं।
5. ***बेरिंगटोनिया एक्यूटेन्गुला*** (हिन्जाल, हिंजाड़ो) के फूलों को कच्चे चावल के साथ पीसकर देने से घरेलू जानवरों का अतिसार रोग ठीक हो जाता है।
6. ***बोम्बेक्स सीबा*** (सेमल, सिमली) के फूलों का बाह्य दलपुंज सब्जी के रूप में खाया जाता है।
7. ***ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*** (मुरद, पलसा, फोर्सा) के फूलो को बच्चे मीठे रस के लिए चूसते हैं इसके फूलों के दलपुंज (कोरोला) को पकाकर सब्जी भी बनाई जाती है। ताजे फूलोंको काली मिर्चे व गुड़ के साथ पीसकर प्रत्येक दिन खिलाने से दमा रोग ठीक हो जाता है। सूखे फूलों को रात भर भिगो कर रखे पानी को पीने से कमजोरी ठीक हो जाती है। फूलों को चबाने मात्र से दाँत का दर्द ठीक हो जाता है। इनके फूलों को एकत्र कर होली के अवसर पर प्राकृतिक रंग भी निकाला जाता है।
8. ***ब्यूटिया सुपर्बा*** (बुधेल) के सफेद फूलों को काली मिर्च के साथ पीसकर 27 दिन तक खिलाने से बाँझ औरत का अनियमित

मासिक-धर्म नियमित हो जायेगा तथा वह गर्भधारण भी कर लेती है।

9. **केसिया फिस्टुला** (सुनारी, नुईनी) के पीले फूलों को तेल में भून कर सब्जी की तरह खाते हैं। इसके फूलों को घरों में सजाने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है।
10. ***केसिया सियामिया*** (सीमा तेनगेरु) के फूलों को पकाकर कढी के रूप में खाते हैं।
11. ***केसिया सोफेरा*** (चकोन्डा) के फूलों को इसके कोमल पत्तों के साथ पकाकर सब्जी के रूप में खाते हैं।
12. ***केसिया टोरा*** (चकोड़) के फूलों को भी इसके कोमल पत्तों के साथ पकाकर सब्जी के रूप में खाते हैं।
13. ***सिलेस्ट्रस पेनीकुलेटस*** (कुजरी, पिन्गु) के फूलों को पकाकर सब्जी की तरह खाते हैं।
14. ***सीसस क्वाड्रेन्गुलेरिस*** (हड़जोरा, हाड़ शंखाली, हाड़ भागा) के फूलों के रस को शहद के साथ मिलाकर खिलाने से कब्ज रोग ठीक हो जाता है।
15. ***कोर्डिया डाइकोटोमा*** (बहाल, लसोड़ा, भडार, ग्वहलो) के फूलों की कलियों को सब्जी के रूप में खाते हैं।
16. ***डेन्ड्रोफ्थी फेलकेटा*** (मदांग) के फूलों से मीठा रस (नेक्टर) चूसा जाता है। इसके फूलों को बहु प्रचलित मुर्गों की लड़ाई से पहले मुर्गे को ताकत के लिए खिलाते हैं।
17. ***डिलेनिया पेन्टागाइना*** (राइ, सहर बाहा) के फूलों व फूलों की कलियों को पकाकर सब्जी के रूप में खाते हैं।
18. ***एलिफेन्टोपस स्केबर*** (मेजो झूटी, मयूर चूड़ा ब्रह्मा दंडी, आमटो डायचेरा सूरजा चेरा, गोजा) के सूखे फूलों के चूर्ण को पानी के साथ खाने से अजीर्ण रोग ठीक हो जाता है। इसके फूलों को आदिवासी लड़कियाँ कानों में झुमके के रूप में पहनती हैं।
19. ***हिबिसकस रोजा-सिनेन्सिस*** (अरहूल, मुन्दारो, गुड़हल) के फूलों को पानी के साथ पीसकर खिलाने से पेट दर्द व पेट की गर्मी ठीक हो जाती है। फूलों को पीसकर इस लेप को शरीर पर लगाने से छोटे-छोटे लाल दाने (एलर्जी) ठीक हो जाती है।
20. ***हिबिसकस सबडेरिफा*** (कुडरूम) के फूलों को पकाकर सब्जी की तरह खाते हैं।
21. ***होलोप्टेलिया इन्टीग्रीफोलिया*** (थापसी, धरंज, चिलबिल) के छोटे-छोटे फूलों को पकाकर सब्जी बनाते हैं।
22. ***इन्डिगोफेरा केसिओइड्स*** (गिरिल, गीरल, जेरहूल, हुतारी) के गुलाबी फूलों को तेल में भून कर या उबालकर सब्जी की तरह खाया जाता है।
23. ***अढाटोडा जिलेनिका*** (बासंग, अड़सा) के पूलों से बच्चे मीठा रस चूसते हैं। सूखे फूल के चूर्ण को शहद के साथ खिलाने से खाँसी व दमा ठीक हो जाती है।
24. ***लेजरस्ट्रोमिया पार्विफ्लोरा*** (सिद्दा, सेना, छेना) के फूलों को पीसकर बकरियों को देने से उनका पाचन संबंधी रोग ठीक हो जाता है।
25. ***लियोनोटिस नेपेटिफोलियम*** (गुब्बा फूल, बर्द्धी गवार) के फूलों से बच्चे मीठा रस चूसते हैं।
26. ***मधुका लोंगिफोलिया प्रभेद लेटिफोलिया*** (महुआ) के ताजे फूलों (तूलो) को एकत्र कर खाया जाता है, इन फूलों को पकाकर सब्जी भी बनायी जाती है। फूलों को सुखा कर इसके चूर्ण को पावल व रोटी के साथ खाया जाता है। इसके फूलों को आसवित कर एक नशीला पेय (मद) तैयार किया जाता है, फूल के रस को सजना (मोरिंग ओलिफेरा) के पत्तों के रस के साथ मिलाकर आँख के रोग के उपचार में प्रयोग किया जाता है।
27. ***मेसुआ फेरिया*** (नागेश्वर नागकेशर) के ताजे फूलों को घर को सजाने व खुशबू के लिए प्रयोग करते हैं, ताजे फूलों को गर्मी के दिनों में सिर में रखने मात्र से लू नहीं लगती है। सूखे फूलों को रातभर भिगो कर सुबह पीने से पेट को ठंडा करता है। इन भीगे फूलों को मिश्री व पानी के साथ पीसकर खिलाने से पेट के वायु सम्बन्धित रोग ठीक हो जाते हैं।
28. ***माइकेलिया चम्पाका*** (चम्पा) के पीले सुगन्धित फूलों को स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा तथा ग्रहों की शान्ति के लिये प्रयुक्त करते हैं, फूलों से अगरबत्ती (इन्सेनेस) भी तैयार की जाती है। इस वृक्ष को इस राज्य का महावृक्ष भी कहा जाता है।
29. ***मेलिंगटोनिया हार्टेसिस*** (आकोशमोनी, आकाशमाली) के सुगन्धित सफेद फूलों के गुच्छों को आदिवासी महिलाएँ बालों में सजाती हैं।
30. ***मोरिंगा ओलिफेरा*** (मूंगा, सजनी, सोजना, मुगाड़ा) के सफेद फूलों को तेल में भून कर सब्जी के रूप में खाने से रक्त चाप तथा चेचक (स्माल पोक्स) ठीक हो जाते हैं।

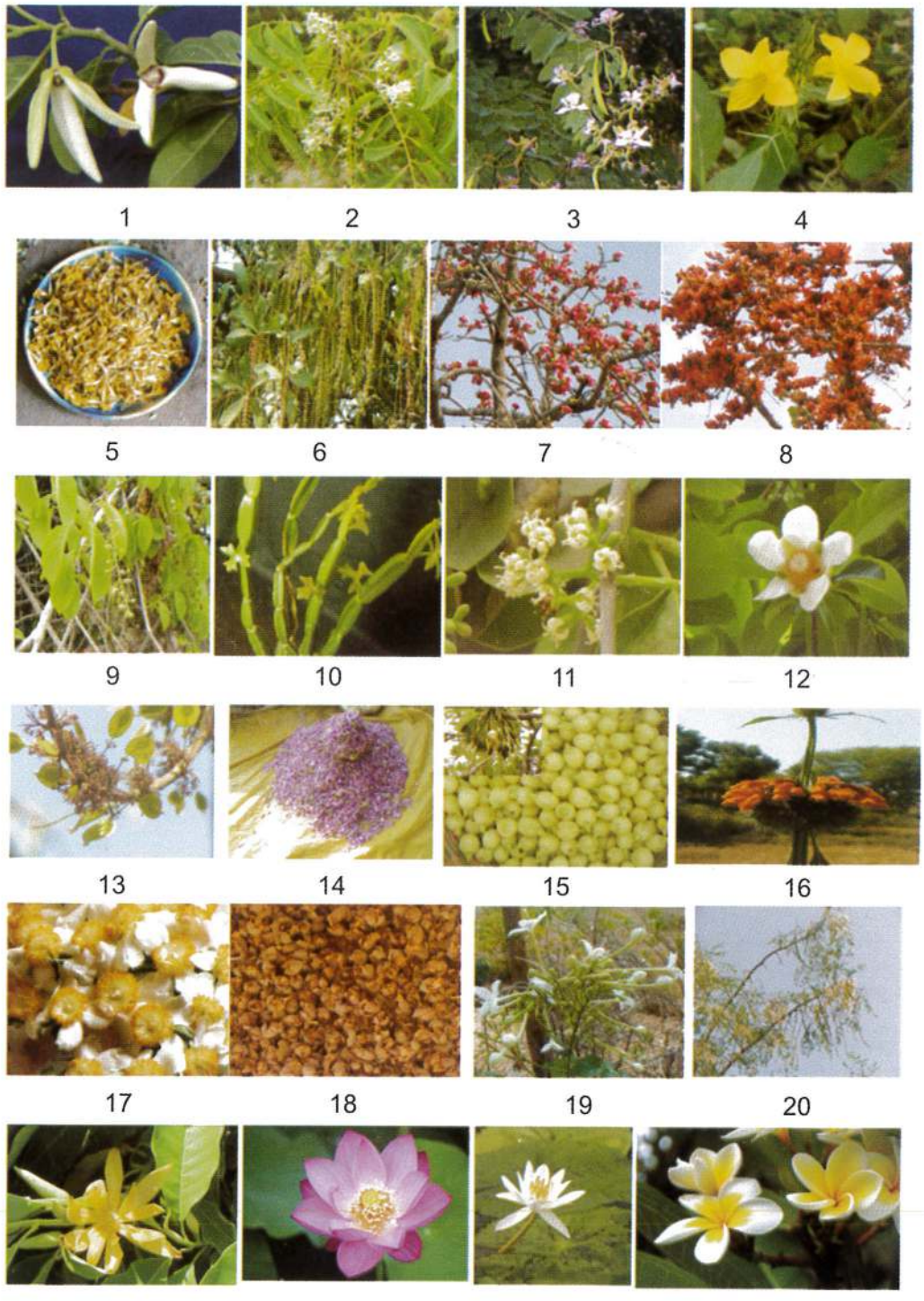

1. *एनोना स्क्वैमोसा,* 2. *अजाडिरेक्टा इन्डिका,* 3. *बाउहिनिया परप्यूरिया,* 4. & 5. *बारलेरिया प्रिओनिटिस,* 6. *बेरिंग्टोनिया एक्यूटेन्गुला,* 7. *बोम्बेक्स सीबा,* 8. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा,* 9. *सीलेस्ट्रस पेनीकुलेटस,* 10. *सीसस क्वाड्रेन्गुलेरिस,* 11. *कोर्डिया डाइकोटोमा,* 12. *डिलेनिया पेन्टागाइना,* 13. *होलोप्टेलिया इन्टीग्रीफोलिया,* 14. *इन्डिगोफेरा केसिओइड्स,* 15. *मधुका लांगीफोलिया प्रभेद लैटीफोलिया* 16. *लियोनोटिस नेपेटिफोलियम,* 17.&18. *मेसुआ फेरिया,* 19. *मेलिंगटोनिया हार्टेसिस,* 20. *मोरिंगा ओलिफेरा,* 21. *माइकेलिया चम्पाका,* 22. *निलम्बो नूसीफेरा,* 23. *निम्फिया प्युबसेन्स,* 24. *प्लूमेरिया रूब्रा*

25

26

27

28

29

30

31

32

33

34

35

36

37

38

39

25. *सोलेनम विर्जिनियेनम,* 26. *साइजीजियम कुमुनी,* 27. *वाइटेक्स नीगुन्डो,* 28. *वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा,* 29. *रीविया हाइपोक्रेटेरिफोरमिस,* 30. *टेरोस्पर्मम एसेरिफोलियम,* 31. *हिबिसकस रोजा-सिनेन्सिस,* 32. *स्पाइलेन्थस पैनीकुलाटा,* 33. *अन्गुल में फूलों की माला बेचती एक आदिवासी महिला,* 34 & 35. *पुरनाकोट में स्थानीय देवी के लिये फूलों की माला तैयार करता एक आदिवासी,* 36. *अन्गुल में जगन्नाथ जी के लिये बनाया गया हार,* 37. *पटनागढ़ में शिव मंदिर में चढ़ाये फूल,* 38. *पटनागढ में देवी के गले में जंगली फूलों की माला,* 39. *हरिशंकर मंदिर में बेचने के लिये रखे जंगली फूल*

31. *नीलम्बो नूसीफेरा* (पदमा, श्वेत पदमा) के फूलों के दलपुंजों को पकाकर सब्जी की तरह खाया जाता है।
32. *निम्फिया प्युब्सेन्स* (कुमुदनी, कोइन) के फूलों के दलपुंजों की सब्जी खाते हैं।
33. *प्लूमेरिया रूब्रा* (गुलेंच, कठ-चम्पा) के फूलों को तेल में भून कर खाते हैं।
34. *तमिलनाडिया यूलिजीनोसा* (तेलकुर, पिन्डर) के फूलों को पकाकर सब्जी के रूप बें खाते हैं।
35. *रीविया हाइपोक्रेटेरिफारमिस* (फान्जी) के फूलों व फूलों की कलियों को शीतकाल में तलकर पकौड़ी के रूप में खाते हैं।
36. *टेरोस्पर्मम एसेरिफोलियम* (मुचकुन्दो) के फूलों को चावल (अरवा) के साथ पीसकर रोटी खाने से गठिया रोग ठीक हो जाता है। फूलों के पेस्ट को रोगी के गठिया ग्रसित भाग पर बाहर से भी लेपा जाता है। इन फूलों के लेप लगाने से सिर के जूँ तथा खटमल भी भाग जाते हैं।
37. *स्माईलेक्स जेलेनिका* (मुतुरी, अग्नीहोरा, राम दातुन) के छोटे फूलों को पीसकर साल के पत्ते के अन्दर रखकर सेंकते हैं, इसे छोटे बच्चे जो बिस्तर में सोते समय पेशाब करते हैं, को खिलाने से ठीक हो जाते हैं।
38. *सोलेनम विर्जिनियेनम* (अक्रांति, निपानिया, भेजी) के फूलों को घी में भून कर खिलाने से बच्चों की खाँसी तथा कुकुर खाँसी ठीक हो जाती है।
39. *स्पाइरेन्थस इन्डिकस* (गुरकमुंडी, मेन्डो गाद्री, भ्यूकदम) के फूलों को सब्जी की तरह पकाकर खिलाने से छोटी चेचक (चिकन पाक्स) का संक्रमण नहीं होता है। इसके फूलों को चबाने से मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं।
40. *स्पिलेन्थस काल्बा* (गौधावी, अक्रा बछ, अकरकारा) के फूलों को चबाने से मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं। फूल को कीड़े लगे दाँत के बीच में रखने मात्र से दर्द व संक्रमण ठीक हो जाता है।
41. *शोरिया रोबस्टा* (साइ, रेंगाल, सार्गी) के फूलों को चावल व दूब घास के साथ पीसकर खिलाने से शरीर में ताकत बढ़ती है। फूलों की सब्जी खाते हैं।
42. *साइजीजियम कुमुनी* (जाम, जाम्बू) के फूलों को पानी के साथ पीसकर खिलाने से मधुमेह ठीक हो जाता है।
43. *वाइटेक्स नीगुन्डो* (बैगुनिया, निर्गुन) के फूलों को स्थानीय पुजारी (गुणी) नव ग्रह के बुरे प्रभाव को समाप्त करने में प्रयोग करते हैं।
44. *वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा* (धात्री, धाय, धातुक, जादुका, इछावा) के फूलों को बच्चों द्वारा सुबह-सुबह मीठे रस के लिए चूसा जाता है। इसके सूखे फूलोंको गर्भवती महिला को प्रसव के दौरान खिलाने से बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है। इसके फूलों को अश्वगंधा, तेज पत्ता, लौंग, व जायफल के साथ पीसकर खिलाने से लकवा, कमर दर्द, शीघ्र पतन तथा धातु रोग ठीक हो जाते हैं। सूखे फूलों को मिश्री के साथ पीसकर देने से अतिसार तथा श्वेत प्रदर ठीक हो जाता है। इसके फूलों को नाग केशर के फूल, सिमली की जड़ तथा मिश्री के साथ रोज खिलाने से शरीर की ताकत बढ़ती है। आदिवासी लोगों द्वारा इन फूलों को जंगल से एकत्र कर स्थानीय व्यापारी को नमक (बेकु) के बदले बेचा जाता है। इसके मीठे रस (नेक्टर) से शराब तथा फूलों से प्राकृतिक रंग भी तैयार किया जाता है।

मध्य प्रदेश की औषधीय वृक्ष सम्पदा

विनीत कुमार रावत एवं अच्युता नन्द शुक्ला*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

मध्य प्रदेश की जलवायु एवं स्थलीय कारकों में अत्यन्त विभिन्नता के कारण समृद्ध पादप विविधता पायी जाती है। मध्य प्रदेश से अब तकलगभग 2,400 पादप जातियां खोजी जा चुकी हैं जिसमें 1019 वंश एवम 207 कुल सम्मिलित हैं।

मध्य प्रदेश में तीन प्रकार के आरक्षित वन, संरक्षित वन और अवर्गीकृत वन हैं जो कि वन क्षेत्र का 61.7%, 37.4% और 0.9% क्रमश: गठन में वर्गीकृत हैं। मध्य प्रदेश में सामान्यत: पाये जाने बाले वृक्ष निम्नवत हैं। टीक (*टेक्टोना ग्रेंडिस*) सागौन मध्य प्रदेश में व्यापक वितरण के साथ सबसे महत्वपूर्ण लकड़ी है। यह खंडवा, हरदा, देवास, सीहोर, भोपाल, रायसेन, विदिशा, बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट, मंडला, डिण्डोरी, शहडोल, उमरिया, जबलपुर, दमोह, पन्ना, छतरपुर सागर, सतना, रीवा और सीधी जिलों में पायी जाती है। साल साखू (Shorea robusta) भी मध्य प्रदेश में महत्वपूर्ण लकड़ी जाति है। साल वन राज्य के पूर्वी भाग में स्थित हैं जबकि सागौन के जंगल पश्चिमी भाग में हैं बीच में मिश्रित विविध वनों के संक्रमण बेल्ट है साल वन होशंगाबाद और छिंदवाड़ा जिलों पचमढी में और चारों ओर वितरित हैं। मिश्रित वन राज्य में अधिकतम है। मिश्रित वन में *टेक्टोना ग्रॉन्डिस, सागौन या साल, बीजा साजा, बीजा महासज* (लेन्डिया) *लेजिट्रोमिआ पार्बीफ्लोरा* जैसी अन्य जातियों के साथ मिश्रित शामिल हल्दू-(*अडीना कोर्डिफोलिआ*), धाबड़ा-(अनोजीसस लेटीफोलिआ), सलाइ-(*बोस्वेलिआ सिराटा*), आमला-(*एम्ब्लिका ऑफिसिनेलिस*), अमलतास - (*केसिआ फिस्टुला*), गम्हार-(*मेलिना अर्बोरिआ*), आदि चमकदार सफेद (स्टर्कुलिआ यूरेन्स-कुल्लू पेड़ पौधों, झाड़ियों में स्थित हैं। बांस भी मध्य प्रदेश के जंगलों में पाया जाता है। आम तौर पर *डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस* मुख्य बांस अन्य प्रजातियों के साथ अतिव्यापी जाति है। यह बालाघाट, सिवनी, छिंदवाड़ा, बैतूल, मण्डला और शहडोल जिलों में वितरित है। खैर (बबूल कत्था) के पेड़, जबलपुर सागर, दमोह, उमरिया, होशंगाबाद, गुना, शिवपुरी, श्योपुर, ग्वालियर मुरैना में पाए जाते हैं।

प्रस्तुत लेख में मध्य प्रदेश में पाये जाने वाले वृक्षों के औषधीय महत्व के विषय पर विवरण प्रस्तुत किया गया है। मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले वृक्षों एवं उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा किए जाने वाले औषधीय उपयोग एवं संबंधित वृक्षों के उपयोगी पादप अंग के बारे में वर्णन किया गया है। स्थानीय भाषा, संस्कृत व हिन्दी में भी वृक्षों के नामों का विवरण दिया गया है।

वनस्पतिक नाम	स्थानीय/प्रचलित नाम	उपयोगी अंग	उपयोग
अकेसिया निलोटिका (माइमोसेसी)	बबूल, गूलर, कीकर	छाल, गोंद, पत्ती, फूल	गोंद का उपयोग मधुमेह, दुर्बलता, दूर करने में; छाल एवं जड़ का काढ़ा खून शुद्ध करने में; छाल - मुख के छाले में।
अकेसिया रूगेटा (लेग्यूमिनोसी)	कोची, शिकाकाई	छाल फली	फलियों के चूर्ण को मलहम के रूप में, चर्मरोग के लिए; कफ विकारों में, हृदय की दुर्बलता, मुत्रावरोध में फली का प्रयोग।
एगेल *मारमेलास* (रूटेसी)	मान्ड, मारिया महोका, (गोड़ी), बेल	पत्ती, फल, छाल	हरे फल के चूर्ण / मुरब्बा का प्रयोग दस्त, पेचिस एवं पेट संबंधी विकारों में; छाल का काढ़ा पारी के ज्वर, खूनी बबासीर में। तेल का प्रयोग कान बहने में ।

आकेसिया कैटेचू (माइमोसेसी)	स्था-सान्दामन्द (बस्तर), खेबर अलगजस हि.-खैर	छाल, काष्ठ सार	छाल, पाउडर एवं बीज मुख एवं पेट से संबंधित रोगों के उपाचार के लिए, गले की जलन एवं खांसी में;
एजाडिरेक्टा इंडिका (वृक्ष) (मिलिएसी)	स्था-बोकम बहा हि.-नीम	जड़ पत्ती, बीज, छाल	छाल का काढ़ा एवं पत्तियों का उपयोग - चर्मरोग, ज्वर, नेत्र रोग, आमवात, प्रमेह, कास, रक्तविकारों में; तेल का प्रयोग गर्भ निरोधक के रूप में।
एम्ब्लिका ऑफीसिनेलिस	स्था-मेरालईकाया, नेली (गोड़ी) ऑवला, लवली, बेलंग	फल	खून रोकने में फल की पुलटिस।
एलेंजियम साल्वीफोलियम (एलजिएसी)	स्था-ढेरा - गन्धपुष्प, पीतसार - अंकोल	छाल, बीज, जड़	छाल का उपयोग कफ निवारण में; दर्द एवं फोड़ा में तेल लगाते हैं। कुत्ते, सर्प, एवं चूहा के विष निवारण हेतु छाल को पीस कर लेप करते हैं एवं पानी के साथ पिलाते हैं।
एलबीजिया लेबेक (माइमोसेसी)	स्था-सिरिस हि.-सिरिस	छाल, बीज, पुष्प, पत्र	छाल के सत का पाउडर कुष्ठ रोग में, बीजों का उपयोग गण्डमाला में लेप के लिए; दांत दर्द में पत्ती चबाते है।
ओरोजाइलम इंडिकम (वृक्ष) कुल - बिग्नोनिएसी	स्था-सोना, सुम्पर्द, फॉफिनी (बस्तर) राकदवा, सोनापद काठोर मादा (गोड़ी) अरलू	छाल, फल	जड़ एवं छाल के काढ़े का उपयोग शक्ति वर्धक, के रूप में, स्तम्भन, अतिसार, एवं दस्त रोकने में। छाल का काढ़ा तीव्र सन्धिवात, गठिया में।
क्लेरोडेन्ड्रम फ्लेमोइडिस (वर्बीनेसी)	स्था-पंजित, ताकल, सफेद टेकार, गन्यारी, एरेन हि.-अरनी, उरनी	छाल, जड़	छाल और जड का काढ़ा खसरा में
कोर्डिया डाइकोटोमा	स्था-रसाला, गोदनी, विरकी (गोड़ी) रेतबच, सिलू, चिल्हू (कोरकू)	पत्ती, छाल, फल	फल का काढ़ा कफ निस्सारक है, तथा फेफड़ों से संबंधित रोग में।
केसिया फिस्टुला (सिसलपिनिएसी)	स्था-भनका भन्गुरू (कुरकी), दोरबीजा चेमरोबोला, रेरा (गोंडी), रेला (बस्तर), बन्दरलाठी, स्था-अर्गबध	फूल, फल	छाल का काढ़ा, वात रक्त में उपयोगी है तथा फूल का गूदा बुखार में शिथिलता को दूर करता है।
कोमिफेरा वाइटी (बर्सेरेसी)	स्था-गूगल, हि-गूग्गल	गोंद	गोंद राल प्लीहा रोगों में तथा रक्त वर्धक के रूप मे।
ग्रेविया एसिआटिका (टिलिएसी)	स्था-भामन, जंगोलस,	छाल, फल	फल का उपयोग स्तम्भक तथा शीतलता के लिए।
जिजीफस मार्सिआना (रैमनेसी)	स्था-देनदवरीगामन, जोमिनुस, रेन्गा (माडिया)	छाल, फल, बीज	छाल के पाउडर का उपयोग अतिसार में; फल का उपयोग खून शुद्ध करने के लिए
टेमेरिंडस इंडिका (सीसलपिनिएसी)	स्था-जोजा, इटा (मारिया) हितमग, हिट्टा (गोड़ी), इटामाडा (बस्तर), टेटर (खराव) सं.-तिन्तिडी	फल, बीज	फल का उपयोग वात दोष पाचक एवं रेचक के रूप में; बीज का काढ़ा बुखार मे।
टर्मिनेलिया अर्जुना (काम्ब्रिटेसी)	स्था-कहुआ, मोथामांग (माड़िया), अर्जुन, कोहवा, मागी (गोड़ी), मांगुमादा (बस्तर)	छाल	छाल का काढ़ा हृदय रोग , कब्ज हरने, स्तम्भक के रूप में, ताप हरने तथा ताकत के लिए।

टर्मिनेलिया चिबुला (काम्ब्रिटेसी)	स्था–राले कारका (माडिया), माकोह (गोड़ी), इरला, (बस्तर), हिल्दा हरदे	फल	काढ़े का उपयोग रक्तस्राव रोकने के लिए, फल ताप हरने, स्तम्भक, रेचक के रूप में।
टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा (काम्ब्रिटेसी)	स्था–मारू, सादस, आटवक, मादुम (हल्वी) मेरदी (माड़िया) रौस, मोरदा (गोड़ी)	छाल	छाल के पाउडर को यकृत को ताकत पहुंचाने, अतिसार; तथा काढ़े का उपयोग कब्ज संबंधी दोषों के लिए।
टर्मिनेलिया बेलेरिका (काम्ब्रिटेसी)	स्था–लोपोंग, ताखा (गोडी) तहाका (माड़िया)	फल	फल का पाउडर बवासीर एवं अपच में, ताकत व रेचक का कार्य करता है।
निक्टेन्थस आर्बोरट्रिस्टिस (झाड़ीनुमा वृक्ष) (ओलिएसी)	स्था–करोसली, सायुरोम (एस–जे), कुलमारोसल खरखोसा, सिहारा, (गोड़ी), किंगेरी, सिरली मन्दार हि–हरसिंगार	छाल, फूल	बच्चों के आंत के कीड़े निकालने में, रक्तविकार, पथरी, मधुमेह एवं बुखार में पत्ती का रस पिलाते हैं।
पाइनस लौंगिफोलिया (पाइनेसी)	स्था–केलु, दियार	छाल, रेजिन	रेजिन का उपयोग पेट के अतिरिक्त रोगों एवं गर्भाशय के सुजाक को दूर करने के लिए।
पोंगामिया पिन्नाटा (पेपिलियोनेसी)	स्था–कंजी हि–करंज, करूआइनी	बीज, जड़, छाल	ताजे छाल का उपयोग आंतरिक खूनी बवासीर में; बीज का उपयोग वाह्य चर्मरोग में। रक्तशोधन, बच्चों को इसके बीज़ों की माला भी (कुकर खांसी से बचने के लिए) पहनाते है।
फाइकस बेंगालेन्सिस (मोरेसी)	स्था–बेरेदरे, मसम (माड़िया) बोरह (बस्तर) बरेली (गोड़ी) बरगद	छाल	छाल के सत का मधुमेह रोग में।
फाइकस रेलिजियोसा (मोरेसी)	स्था–अलजामा, राय (गोड़ी) हेक्स (संथाली), अली (माडिया) पिकस (बस्तर) अलमारन (कुरक) हि–पीपल	छाल, फल	छाल के सत का आंतरिक पामा रोग मे।
फाइकस रेसिमोसा (मोरेसी)	स्था–उमर लोओ (एस. जे), टोया (गोड़ी) डुमार (कोरकू) सं.–उडुम्बारा (उदुम्बर) हि–गूलर	छाल, जड़, फल	फल वातहर और स्तम्भक के रूप में, छाल और जड़ु पेचिस में ।
फेरोनिया लिमोनिया (रुटेसी)	स्था–केवट, कोचवे (एस. जे), कटवेल (जबल), कैथ, कबिट हि.–कैंथ	फल, छाल	फल का चूर्ण स्तम्भक एवं उददीपक के रूप में उपयोग।
ब्यूटिया मोनोस्पर्मा (पैपिलियोनेसी)	स्था–मुरीप, मुर (गोडी) मुधोरी, (माडिया) बोदल (हल्दी), मकरा, चोला हि.–टेशु ढाक, छिबला।	बीज, फुल, छाल	फूल एवं बीज बच्चों के कृमिनाशक के रूप में तथा छाल का काढ़ा बसासीर में उपयोगी है।
बाहुनिया वेरिगेटा (सीजलपिनेसी)	स्था–ब्रिन्जू, जिन्जिल अंचन, मोहला, गुरियल, सालासोना करियल हि– कचदार, मोहोता	छाल एवं फूल	छाल का काढ़ा गुलकीय ग्रन्थि (गण्डमाला) से उत्पन्न रोगों एवं फूल का चूर्ण रक्तपित्त में लाभदायक है।
बिक्सा ओरेलाइना (बिक्सेसी)	स्था–लटकन सिन्दूरपुष्पी, रक्तबीजा हि–सिन्दुरी, लटकन	बीज, पत्ती	पत्ती सर्पदंश, बीज का गूदा पाचक, बुखार कम करने, अतिसार, जर्मरोग, जलने पर, फफोलों के कारण दाग न आने के लिए।
बैलानाइटस इजिप्टिका (साइमारूबेसी)	स्था–हिगग (छिन्द), हिंगोट (खंडवा), इंगुआ (नरसिंहपुर) हि.–हिंगोन	छाल	छाल एवं फल का काढ़ा सर्दी एवं खासी में। तेल के जलन वाले स्थानों एवं फोड़ों में लगाते हैं।

मधुका लांगीफोलिया प्रभेद लेटीफोलिया (सेपोटेसी)	स्था-टोरा (हल्बी), मतकोम, इरपी, ईरहू (माड़िया), गरना, इंदुकमारा, इदुम (मारी), इपुमाड़ा (बस्तर) हि.-महुआ	छाल, फल, फूल,	फूल और छाल स्तम्भक तथा शक्तिवर्धक के रूप में।
माइकेलिया चम्पाका (मैग्नोलिएसी)	स्था-चमोती, रागचम्पा, हयमेरा, सोनचम्पा (छिन्द) हि.-चम्पा	छाल. फल, फूल	सूखी छाल का पाउडर तथा काढ़ा रेचक।
मेंगीफेरा इंडिका (एनाकार्डिएसी)	स्था-मोखा (माड़िया) अम्बा, रसाल हि.-आम	छाल, फल, फूल	गिरी का रस सूंघने से नाक से बहता खून बंद हो जाता है।
मेलिना आरबोरिया (वर्बेनेसी)	स्था-खुमेर खुरसी, कुरूस (माड़िया), कुरसी सिरना, (गोड़ी) हि.-गंभारी, गंभार, खमेर	छाल, जड़, तना	काढ़ा का उपयोग दुर्गन्ध दूर करने तथा फोडे के कृमियों को दूर करने में।
मेलोटस फिलिपेन्सिस (युफोर्बिएसी)	स्था-रोरा, सान्दुरा, (माडि), कुकेखा, रोला, राइम, कुम्कुमा, गुलेरोली कारकू (गोड़ी) हि.- कापिला, कम्पिला	फल, छिलके का चूर्ण	फल के आवरण का चूर्ण शोधक एवं कृमिनाशक के रूप में।
मोरिंगा ओलिफेरा (मोरिंगेसी)	स्था- सांजना, सोहजना, मुन्था हि.-मुनगा, सहजना	बीज, छाल, जड़. फल	यकृत, तिल्ली, जोड़ों के दर्द, लकवा, आदि की बीमारी में इसका फल लाभदायक है। जकड़न के दर्द को दूर करने में, जड़ छाल की से सिकाई करते हैं।
युकेलिप्टस रोस्टिएटा (मिर्टेसी)	स्था-लिप्टस सुगन्धपत्रा हि-नीलगिरी	पत्ती	सिरदर्द एवं जुकाम में पत्ती का रस/तेल लगाने से लाभकारी।
युजीनिया जम्बोलाना (मिर्टेसी)	स्था-नेन्दी (मारिया, तोन्दी, नेन्दम (गोड़ी) जाम्बुल कठजामुन, हालको, जामुन, जमनेरा हि.-जामुन	छाल, फल एवं बीज	ताजी छाल का अर्क बकरी के दूध के साथ बच्चों के दस्त या अतिसार में; बीज चूर्ण मधुमेह में, पत्ते का रस उल्टी, रक्तपित्त में।
यूफोर्बिया माइक्रोफाइला (युफोर्बिएसी)	स्था-दूधी, रवई, दुधेली नागार्जुनी हि.-दुधी	पचाग	सर्पदंश में इसका रस १ तोला काली मिर्च मिलाकर पिलाते हैं। कफ दोष, चर्म रोग में लेप, उदर रोग, कृमि, मूत्रकृच्छ, उल्टी-दस्त एवं पेंचिस में।
बाम्बेक्स सीबा (बोम्बकेसी)	स्था-इदेल, चोरेला, सिमल, सिमर, बारगु (गोड़ी) मोचा, चेम्बोर (बस्तर) हि.-सेमल	छाल, जड़	सेमल के कांटों को दूध में पीसकर काले मुहासों में लगाते हैं। जड़ का उपयोग कामशक्ति बढाने और नपुंसकता दूर करने के लिये; फोड़ा एवं जलन में छाल का लेप।
स्ट्रिकनास नक्सवॉमिका (लोगेनिएसी)	स्था-कुथला (बस्तर) मुखतुम (गोड़ी), गोखम्मदा दास्ती विशन्तिन्दुक हि.-कुचला	छाल, बीज	कफ एवं वात के रोगों में; फोड़ा में पत्तियों की पुल्टिस; पक्षाघात, पेटदर्द बवासीर, कृमिरोग, शीतज्वर में।
स्ट्रिकनास पोटैटोरम (लोगेनिएसी)	स्था-कोयार, कोटका, खियार (जबल), आस्थमरी (गोड़ी) कोचला (बस्तर) हि.-निर्मली	छाल, बीज	बीज का उपयोग आंखों के रोगों में, उल्टी और दस्त में, मधुमेह, अतिसार में तथा जड़ का उपयोग कुष्ठ रोग में।

सिट्रस और्टीफोलिया (रुटेसी)	स्थानिम्बू, निब. निबुआ हि.-निम्बू	फल	फल का रस भूख को बढाता है।
सिट्रस लेमन (रुटेसी)	स्था-अटर्स नीबू, बीजपुरा हि-अटर्रा निम्बू	फल	फल को चूसने से उल्टी एवं मितली में लाभ होता है।
स्टिरिओस्पर्मम सुआविओलेन्स (बिगनोनिएसी)	स्था-पंडरी (गोड़ी), जय मंगल, पुश्करमूल, वीरी (माड़िया) पाडर (कोरकू), पारल, पाद्रल हि.-पाडर, पाटल	जड़, छाल	जड़ एवं छाल का उपयोग मूत्रवर्धक एवं शक्ति प्रदान करने वाले टानिक के रूप में।
सिम्पलोकोस रेसिमोसा (सिम्पलोकेसी)	स्था- लूथा सोनपोकरी, लोथम, मकरखण्ड, लेन्दा (बालाघाट),	छाल एवं जड़	जड़ एवं छाल का काढ़ा गर्भाशय के शोथ एवं श्राव को शांत करता है। चर्मरोग, घावों में लेप, कान के बहने, दंतमंजन, अतिसार, रक्त एवं श्वेतप्रदर, बुखार तथा मधुमेह में।
सराका इंडिका (लेग्यूमिनोसी)	स्था - हुसांगिदबा, उसागिदबा, आशफली हि.-अशोक	छाल, फूल	कफ, रक्त प्रदर, श्वेतप्रदर, गर्भाशय की शिथिलता, शोथ, पथरी, जलन, अतिसार, कृमि, पीड़ा एवं विष में उपयोगी।
होलोरिना एंटीडिसेन्ट्रिका (एपोसाइनेसी)	स्था-कुरी, देहलाली, हि.- कुडा कुरची:	छाल बीज	बीज एवं छाल का काढ़ा दस्त में लाभदायक।

सुलतानपुर राष्ट्रीय उद्यान - वर्तमान परिदृश्य

मानस रंजन देवता, एस. के. श्रीवास्तव एवं अरविन्द कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

सुलतानपुर राष्ट्रीय उद्यान, हरियाना राज्य के जिला गुडगांव में स्थित है। यह गुडगांव कस्बे से फारूख नगर रोड़ पर 13 कि.मी. की दूरी पर है। यहाँ पास के रेलवे स्टेशन गढ़ी हरसू है जो कि सुलतानपुर राष्ट्रीय उद्यान से लगभग 6 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। राष्ट्रीय उद्यान के 45 कि.मी. दूरी पर इंदिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा स्थित है।

यह राष्ट्रीय उद्यान 352.17 एकड़ में फैला हुआ है तथा प्रवासी तथा अप्रवासी पक्षियों के लिए अति उत्तम प्राकृतिक आवास है। इस पक्षी विहार को 1991 में राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा प्राप्त हुआ क्योंकि यहाँ प्रवासी व अप्रवासी पक्षियों के लिये अति महत्वपूर्ण आवास व पानी की झील है। वर्षा के दिनों में इस राष्ट्रीय उद्यान की झीलें प्राकृतिक रूप से भर जाती हैं। वर्षा के दिनों में इस नम भूमि में प्रवासी पक्षियों के जैविक क्रिया के लिये अनुकूल समय है। वर्षा के दिनों में यहाँ की झील में मछली, घोंघे एवं अन्य जलीय जीव जन्तु व पौधे पाये जाते हैं। वर्षा ऋतु के अंतिम समय में अप्रवासी पक्षियों का आना शुरू हो जाता है। इस राष्ट्रीय उद्यान में स्थलीय प्रवासी पक्षियों के घोंसले पाये जाते हैं तथा यहाँ कुछ स्तनधारी, सरीसृप, एम्फिबियन और आर्थोपोड़ा के सदस्य भी यहाँ पाये जाते हैं। यहाँ जंगली बिल्ली, भेड़िया, भारतीय लोमड़ी, नील गाय, आदि पाए जाते हैं। यह राष्ट्रीय उद्यान शिक्षा तथा अनुसंधान की दृष्टि से तथा सैलानियों के लिये अति महत्वपूर्ण स्थान है।

इस राष्ट्रीय उद्यान के कुल भूभाग में से 70 हैक्टेयर पानी से घिरा हुआ है जिसकी अधिकतम गहराई 4.5 फीट तथा झील के अधिकांश क्षेत्र की गहराई लगभग 1.5 फीट से 2.5 फीट है। सन् 1996 में इस उद्यान की झीलें कुछ वर्षो तक वर्षा की कमी होने के कारण लगभग सूख गयी थी। जिससे यहां के जलीय परितंत्र की विविधता में खतरा उत्पन्न हो गया था। इस संकट से उबरने तथा जल स्तर बनाये रखने के लिये यमुना नदी से पाईप लाईन के द्वारा पानी लाने का प्रबन्ध किया गया।

भू-भौगोलिक दृष्टि से अर्द्धशुष्क मरूस्थलीय इस उद्यान की जलवायु सामान्यत: गर्म उष्णकटिबंधीय, तापमान अधिक तथा आर्द्रता की कमी पायी जाती है।

भू-आकारिकी की दृष्टि से इस उद्यान का कोर क्षेत्र सामान्यत: समतल है तथा बफर क्षेत्र ऊबड़-खाबड़ व रेतीला है। कुछ कृत्रिम रूप से पठार बनाये गये हैं जो कि पक्षियों के लिये उत्तम प्रवास हैं। यहाँ कोर क्षेत्र में कृत्रिम रूप से बनाये गये 67 छोटे तथा बड़े पठार हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान के कोर क्षेत्र को गाद से भरने का मुख्य कारण जल तथा वायु है। इस राष्ट्रीय उद्यान का बफर क्षेत्र समुद्र तल से 214 से 225 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इस उद्यान की मृदा बालुई, चिकनी व दोमट प्रकार की है जो कि कुछ भाग में रेतीली है। इस उद्यान की मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट व कंकड़ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इस उद्यान की बलुई व रेतीली मृदा नीम व *अकेशिया* की जातियों के लिए उत्तम है तथा यहां का कोर क्षेत्र घासें, *सायनोडोन, वेटीवर, सैकेरम* व *अरून्डो* जातिओं की वनस्पति के लिए उत्तम है। यहां की वनस्पतियां जलवायु पर आधारित हैं। इस उद्यान का तापमान मई व जून के माह में अधिकतम रहता है। इस उद्यान का तापमान पिछले 20 वर्षो में 47.5° से. से 49° से. तक दर्ज किया गया है। दिसम्बर व जनवरी का महीना यहाँ काफी ठण्डा होता है। इस उद्यान का दिसम्बर 1972 में सबसे कम तापमान-4.7° से. दर्ज किया गया था। यहां दक्षिणी-पश्चिमी मानसून वर्षा का मुख्य स्रोत है। इस उद्यान में वर्षा ऋतु जुलाई से सितम्बर तक होती है। यहां की औसत वर्षा लगभग 605 मि.मी. है। सामान्यत: इस उद्यान की आर्द्रता कम पायी जाती है जो कि अप्रैल व मई के माह में सबसे कम दर्ज की गयी है। इस समय यहां तापमान अधिकतम व वायु की गति लगभग 7 कि.मी/घण्टा होती है। इस उद्यान में अधिकतम आर्द्रता 82% अगस्त माह में दर्ज की गई है जब तापमान कम व वायु की गति धीमी होती है। इस उद्यान में पानी आने के दो रास्ते हैं, शादहरा गावं व सुलतानपुर गांव। वर्षा ऋतु में इस उद्यान की झील में पानी आता है। यहां की झील को कृत्रिम रूप से मौसमी नालों से जोड़ा गया है।

हरियाणा राज्य में लगभग पक्षियों की 450 जातियां पायी जाती हैं जिनमें से 250 जातियां सुलतानपुर राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाती है। जिनमें से कुछ यहां प्रवासी व कुछ अप्रवासी जैसे कि साइबेरिया, यूरोप व अफगानिस्तान से आती हैं।

सुलतानपुर राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ :

इस राष्ट्रीय उद्यान मे मुख्यत: दो प्रकार की वनस्पतियां पायी जाती हैं जिनमें से मौसमी जलीय वनस्पतिजात जो कि यहां के मौसम के परिवर्तन के कारण यहां की झील खुले घास के मैदानों में परिवर्तित हो जाती है। इस उद्यान में कुछ वनस्पतियां जैसे *अकेशिया निलोटिका* व *अकेशिया टॉर्टीलिस* का रोपण किया गया है।

इस राष्ट्रीय उद्यान में अर्द्धजलीय वनस्पति जिनकी जड़ झील के तल में धंसी रहती है जो कि *वेलिसनेरिया नेटेन्स* व *सिरेटोफिलम डिमरसम* तथा इस उद्यान की झील में कुल तैरते हुए पादप जैसे कि लिलि, छोटा कमल (*निम्फिया स्टिलेटा*), नीलोफल (*निम्फिया नोउचेली*) जिनकी जड़े मिट्टी में धंसी रहती हैं जिसमें से सुगन्धित सफेद रंग के फूल खिलते हैं। छोटा कमल की चिकनी पत्तियां होती हैं जिनके किनारे दन्ताकार होते हैं।

हल्की वर्षा के बाद लेम्ना की कुछ जातियां यहां के कुछ क्षेत्र में उगती हैं। इस जाति की पत्तियां पानी की सतह पर तैरती हैं तथा इसकी जडें स्वतंत्र रूप से पानी के अंदर रहती हैं। इस उद्यान में अन्य पादप समूह में से कुछ जलीय फर्न पाये जाते हैं जो कि जलीय सतह पर उगती है व इनकी जड़े दलदली मिट्टी में धंसी रहती है। जैसे कि *मार्सिलिया क्वाड्रीफालिया, मार्सिलिया माइन्यूटा,* इत्यादि। इसके साथ ही झील में कुछ जलीय शैवाल जैसे कि *नॉस्टाक, स्पाइरोगायरा* तथा कुछ कारा की जातियां पायी जाती है। इस उद्यान में कुछ *साइपेरस* की जातियां शैलीय मृदा में पायी जाती हैं जिनकी लम्बाई लगभग २ फीट तक होती है जैसे कि *साइपेरस रोटेन्डस* जिसके अग्रभाग में भूरे रंग के फूल पाये जाते हैं। तथा कुछ *साइपेरस कॉरिमबॉसस* जिनकी लम्बाई लगभग 5 फीट होती है। इस उद्यान में *आइपोमिया रेपटेन्स* (सरनाली) भी पायी जाती है जो कि इस झील के जल व मृदा में धंसी रहती है। इसकी पत्तियां सामान्यत: हृदयाकार, फूल घंटी के आकार का होता है इसका तना कमजोर प्रकृति का होता है। इस उद्यान के सभी जलीय व अर्द्धजलीय पादप जलीय अनुकूलन रखते हैं तथा यह स्थलीय पादपों से समानता नहीं रखते हैं। जैसे कि कुछ जलीय पादपों का तना कमजोर व स्थलीय पादपों का तना मजबूत व ऊपर की तरफ बढता है। सामान्यत: जलीय पादपों की पत्तियां जलीय सतह पर तैरती हुयी पायी जाती हैं तथा कुछ लिली के पादपों के बीज जल में ही वितरित हो जाते हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान में गहरे जल में दूब घास (*सायनोडोन डेक्टाइलोन*) जो कि खारे पानी में भी उगती है इस प्रकार की घास मानसून खत्म होने के बाद दिखाई देती है।

झील का पानी कम होने के बाद यहां की दलदली मिट्टी में घास व कुछ अर्द्धजलीय वनस्पतियां तथा विभिन्न प्रकार की शैवाल भी उगते हैं। इस उद्यान में मॉस तथा *रिक्सिया डिसकलर* जैसे हरितोद्भिद् भी पायी जाती है। अप्रैल माह में इस राष्ट्रीय उद्यान की झील सूख जाती है जिसमें जलीय वनस्पतियों का स्थान घास तथा शाकीय पौधे ले लेते हैं। झील में आर्द्रता तथा पानी की कमी होने के कारण छोटे फूलों वाले *पॉलिगोनम प्रोकमबेन्स* व *कोटूला हैमीस्पैरिका* की जातियां उगती हैं। कुछ घासें जैसे कि *वेटीवेरिया जिजेनोइड्स* (खस), *इरिएन्थस रेविन्नेई* (मूंज) पायी जाती है। यहाँ पायी जाने वाली वृक्ष एवं झाड़ियों में अकेसिया *नीलोटिका* (कीकर) *प्रोसोपिस* (खजड़ी), *टैमेरिक्स* (झाउ), *एजेडिरेक्टा इन्डिका* (नीम), *डलवर्जिया शिस्सू* (शीशम), *अकेशिया टॉर्टिलिस, अकेशिया ल्यूकोफ्लोइया* आदि प्रमुख हैं।

इस राष्ट्रीय उद्यान में लगभग 100 अप्रवासी पक्षियों का आवागमन हर साल होता है जो सामान्यत: शीत ऋतु में भोजन व प्रजनन के लिए यहां आते हैं। इनमे से काली गर्दन वाला सारस (*गिरूस निग्रोकॉलिस*) फुलिका अट्रा (आरी), गिरूस गिरूस (कूंज), *अथिया फेरिना* (करछिया), *नुमेनियस अरकुएटा* (शिवहंस), *एन्सर एन्सर* (कलहंस), *डेन्ड्रोसिग्ना जावानिका* (छोटी सिलही), *सिरकस एरूजिनोसस* (पनसील), *एनस प्लेटीरिन्कोस* (नीलसर), *एनस एकुटा* (सींखपर), *एनस क्लेपीएटन* (तिदारी), *अथिया फुलीगुला* (रहवारा), *स्टुरनस रॉजियस* (गुलाबी मैना), *मोतीसिल्ला एल्बा* (धोबन), *मोटासिल्ला फ्लेवन* (पनपीलक) आदि प्रमुख हैं।

पक्षियों का आवास स्थल

घास की मैदानी क्षेत्र

पश्चिम बंगाल के राजकीय वृक्ष एवं पुष्प

आर. सी. श्रीवास्तव एवं सुबीर सेन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

राजकीय वृक्ष :

छातिम *(एल्सटोनिया स्कालेरिस)* :

गुरु रवीन्द्र नाथ टेगोर का प्रिय, यह मनोहारी वृक्ष आमोद-नगरी कोलकाता के एक छोर से दूसरे छोर तक देखा जा सकता है। गुरुदेव द्वारा स्थापित शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय में तो इसे विशेष स्थान प्राप्त है। यह पश्चिम बंगाल का राजकीय वृक्ष है। छातिम की छाया तले विश्राम करने, या फिर अपने संगी-साथियों के साथ ठिठोली या गहन-चर्चा करने का अलग ही आनन्द है।

मूलत: इंडो-मलायन क्षेत्र का वासी, यह सदाबहार वृक्ष अपनी गहरे हरे रंग की चमकती उल्टे अंडाकार पत्तियों, गुच्छों में लटकते हरितिमा लिए श्वेत पुष्प तथा हल्के हरे रंग के लम्बे फलों द्वारा सहज ही आकर्षित करता है। इसकी पत्तियां डंठल के अग्रभाग से एक ही बिन्दु से 4-7 खंडों में विभक्त होती हैं जिसके कारण इसका नाम 'सप्तपर्णी' पड़ा।

इस वृक्ष को हिन्दी में 'छितवन', संस्कृत में 'सप्तपर्णी', बंगला में छातिम, तथा अंग्रेजी में डेविल्स ट्री, स्कालर ट्री, तथा डिटा बार्क ट्री, के नामों से जाना जाता है। इसके वंश का नाम *एल्सटोनिया,* ब्रिटेन के स्काटलैंड राज्य की राजधानी एडिनबर्ग शहर के प्रख्यात आचार्य सी एल्सटन के सम्मान में दिया गया है। प्राचीन काल में इसकी लकड़ी से विद्यालयों में बच्चों को पढाने के लिए ब्लेकबोर्ड बनाया जाता था, इसी आधार पर प्रजातीय नाम' *स्कालेरिस*' पड़ा।

पादप-कुल ' *एपोसाइनेसी*' के इस वृक्ष की खोज सर्वप्रथम कार्ल फ़ान लीनियस ने की जो जीवों के द्विनाम पद्धति के जन्मदाता कहे जाते हैं, तथा इसे *'इकाईटिस एस्कोलेरिस'* नाम दिया। परन्तु कालान्तर में राबर्ट ब्राउन नामक वनस्पति-विद ने इसे *'एल्सटोनिया'* वंश का सदस्य मानते हुए इसका वैज्ञानिक नाम *'एल्सटोनिया स्कालेरिस'* दिया जो सर्वमान्य हुआ।

इस वृक्ष में पुष्प मुख्यत: अक्टूबर से जनवरी तक दिखते हैं। परन्तु यदा-कदा, देश के विभिन्न भागों में इसका पुष्पन मार्च के अंतिम सप्ताह तक देखा गया है।

छातिम के तने से प्राप्त काष्ठ का उपयोग ब्लेकबोर्ड, स्लेट के फ्रेम, काफिन, पैकिंग बक्से आदि बनाने में होता है। इस वृक्ष की छाल उद्योग जगत में 'दिता बार्क' नाम से जानी जाती है। मलेरिया-बुखार हृदय रोग, दमा, पुरानी पेचिश, दस्त तथा कुष्ठरोग के निदान में इसकी छाल उपयोग किया जाता है। इसकी टहनियों एवं पत्तियों को तोड़ने पर एक दूधिया स्राव निकलता है जो दातों के पायरिया रोग में लाभकारी है तथा अल्सर वाले घावों में भी उपयोग किया जाता है।

राजकीय पुष्प :

सिउली (*निक्टेन्थस आर्बोरट्रिस्टिस*) :

मूलत: भारत का वासी 'सिउली' पश्चिम बंगाल राज्य का राजकीय-पुष्प है। हिन्दी में इसे 'हरसिंगार' तथा 'सिउली'; बंगला में 'सिउली' तथा 'सेफालिका' एवं अंग्रेजी में 'नाइट जेस्मिन' नामों से जाना जाता है। यह पादप कुल *'निक्टेन्थेसी'* का सदस्य है। दो से ६ मीटर ऊँचे वृक्ष या झाड़ीनुमा इस पौधे को भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। इसके मधुर सुगन्धित पुष्पों की बाह्य दलपुन्ज नालिका गहरे नारंगी रंग की होती है जो अग्रभाग में 4-8 भागों में विभक्त एवं श्वेत रंग की होती है।

इसके पुष्पन-काल से पश्चिम बंगाल में त्योहारों का प्रारंभ होता है। इसमें पुष्पन प्रमुखत: सितम्बर से जनवरी तक होता है। इसके वंश का नाम ग्रीक भाषा के शब्दों *'नक्स'* (रात्रि) तथा *'एन्थास'* (पुष्पन) से लिखा गया है जो इस ओर इंगित करता है कि इसके पुष्प रात में खिलते हैं। इसका प्रजातीय नाम (*आर्बोट्रिसटिस*) लैटिनभाषा के शब्द पर आधारित है जिसका अर्थ होता है 'धुंधले रंग का वृक्ष'।

धार्मिक दृष्टि से पवित्र माने जाने वाले इस पौधे के अनेक उपयोग हैं। इसकी पंखुड़ियों से चमेली जैसी सुगन्धवाला सुगन्धित तेल प्राप्त होता है। पंखुड़ियों से एक रंजक भी निकाला जाता है जो सूती तथा रेशमी कपड़ों को रंगने के काम में आता है। इस रंग का प्रयोग बौद्ध भिक्षुकों के 'परिधान' तथा देवी मां सरस्वती की पूजा के समय शिक्षार्थी कन्याओं द्वारा धारण किए जाने वाले वस्त्रों को रंगने में किया जाता है। इसकी छाल का उपयोग चर्मशोधक के रूप में किया जाता है।

सिउली की ख्याति भारत की मृदुरेचक, प्रस्वेदक तथा मूत्रवर्धक प्रमुख औषधीय पौधों के रुप में भी है। इसकी पत्तियों में तिक्तसार रसायन पाये जाते हैं। इसका उपयोग बुखार एवं गठिया रोगों में तथा बच्चों के पेट से सूत्र कृमि निकालने में किया जाता है। इसकी छाल कफ निस्सारक होती है तथा बीजों का प्रयोग रुसी के निवारण में होता है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में :

যখন শরৎ কাঁপে শিউলি ফুলের হরষে
নয়ন ভরে যে সেই গোপন গানের পরষে।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यखन शरत कांपे सिउलि फुलेर हरषे
नयन भरे ये सेइ गोपन गानेर परशे।

अर्थात ''जब शरत ऋतु कंपाती है, तो शिउली हर्ष से प्रफुल्लित हो उठती है। इसकी छटा देख कर मन आनन्द से विह्वल हो उठता है तथा खुशी से नयनों में नीर छलक आते हैं''।

पंजाब का राजकीय वृक्ष

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

शीशम वृक्ष को पंजाब राज्य का गौरव कहा जाता है तथा इसे पंजाब का राजकीय वृक्ष होने का सम्मान भी प्राप्त है। पंजाब में इसे 'ताली शिशई' तथा 'शीशम' के नाम से पुकारते हैं। शीशम के अनेक स्थानीय नाम हैं यथा संस्कृत में इसे *भस्म गर्भा, शींशपा, पिच्छला, कृष्णसारा* आदि नामों से जाना जाता है। तेलगु में इसको *इरूबुदु, शिशुपा* कन्नड़ में *बिरिडिह* बंगला में *शिशु गाछ,* मराठी में *शीशव* तथा गुजराती में *शिशम* का वृक्ष कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'इंडियन रोजवुड' कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम *डलबर्जिया शिशु* है यह पादप कुल 'फैबेसी' का सदस्य है। यह मूलत: भारतीय उपमहाद्वीप का वृक्ष है। प्राकृतिक रूप से यह मैदानी भाग से लेकर प्रमुखतया 900 मी. की ऊँचाई तक, नदी नालों के किनारे पर पाया जाता है। कभी कभी इसे 1300 मी. की ऊँचाई पर भी पाया गया है। यह 10 से 40 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले क्षेत्रों में सुगमता से उगने वाला वृक्ष है। यह देखा गया है कि शीशम लगभग 200 मि. मी. तक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र में उग सकता है तथा 3 से 4 माह तक सूखा भी झेल सकता है। यह वृक्ष बलुई दोमट तथा पथरीली एवं हल्के क्षारीय मिट्टी में भी उग सकता है। परन्तु इसकी पौध छाया सहन नहीं कर पाती है। शीशम का वृक्ष 15 से 25 मी. तक ऊँचा होता है। इसकी छाल मोटी भूरे रंग की तथा लम्बाई में विदीर्ण होती है। उसकी नई टहनियां कोमल और अवनत होती हैं। इसके चमकीले हरे पत्ते चौड़े लट्वाकार 2.5 - 8 से.मी. लम्बे तथा एकान्तर होते हैं। इसके पुष्प पीलापन लिए सफेद होते हैं तथा फली लम्बी, चपटी एवं 2-4 बीजों वाली होती है।

शीशम एक बहुपयोगी वृक्ष है। इसकी लकड़ी प्रमुखतया फर्नीचर तथा इमारती लकड़ी के रूप में उपयोग में लाई जाती है। इसकी लकड़ी भारी, मजबूत एवं गाढ़े भूरे रंग की होती है। इसके अंत:काष्ठ की तुलना में बाह: काष्ठ का रंग हल्का भूरा सफेद होता है। बाह:काष्ठ में काष्ठ नाशक कीड़ों का प्रकोप बड़ी तेजी से होता है। जबकि अंत:काष्ठ अपेक्षाकृत कीट प्रतिरोधक होता है। इसके अंत: काष्ठ की कीट प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए नीला थोथा जिंक क्लोराइड तथा अन्य आधुनिक कीट रक्षक रसायनों से लकड़ी को उपचारित किया जाता है। लगभग 15 वर्ष पुराने शीशाम के वृक्ष की तने की गोलाई 75 से. मी. तक होती है। जो समय के साथ साथ बढ़ती जाती है तथा 150 से. मी. तक हो जाती है। यूँ तो शीशम के स्वयंजात तथा लगाए हुए वृक्ष सम्पूर्ण भारत में मिलते हैं, परन्तु मैदानी भागों में इसकी प्रचुरता सड़कों के किनारे अधिक देखी जाती है।

शीशम की लकड़ी और बीजों से प्राप्त तेल अनेक औषधियों में उपयोग किया जाता है। इसकी फलियों में टैनिन होता है। शीशम पलाश, त्रिफला एवं चित्रक के साथ मेदानाशक व शुक्र दोष नाशक कहा जाता है। इसी प्रकार अर्जुन, ताड़, चन्दन आदि के साथ शीशम कुष्ठ रोग नाशक एवं प्रमेह तथा पीलिया रोगों में प्रभावी होता है। यह बलगम में लाभकारी और मेद शोधक है। यह कड़वा तीखा, सूजन निवारक, वीर्य में गर्मी पैदा करने वाला, गर्भपात कारक, कोढ़ व सफेद दाग ठीक करने वाला, वमन प्रतिरोधक, पेट में कीड़ों को नष्ट करने वाला, फोंडों फुंसियों से निदान देने वाला, हिचकी तथा विसर्प को नष्ट करने वाला है। शीशम को आयुर्वेद में मूत्र कच्छ, विषुचक, स्तनों के सूजद पेट में जलन, आंखों में दर्द, जोड़ों में दर्द, ज्वर, रक्त विकार, कुष्ठ रोग, चर्म रोग, रक्त प्रदर, कफ, खूनी पेचिश, कष्टप्रद मासिक धर्म, वीर्य रोग, नाड़ी के दर्द, प्रदर रोग तथा घावों को ठीक करने में प्रभावकारी माना जाता है।

इस महत्वपूर्ण वृक्ष की एक प्रमुख बीमारी है ''विल्ट राट'' जो '' *फ्यूजेरियम सोलेनाइ*'' नामक फंफूद से होता है। यह रोग मुख्यतया वहां फैलता है जहां पेड़ों के आस पास काफी दिनों तक जल भरा रहता है। इस बीमारी के फल स्वरूप वृक्ष धीरे धीरे सूख जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार जिस मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक हो तथा यूरिया एवं अन्य रासायनिक खादों की प्रचुरता हो वहां नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के कारण इस फंफूद का प्रसार बड़ी तेजी से होता है।

शैवाल से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

शैवाल प्रकृति के प्राचीनतम सुन्दर, आकर्षक व अत्यन्त उपयोगी जीव हैं जो संपूर्ण पृथ्वी पर लगभग सभी स्थानों जैसे समुद्री जल, स्वच्छ जल (नदी, तालाब, झील, पोखरे, झरने, जालशयों, इत्यादि), भूमि, भवन, दीवारों, जन्तुओं एवं पौधों की वाह्य सतह पर, कोशिकाओं के मध्य एवं कोशिकाओं के अन्दर पाये जाते हैं एवं इस पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र का मूल आधार हैं क्योंकि खाद्य एवं ऑक्सीजन शृंखला का अधिकांश भाग शैवालों पर निर्भर है। शैवाल में अत्यधिक रचनात्मक एवं गुणात्मक विविधता पायी जाती है। इन्हीं विविधताओं के कारण प्रकृति में इनके विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। इनके गुणों एवं उपयोगिता के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नवत हैं-

प्रकृति में :

- एक बार केरल में लाल वर्षा *ट्रेंटीफोलिया* (चित्र 1) नामक हरी शैवाल के कारण हुई जो कि गहरे नारंगी सी प्रतीत होती है और मुख्यत: पौधों के तने पर पायी जाती है (चित्र 2)।
- प्रकृति में लाल रस्ट *सिफेल्यूरोस* (चित्र 3) नामक हरी शैवाल है जो हमारे लिये उपयोगी कई पौधों जैसे चाय, कॉफी, आम, अमरूद, इत्यादि पर परजीवी के रूप में पायी जाती है।
- लाल हिम का रंग तरबूज के समान लाल व सुगन्ध तरबूज के समान ही होती है। इसका निर्माण *क्लेमाइडोमोनस निवेलिस* (चित्र 4) नामक हरी शैवाल के कारण होता है।
- झीलों, तालाबों, मत्स्यपालन तालाबों एवं धान के खेतों में *हाइड्रोडिक्टियोन* (चित्र 5) नामक शैवाल पायी जाती है जो जल में खोखले जाल सदृश्य थैलों (सैक्स) का निर्माण करती है। इन्हें वाटर-नेट या जल-जाल भी कहा जाता है।
- छिछले समुद्रों में जल के अंदर जंगल जैसी सघनता वाली वनस्पतियों का निर्माण एक भूरी शैवाल *केल्प के* कारण होता है।
- लाल ज्वार (चित्र 7) एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसका निर्माण हानिकारक शैवाल जैसे *कारेनिआ ब्रेविस* (चित्र 6) के प्रस्फुटन के कारण होता है। इसमें ज्वार शब्द का सम्बन्ध ज्वार भाटा से नहीं है वरण समुद्र के किनारे के क्षेत्रों में फैली ये हानिकारक शैवाल समुद्र की प्राकृतिक लहरों के साथ ज्वार जैसी अनुभूति कराते हैं।
- समुद्र के कुछ क्षेत्रों में डाइनोफ्लेजिलेट की एक जाति *नॉक्टील्यूका सिन्टीलेन्स* (चित्र 8) के कारण समुद्र में चमकदार प्रकाश का आभास होता है जैसे *नॉक्टील्यूका सिन्टीलेन्स* की जैव प्रकाश प्रदीप्तिता के कारण जब भी कभी इस जाति के जीवों के समूह को विचलित किया जाता है तो अचानक चमक कर प्रकाश उत्पन्न करते हैं जिसे सामान्यत: ''समुद्र की आग'' या ''समुद्री बेताल'' का नाम दिया गया है।
- *हिमेटोडीनियम पेरेजी* डाइनोफ्लेजिलेट शैवाल की एक ऐसी जाति है जो नीले केकड़ों को संक्रमित करती है जिसके कारण इन केकड़ों का स्वाद कड़ुआ एवं कसैला हो जाता है परिणाम स्वरूप खाने योग्य केकड़ों के उद्योग को काफी क्षति पहुँचती है।
- शैवाक (लाइकेन) ऐसे सहजीवी जीव हैं जिसका निर्माण एक सहजीवी कवक और उसके प्रकाश संश्लेषी सहयोगी हरे शैवाल (समान्यत: *ट्रेबोक्सिया* चित्र 9) या नील-हरित शैवाल (समान्यत: *नॉस्टाक* चित्र 10) के कारण होता है।
- प्रवाल या मूंगे की चट्टाने *जूजेन्थिली* समुदाय की *सिम्बायोडीनियम* (चित्र 11) नामक जाति जो मूंगे की चट्टानों के जीव के अन्दर कोशिकाओं में अन्त: सहजीवी के रूप में पायी जाती है। देखा गया है कि इन अन्त: सहजीवी जूजेन्थिली के नष्ट होने पर प्रवाल या मूंगे की चट्टाने भी नष्ट हो जाती हैं।
- हरी शैवाल की कुछ जातियां स्पंजों की सतह पर चारों ओर पायी जाती हैं जहां एक ओर ये भक्षक से स्पंज की रक्षा करती हैं वहीं दूसरी ओर स्पंज को ऑक्सीजन एवं शर्करा भी उपलब्ध कराती हैं और 50 से 80 प्रतिशत स्पंज की वृद्धि में सहायक होती हैं।

  अतिसूक्ष्म शैवालों की जातियां जल की सतह पर एक पतली चादर के रूप में तैरती रहती हैं जिन्हें पादप प्लवक कहते है ये स्वच्छ एवं समुद्री जल के पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक-उपभोक्ता शृंखला के प्राथमिक चरण का निर्माण करते हैं।

- *ऊफिला अम्बलीस्टोमेटिस* (चित्र 14) एक हरित शैवाल है। यह चित्तीदार सेलामेन्डर के अण्डों पर उगती है और अण्डों से उत्पन्न होने वाली अमोनिया एवं कार्बनडाईऑक्साइड को अवशोषित कर उन्हें ऑक्सीजन उपलब्ध कराती है। यह सहजीविता का बहुत सुन्दर उदाहरण है।

वातावरण उपयोगी :

- बहुत सी शैवालों जैसे *बोट्रयोकॉक्स ब्राउनी* (चित्र 18), *क्लोरेला* (चित्र 15) तथा *डुनालिएला टेर्टीओलेक्टा* (चित्र 16) नामक हरे शैवाल; *ग्रेसिलेरिआ* तथा *प्लूरोक्राइसिस कार्टेरेइ* (चित्र 17) नामक लाल शैवाल; *सारगासम* नामक भूरे शैवाल एवं सायनोजीवाणु (नील-हरित शैवाल) का प्रायोग जैव ईंधन निर्माण के लिये किया जा रहा है।
- पृथ्वी ऊष्मायन कार्बनडाईऑक्साइड की बढ़ती अधिकता के कारण एक जटिल समस्या है। शैवालों के द्वारा कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा को स्थिर किया जा सकता है। शैवाल जहाँ एक ओर वातावरण की कार्बनडाईऑक्साइड को अवशोषित करेंगे वहीं दूसरी और जल में अपशिष्ट पदार्थो को अपघटित करके जल के प्रदूषण को घटायेंगे। शैवालों का उपयोग यूरेनियम एवं प्लूटोनियों संवर्धी संयंत्रों में शुद्धीकरण के लिये अध्ययन किया जा रहा है।
- ऐसा विश्वास किया जाता है कि भविष्य में शैवालों द्वारा उत्पन्न जैव ईंधन हमारे अधिकांश मोटर वाहनों में ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकेगा।
- शैवाल के द्वारा प्रकाश ऊर्जा की सहायता से ब्यूटेनॉल का निमाण किया जा सकता है जिसका उपयोग गैसोलीन के रूप में किया जा सकेगा जिसे हम रसोई गैस तथा गैस चालित वाहनों में प्रयोग कर सकेंगे।
- न्यूजीलैंड की एक्वाफ्लो बायोनोमिक कार्पोरेशन, ने अपशिष्ट पदार्थों के तालाब (सीवेज पोन्ड) में उत्पन्न शैवालों से जैव ईंधन का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है।

तैरने वाले तालाबों में :

- शैवाल के बीजाणु वायु अथवा जल से प्रकीर्णित होकर फैल जाते हैं। अत: हमारे तैरने वाले जलाशयों में ये आसानी से पहुँच जाते हैं। इसी कारण लगभग सभी जलाशयों में यह पाये जाते हैं। लगभग 67 प्रतिशत जलाशयों में वर्ग जेन्थोफाइसी की *प्ल्यूरोक्लोरिस पाइरीनॉयडोसा* नामक शैवाल पायी जाती है। यह शैवाल जलाशय की दीवारों पर सरसों जैसी पीले रंग की पत्ते के रूप में जमी हुयी पायी जाती है।
- तैरने वाले जलाशयों में अनेक प्रकार की नील-हरित शैवाल जैसे *कैलोथ्रिक्स ब्राउनी, कैलोथ्रिक्स ऐलेनकिनी, लिन्बिया* (चित्र 22), *नॉस्टाक पंक्टीफोर्मी* (चित्र 19), *ओसिलेटोरिआ* (चित्र 20), *ओसिलेटोरिआ फ्रेमाई, फोर्मिडियम एम्बीगम* (चित्र 21), *फोर्मिडियम एन्गुस्टीसिमम, फोर्मीडियम फोविओलेरम, फोर्मीडियम माइनेसोटेंस, प्लेक्टोनीमा नोटेटम, प्लयूरोकेप्सा,* आदि पायी जाती हैं।
- नील-हरित शैवाल एक काले रंग की काई के पर्त के रूप में जलाशय की दीवारों से चिपकी हुई पायी जाती है।
- हरी शैवाल तैरने वाले जलाशयों में केवल 5 प्रतिशत ही पायी जाती है जो स्वतंत्र प्लावी होते हैं जैसे *क्लेमाइडोमोनस ग्लोबोसा* (चित्र 12), *डायोजेन्स बेसीलेरिस, ऊसिस्टिस,* ग्लोइयोसिस्टीफोर्मिस, *ऊसिस्टिस पुसिला* एवं *रोया ओब्ट्यूसा*।
- डायटम- *निस्चिया* (चित्र 13) भी जलाशय की दीवार से चिपके पाये गये।
  कुछ जलाशयों में गुलाबी रंग की शैवाल जैसा कुछ मिला जो वास्तव में मिथाईलो-बैक्टीरियम था।
- जलाशयों को शैवाल मुक्त करने के लिये शैवाल रोधी रसायनों जैसे ट्राईक्लोरो आइसोसायनोरिक अम्ल, एल्गीडीन, एल्काइल डाईमिथाइल बेन्जाइल अमोनियम क्लोराइड, ट्राइइथेनॉलामीन एवं धनात्मक आवेश वाले बहुलीकृत रसायनों का प्रयोग किया जाता है।

मछली घरों में :

- मछली घर (एक्वेरियम) चाहे छोटे हो या बड़े सभी में शैवाल प्रचुरता से वृद्धि करते हैं। जल में उपस्थित खनिज लवण, मछलियों को दिया गया भोजन, उनमें नाइट्रोजन युक्त उपापचयी पदार्थों का मछली घर के जल में घुल जाना शैवालों की वृद्धि के लिये अनुकूल वातावरण बनाते हैं।
- बजरी (छोटे पत्थर) अथवा सिलिका शैवाल एक प्रकार के डायटम हैं जो विशेष रूप से नये मछली घरों में वृद्धि करते हैं। इसे आसानी से साफ किया जा सकता है।

- मछली घरों में नील-हरित शैवाल भी आसानी से वृद्धि करते हैं। ये सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में एक चिपचिपी, चिकनी नील-हरित पर्त्त के रूप में मछली घर की दीवारों एवं जल में डूबी अन्य सतहों पर तीव्रता से वृद्धि करते हैं।
- यदि मछली घर में नील-हरित शैवाल बहुत अधिक मात्रा में वृद्धि करे तो मछलियों की मृत्यु भी हो सकती है अत: यदि नील-हरित शैवाल मछली घर के लिये समस्या बन गयी हो तो मछली घर में उपचार करके फास्फेट रहित जल प्रयोग करना चाहिये।
- ''हरित बिन्दु शैवाल'' सीमित स्थान पर मछली घर में उगने वाली हरी शैवाल के लिये उपयोगी होती हैं। यदि अधिक मात्रा में उग आये तो हाथ से निकाल कर साफ की जा सकती है।
- *कीटोमोर्फा* नामक हरे शैवाल का उपयोग खारे जल वाले मछली घरों में जल से नाइट्रेट को हटाने के लिये किया जाता है जो मछली के लिये हानिकारक है।
- रामशोर्न नामक धोंधे (स्नेल्स) को मछली घरों में डाला जाता है क्योंकि ये शैवाल, मछली का अतिरिक्त चारा व मरी हुयी मछलियों को खा डालते हैं परन्तु इनकी प्रजनन दर बहुत तीव्र होती है अत: शीघ्र ही इनकी संख्या मछली घर के लिये समस्या बन जाती है तब इनको निकालना पड़ता है।
- शशक मछली समुद्री अर्चिन खारे जल वाले मछली घरों में हरे शैवाल, नील-हरित शैवाल एवं डायटम को खा कर मछली घर की सफाई करती हैं।
- एप्पल स्नेल एम्पूलारिडी स्वच्छ जल के मछली घरों में सफाई करती हैं।

भोजन में :

- मणिपुर में *लेमानिया फ्लूविएटिलिस* नामक लाल शैवाल का उपयोग खाने के लिए किया जाता है तथा सब्जियों में मिलाकर इसे पकाया जाता है। इसकी विशिष्टता मछली जैसी गंध के कारण है। इसे यहां की एक स्थानीय विशिष्ट भोज्य सामग्री 'सिंगजू' बनाने में किया जाता है।
- आंध्रप्रदेश के उत्तरी समुद्र तटीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले शैवाल *ऐन्टेरोमोर्फा कम्प्रेसा* का उपयोग प्रचुर मात्रा में पोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण भोग्य सामग्री के रूप में किया जाता है।
- *क्लेडोफोरा* (चित्र 23) नामक हरी शैवाल को लाओस में एक विशिष्ट भोज्य पदार्थ के रूप में खाया जाता है।
  अल्वा लेक्टुका (चित्र 24) नामक हरी शैवाल को स्काटलैंड, जापान एवं कोरिया में खाया जाता है। इसे ''समुद्री काहू'' तथा कभी-कभी ''हरा लेवर'' के नाम से भी जाना जाता है।
- *क्लोरेला* नामक हरी शैवाल का उपयोग परम्परागत चीनी औषधि एवं उच्च भोजन के रूप में किया जाता है।
- कुछ अति सूक्ष्म शैवालों के द्वारा उत्पन्न विष के कारण खाने, योग्य मोलस्कन्स जैसे सीप घोंघे की जातियां संक्रमित हो जाती हैं और इन्हें खाने से मनुष्यों में पैरालिटिक शेलफिश प्वायजनिंग (पी. एस. पी.) हो जाती है। परन्तु इसका कारण अति सूक्ष्म शैवाल जैसे *एलेक्सेंड्रियम* (चित्र 25) द्वारा उत्पन्न विष है। इस विषैले शैवाल को जब समुद्री जीव खाते हैं तो विष उनके शरीर में संग्रहित हो जाता है और जब मनुष्य इन समुद्री मोलस्कन्स को खाते हैं तो विष मनुष्यों के शरीर में जा कर लकवा जैसे लक्षण उत्पन्न करता है।
- फिलीपीन्स एवं इन्डोनेशिया में *कोलर्पा लेंटीलिफेरा* (चित्र 27) नामक हरी शैवाल जो मुलायम रसीले अंगूर की भांति होती है इसे ''समुद्री अंगूर'' भी कहा जाता है। इसका उपयोग विशिष्ट भोज्य पदार्थ के रूप में किया जाता है।
- *ग्रेसिलेरिया* (चित्र 26) नामक लाल शैवाल जापान एवं फिलीपीन्स में खायी जाती है। जापान में इसे 'ओगेनोरी' तथा फिलीपीन्स में ''गुरामान'' कहते हैं।
- *पामेरिआ पालमेटा* (चित्र 29) एक लाल शैवाल है जिसका प्रयोग जलपान (नाश्ते) में किया जाता है। आइसलैंड में इसे ''सोल'' कहते हैं।
- *पोरफायरा* (चित्र 28) एक लाल शैवाल है जो जापान मे खायी जाती है।
- अगर - अगर नामक चिपचिपा पदार्थ, जो लाल शैवाल *जेलीडियम अमानसाय* (चित्र 30) से प्राप्त होता हैं अत्यधिक जल अवशोषण क्षमता होती है। इसे खाने पर यह फूल कर पेट के भरे होने जैसी अनुभूति कराता है।
- कारागीनान्स जो लाल शैवाल *कोंड्रस क्रिसपस* (चित्र 31) से प्राप्त होते हैं। ये जल अपने आप में अवशोषित कर एक सघन तरल का निर्माण करते हैं जिसका उपयोग दूध, दूध से बनने वाले पदार्थो, मिठाइयों, आइसक्रीम, इत्यादि बनाने में किया जाता है।

- लाल शैवाल *कोंड्रस क्रिसपस* (चित्र 31) एवं *मेस्ट्रोकार्पस स्टीलेटस* (चित्र 32) का उपयोग आईरिश मोस नामक भोज्य पदार्थ बनाने में किया जाता है। स्कॉटलैंड तथा इरीलैंड में इसका उपयोग बियर बनाने में और सर्दी जुकाम का काढ़ा बनाने के लिये किया जाता है।
- *कैलोफाइलिस वैरीगाटा* (चित्र 34) नामक लाल शैवाल का उपयोग दक्षिणी अमेरिका में खाने के लिये किया जाता है।
- *ऐसेनिया बाइसायकिलिस* नामक भूरी शैवाल का उपयोग जापान में सब्जी बनाने एवं विशेष व्यंजन में किया जाता है।
- सोडियम एल्जीनेट्स, अधिकतर भूरी शैवाल केल्प से प्राप्त किया जाता है जिससे तापसह जेल बनाई जाती है। इसका प्रयोग सलाद, आइसक्रीम, पुड़िग, इत्यादि को सजाने में और विभिन्न प्रकार के सीरप बनाने में किया जाता है।
- भूरी शैवाल *सेकेराइना जेपोनिका* (चित्र 33) जिसे ''कौम्बू'' नाम से जापान में और ''दशीमा'' नाम से कोरिया एवं चीन में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग सब्जी के रूप में, सलाद को सजाने के लिये और खाद्य -पदार्थो को लपेटने के लिये किया जाता है।
- *अलारिआ एसकुलेंटा* (चित्र 35) नामक शैवाल, जिसे सामान्यत: डाबर लॉक्स या बार्डर लॉक्स कहा जाता है, का प्रयोग ग्रीनलैंड, आइसलैंड, आयरलैंड एवं स्कॉटलैंड में खाने के लिये किया जाता है।
- *पलूकस वैसीकुलोसस* (चित्र 36 ब्लैडर व्रेक) नामक भूरी शैवाल का उपयोग भोज्य पदार्थों को सजाने और उनमें रंग और सुगंध उत्पन्न करने के लिये किया जाता है।
- *टुर्विलाइ अंटार्टिका* (चित्र 37) या कोचायूयो नामक भूरी शैवाल का उपयोग अनेक प्रकार की भोज्य सामग्रियों एवं व्यंजन बनाने तथा सलाद, इत्यादि में भी किया जाता है।
- जापान का एक पारम्परिक भोज्य-पदार्थ, जिसमें रेशे तथा खनिज लवण जैसे कैलशियम, लोहा, मैग्नीशियम, इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, का निर्माण भूरी शैवाल *सारगासम फ्यूसीफार्मी* (चित्र 41) जिसे हिजिकी भी कहा जाता है। इसका उपयोग उत्तरी अमेरिका और संयुक्त राज्य में भी होता है। कुछ नवीन अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि इसमें अकार्बनिक आरसेनिक प्रभावी विषाक्तता की सीमा तक पाया जाता है।
- सूक्ष्म शैवाल जैसे *हिमेटोकोकस प्लूविएलिस* (चित्र 38) से प्राप्त एस्टाजेन्थिन से लाल रंग प्राप्त होता है जिसका उपयोग भोजन में रंग उत्पन्न करने के लिये किया जाता है।

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा में :

- लाल शैवाल *कोरालिना ऑफीसिनेलिस* (चित्र 42) को हड्डी प्रत्यारोपण उपचार में प्रभावी पाया गया है।
- नील-हरित शैवाल *स्पाईरूलिना* का उपयोग एक प्रभावी औषधीय भोजन के विकल्प के रूप में किया जाता है। इसका प्रयोग कोलेस्ट्रॉल को कम करने, कम रक्तदाब में तथा प्रति ऑक्सीजनक के रूप में किया जाता है।
- भूरे शैवाल से प्राप्त ऐल्जीनेट का प्रयोग दंत-चिकित्सक दांतो और जबड़ों की छाप बनाने के लिये करते हैं। इसका उपयोग सोडियम ऐल्जीनेट के रूप में जो गोंद के समान होता है रेडियोधर्मी विषों से ग्रस्त रोगियों में रेडियोधर्मी पदार्थ को शरीर से बाहर निकालने के लिये किया जाता है।
- सन् 2010 में न्यूकास्टल विश्वविद्यालय के शोध अध्ययनों में पाया गया कि ऐल्जीनेट वसा के अवशोषण को कम करके शरीर में वसा संग्रह घटा के छरहरा बने रहने में सहायक होते हैं अर्थात् मोटापन रोकते हैं।
- व्यवसायिक रूप से एल्जीनेट विशाल केल्प *मेक्रोसिस्टिस पाईरीफेरा* (चित्र 43), *एस्कोफिल्लम नोडोसम* (चित्र 44) एवं विभिन्न जाति के लेमिनोरिआ से प्राप्त किया जाता है।
- बीन्स में पायी जाने वाली शर्करा आसानी से नहीं पचती है परिणाम स्वरूप अधिकांश लोगों में बीन्स को खाने के बाद पेट का फूलना और गैस की समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। बीन्स पकाते समय उसमें सेकेराइना जेपेनिका (चित्र 33) कौम्बू मिला देने से यह शर्करा विघटित हो जाती है और गैस की समस्या (वायु-विकार) उत्पन्न नहीं होती।
- भूरी शैवाल *एक्लोनिया कावा* (चित्र 40) से प्राप्त वेन्टॉल, जिसमें फ्लोरोटेनिन नामक रसायन प्रचुर मात्रा में मिलता है, जिसका उपयोग प्रति ऑक्सीजनक एवं प्रतिप्रदाह औषधि के रूप में किया जाता है।
- फ्यूकोइडान नामक सल्फर युक्त बहुशर्करा भूरे शैवाल की विभिन्न जातियों में पायी जाती है जिसका उपयोग भोजन के विकल्प मे रूप में किया जाता है एवं ऐसा माना जाता है कि इससे कैंसर का उपचार भी होता है।

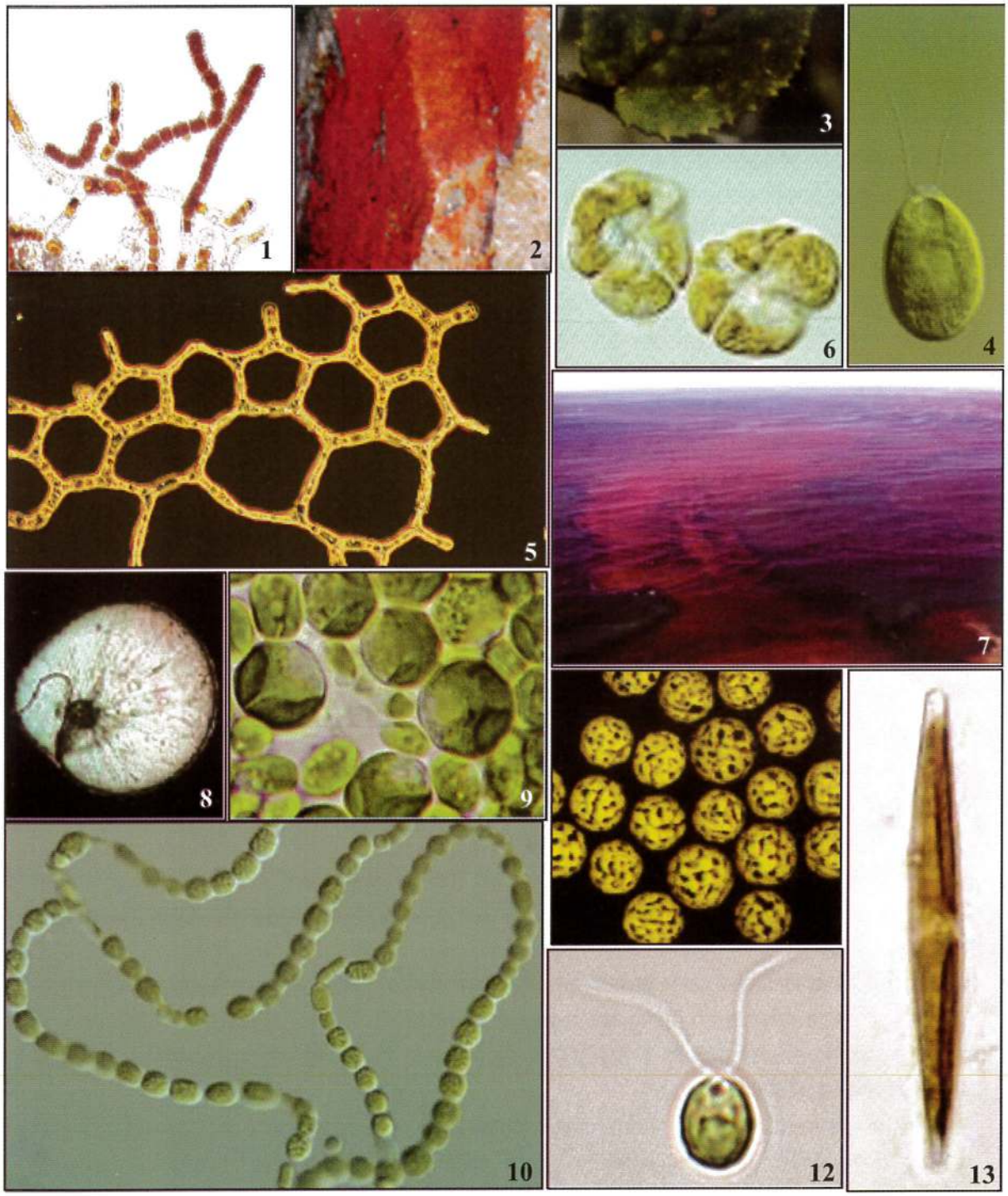

1. *ट्रेंटीफोलिया* 2. *पौधे के तने पर ट्रेंटीफोलिया* 3. *सिफेल्यूरोस* 4. *क्लेमाइडोमोनस निवेलिस* 5. *हाइड्रोडिक्टियोन* 6. *कारेनिआ ब्रेविस* 7. *कारेनिआ ब्रेविस के कारण लाल ज्वार* 8. *नॉक्टील्यूका सिन्टीलेन्स* 9. *ट्रेबोक्सिया* 10. *नॉस्टाक* 11. *सिम्बायोडीनियम* 12. *क्लेमाइडोमोनस ग्लोबोसा* एवं 13. *निस्चिया*

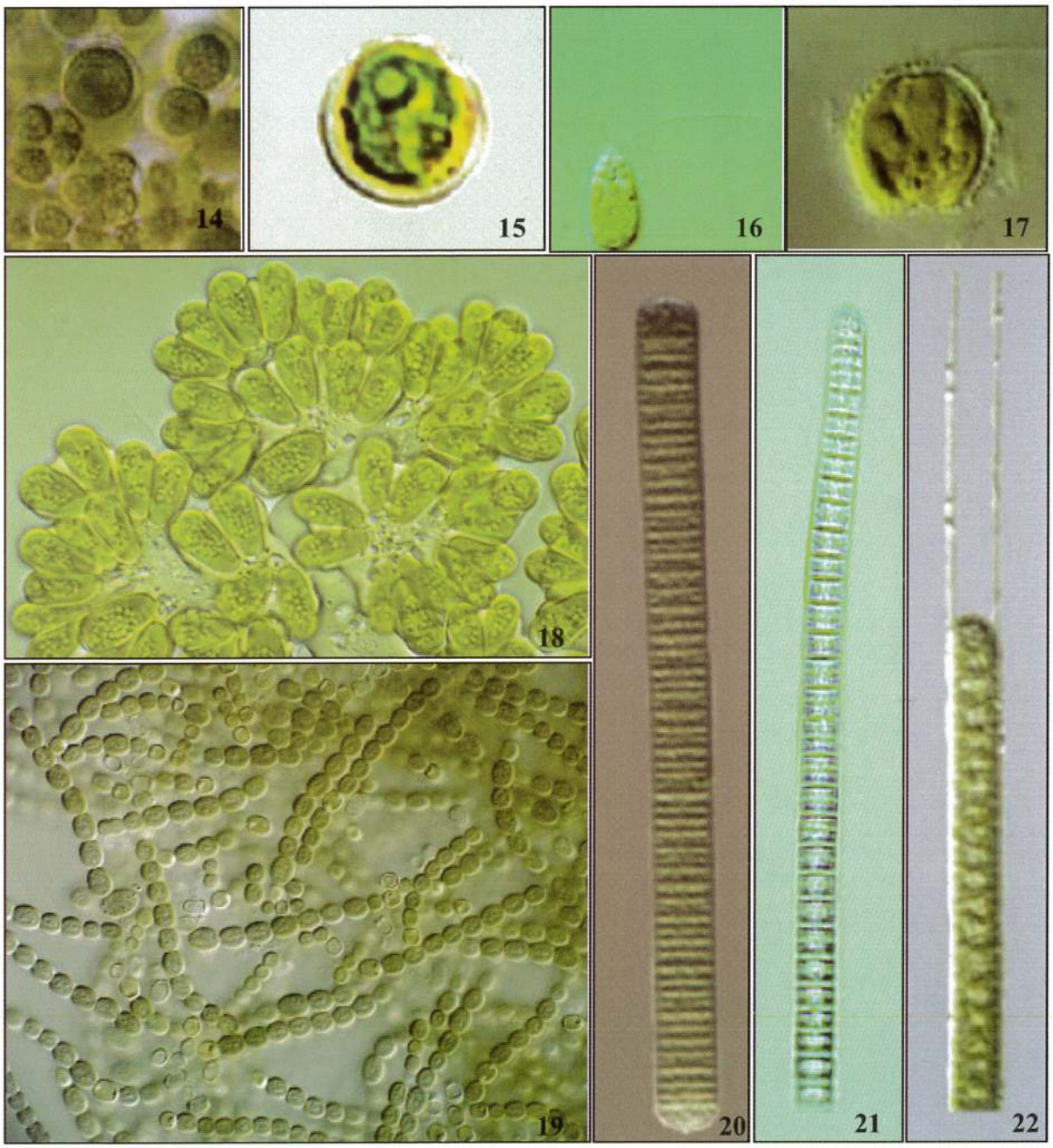

14. *ऊफिला अम्बलीस्टोमेटिस* 15. *क्लोरेला* 16. *डुनालिएला टेर्टीओलेक्टा* 17. *प्लूरोक्राइसिस कार्टेरेइ* 18. *बोट्रयोकॉकस ब्राउनी* 19. *नॉस्टाक पंक्टीफोर्मी* 20. *ओसिलेटोरिआ* 21. *फोर्मीडियम एम्बीगम* एवं 22. *लिन्बिया*

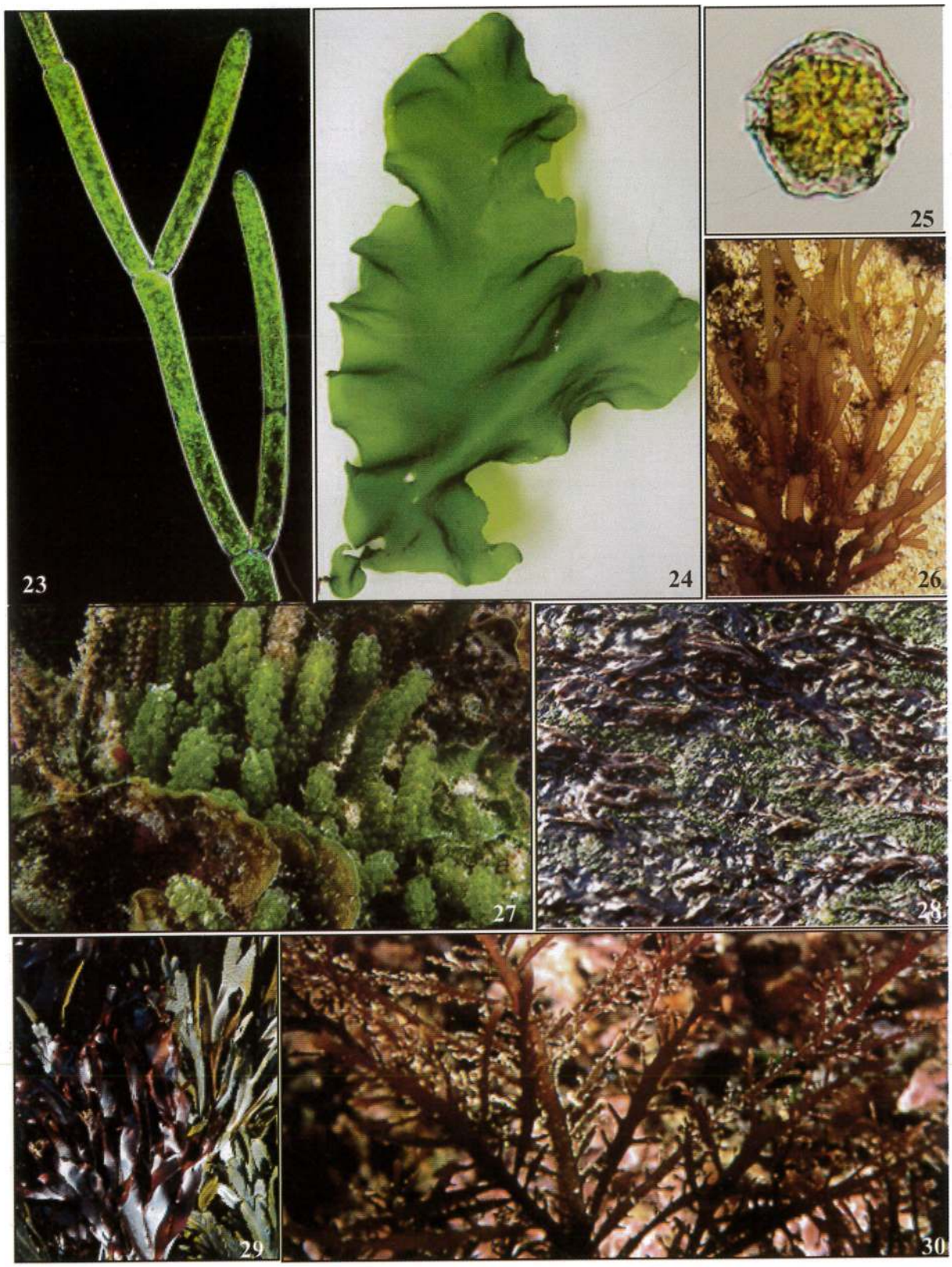

23. *क्लेडोफोरा* 24. *अल्वा लेक्टुका* 25. *एलेक्सेंड्रियम* 26. *ग्रेसिलेरिआ* 27. *कोलर्पा लेंटीलिफेरा* 28. *पोरफायरा* 29. *पामेरिआ पालमाटा* 30. *जेलीडियम अमानसायी*

31. *कोंड्रस क्रिसपस* 32. *मस्ट्रोकार्पस स्टीलेटस* 33. *सेकेराइना जेपोनिका*
34. *कैलोफाइलिस वैरीगाटा* 35. *अलारिआ एसकुलेंटा* एवं 36. *फ्यूकस वेसीकुलोसस*

37. *दुर्विलाई अंटार्टिका* 38. *हिमटोकोकस प्लूविएलिस* 39. *डयूनालिएला सेलिना* 40. *एक्लोनिआ कावा* 41. *सारगासम फ्यूसीफोर्मी* 42. *कोरालिना ऑफीसिनेलिस* 43. *मैक्रोसिस्टिस पाईरीफेरा* 44. *एस्कोफिल्लम नोडोसम*

- *लेमानिया फ्लूविएटिलिस* नामक लाल शैवाल को उबालकर इसके सत् का उपयोग गर्भपात के लिये किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग मूत्र विकार, वृक्क की पथरी व मधुमेह के उपचार के लिये भी किया जाता है।
- *ऐन्टेरोमोर्फा कम्प्रेसा* नामक हरी शैवाल में अत्यधिक प्रति-प्रत्यूर्जता प्रभाव पाया गया। ओवएलब्यूमिन तथा अन्य प्रत्यूर्जता के विरूद्ध रक्त में आई जी ई के स्तर को बढ़ा कर प्रत्यूर्जता को कम करता है।
- हरी शैवाल *डयूनालियेला सेलिना* (चित्र 39) को इसमें उपस्थित कैरोटिनायड के कारण बहुत अच्छा प्रति ऑक्सीजनक माना जाता है साथ ही भोजन विकल्प के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।
- आजकल हरी शैवाल *क्लेमाइडोमोनस रेनहार्डिटी* से मलेरिया के टीके का विकास करने का प्रयास किया जा रहा है।
- *सिट्रारेरिया आइसलेन्डिका* नामक शैवाक में उपस्थित हरी शैवाल के कारण इसे सभी प्रकार के वक्ष रोगों के उपचार में प्रभावी पाया गया है।
- *अम्बिलीकेरिआ ऐस्कुलेन्टा* नामक शैवाक में उपस्थित शैवाल द्वारा बनी बहुशर्करा एड्स विषाणु के द्विगुणन को कम करता है।

अन्य उपयोग :

- *लेमानिया फ्लूविएटिलिस* नामक लाल शैवाल मणिपुर क्षकपी व मणिपुर के छिछले तलों पर लम्बे धागो के रूप में आधार में लगी पायी जाती है। वहाँ की मेइतेइ, कुकी तथा कुकी चिन-मिजो जन-जाति की महिलाओं द्वारा इस शैवाल का व्यवसायिक उत्पादन किया जाता है। इस शैवाल को धूप में सुखाकर कागज में लपेटकर छोटे-छोटे बंडलों के रूप में स्थानीय बाजारों में बेचा जाता है। इससे वहाँ की स्थानीय महिलायें रू. 3,000 से 10.000 तक कमा लेती हैं।
- लाल शैवाल जैसे *ग्रेसिलेरिआ लाइकेनॉयडेस* से अगर-अगर नामक पदार्थ प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग जेम, जेली बनाने में, जीवाणु, विषाणु व कवक से सम्बन्धित प्रयोगों में संवर्धन के लिये किया जाता है।
- समुद्री शैवाल केल्प को जलाकर सोडा ऐश प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग कांच व साबुन उद्योग में किया जाता है।
- *ऐस्कोफिल्लम नोडोसम* (चित्र 44) नामक भूरी शैवाल का उपयोग खाद, जानवरों के चारे और समुद्री जीवों जिनका प्रयोग खाने के लिये किया जाता है को पैक करने के लिये किया जाता है।
- भूरी शैवाल *ऐस्कोफिल्लम* का उपयोग सोडियम एल्जीनेट नामक रसायन प्राप्त करने के लिये किया जाता है जो एक गोंद जैसा पदार्थ है। इसका उपयोग वस्त्रों की छपाई में किया जाता है।

शैवाल के ज्वर एवं पीड़ा नाशी प्रभाव

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

ज्वर एवं पीड़ा ये ऐसी व्याधियाँ हैं जो प्राचीन काल से ही मनुष्य व अन्य समतापी जीवों से जुड़ी रही हैं। मनुष्य के विकास के समय जब आज की आधुनिक चिकित्सा पद्धतियाँ उपलब्ध नहीं थी, तब मनुष्य अपने आस-पास उपलब्ध वनस्पतियों का प्रयोग इन व्याधियों के उपचार के लिये करता था। कालान्तर में इसे आयुर्वेद का नाम दिया गया।

आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा विज्ञान की अति प्राचीन विधा है, आसव, आरिष्ट, भस्म, वटी, लेप, रस, जोंक, अस्त्र-शस्त्र, शल्य उपकरण, रेशों धागों, पट्टी, पुट्टिका, अग्नि, जल, मृदा, पत्थर यहां तक कि ज्योतिष विज्ञान का भी उपयोग रोगियों के उपचार के लिये किया जाता था परन्तु मूल रूप से सम्पूर्ण चिकित्सा व्यवस्था वनस्पतियों पर आधारित थी।

ज्वर समतापी जीवों के शरीर द्वारा दर्शायी गयी प्रतिरक्षी प्रतिक्रिया है जो सामान्यत: संक्रमण की स्थिति में रोग से प्राकृतिक सुरक्षा देती है। क्योंकि जो भी संक्रमण हमारे शरीर को संक्रमित करता है वह शरीर के सामान्य ताप के लिये अनकूलित होता है और उस तापमान पर सामान्य रूप से वृद्धि कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में हमारा शरीर प्रतिरक्षी क्रिया के रूप में शरीर के ताप को ज्वर द्वारा बढ़ा देता है जिसके फलस्वरूप संक्रमण के जीवों की वृद्धि सामान्य रूप से नहीं हो पाती और वे धीरे धीरे नष्ट होने लगते हैं। जंगल के जीवों में भी संक्रमण होता है और वे किसी चिकित्सक के पास अपना उपचार कराने नहीं जाते, वरन ज्वर द्वारा ही उनका शरीर संक्रमण और पीड़ा से मुक्ति पा लेता हैं। ज्वर आने की क्रिया संक्रमित जीव या क्षतिग्रस्त कोशिकाओं व ऊतकों द्वारा उत्पन्न ज्वरोत्पादक कारक प्रोटीन (पायरोजेनिक फेक्टर प्रोटीन) अग्र मस्तिष्क के प्रतिपृष्ठ तल पर स्थित ताप नियन्त्रण केन्द्र को विचलित कर शरीर की सामान्य ताप नियन्त्रण प्रणाली को उत्तेजित कर शरीर का ताप बढ़ा देता हैं परिणाम स्वरूप ज्वर की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ज्वरोत्पादक कारक की मात्रा व सघनता पर ज्वर की तीव्रता निभर करती है। यूं तो ज्वर शरीर की उपयोगी प्रतिरक्षी प्रणाली का भाग है परन्तु अत्यधिक ज्वर होने पर मस्तिष्क सहित शरीर के अंगों को अपूर्णीय क्षति पहुंच सकती है इसी कारण ज्वर नाशक औषधियां उपयोग में लाई जाती हैं।

समुद्र तटीय क्षेत्रों, द्वीपों और समुद्र तटों के निकटवर्ती भू-भागों पर कुछ शैवालों का प्रयोग भी ज्वर नाशक के रूप में किया जाता रहा है। आज जब हमारा ज्ञान विज्ञान विकसित हुआ और जन संचार माध्यमों से सूचना के प्रेषण की गति बढ़ी तो शैवालों के ज्वर-नाशी प्राचीन ज्ञान पर विस्तृत अध्ययन और शोध हो रहे हैं और उनका गुणात्मक विश्लेषण किया जा रहा है। समुद्री जीवधारियों विशेष रूप से शैवालों में पाये जाने वाले प्राथमिक एवं द्वितीयक उपापचयी पदार्थों में प्रभावी रूप से जैव सक्रियता पायी जाती है जिसके कारण इसका प्रयोग भेषज उद्योग में किया जा रहा है। शैवालों में पाये जाने वाले जैव सक्रिय रसायनों में एड्स रोधी, कैंसर रोधी, संक्रमण रोधी, प्रदाह नाशक, पीड़ा नाशक व ज्वर नाशक गुण पाये जाते हैं। सारगेसेसी कुल की भूरी शैवाल *टर्बीनेरिआ कोनोयडेस* में अनेक प्रकार के स्टेरोल्स पाये जाते हैं। इसी कुल के अन्य सदस्यों में फ्लोरा ग्लूसिनाल के बहुलीकरण से बने पॉलीफिनोलिक रसायनों की अत्याधिक मात्रा पायी जाती है जिससे प्रति जैविक, प्रति जीवाणु, गुण एवं कोशिकीय विष होते हैं जिसके कारण इन रसायनो का प्रयोग उपचार हेतु किया जाता है। इन शैवालों में पाये जाने वाले रसायनों को एन हेक्सेन, साइक्लो हेक्सेन, मिथाइल एल्कोहल अथवा इथाइल एल्कोहल एवं जल (1:1) की सहायता से निष्कर्षित करके इनके भेषजीय गुणों का अध्ययन किया गया। शैवालों के सत् पादपीय रसायन विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि इसमें स्टेरोल्स, क्लेवेनॉयड तथा उपापचयित करने वाली शर्करायें उपस्थित हैं इसके साइक्लोहेक्सेन वाले सत् में ज्वर नाशी गुण पाया गया जो पैरासिटामॉल के समकक्ष था। इन शैवालों में विषाक्तता बहुत सीमित व नगण्य होती है, अत: इसका उपयोग बच्चों, अधिक आयु के क्षीण वृद्ध लोगों व पैरासिटामॉल संवेदी लोगों के लिये सुरक्षित रूप से किया जा सकता है। बहुत से देशों में समुद्र के किनारे रहने वाले लोग एवं आदिवासी जन-जातियाँ इस भूरे शैवाल का उपयोग ज्वर के उपचार के लिये सदियों से करती रही हैं।

सारगासम फुलवेलम, जिसे कोरिया में *हिजो* भी कहा जाता है, का उपयोग शरीर पर पायी जाने वाली गाठों, सूजन, दर्द, पेट के कीड़ों एवं ज्वर नाशी के रूप में किया जाता है। इसके प्रति ऑक्सीकारक गुण के कारण इसका उपयोग कैंसर के उपचार में भी किया जाता है। इसमें प्रतिस्कंदक रसायन, फ्यूकोडेन पाया गया साथ ही इसमें कृमि नाशक, प्रतिआक्सीकारक, यकृत संरक्षी पीड़ा व ज्वर नाशी गुण भी पाये जाते हैं। इसके ज्वर नाशी गुण एस्परीन (एसिटाइल सेलिसिलिक अम्ल) तथा पैरासिटामॉल के समान हैं। इन्हीं औषधियों के समान

इस शैवाल में ज्वर एवं पीड़ा नाशक व प्रतिप्रदाह गुण पाये जाते हैं। *सारगासम फुलवेलम* तथा *सारगासम थुबर्गाई* में वसीय अम्लों से सम्बन्धित रसायन अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिनमें प्रचुर ज्वर एवं पीड़ा नाशी व प्रतिप्रदाह गुण होते हैं। अत: इन शैवालों से प्राप्त सत् का उपयोग सुरक्षित ज्वर नाशी के रूप में किया जाता है (अधिकांश ज्वर नाशक औषधियों व रसायनों में पीड़ा नाशी व प्रतिप्रदाह गुण भी होते हैं।

कोरिया के दक्षिण तटीय भागों के जेजू द्वीप के तटीय क्षेत्रों में *एक्लोनिआ कावा* नामक भूरी शैवाल पायी जाती है जिसका प्रयोग परम्परागत रूप से जठरान्त्र प्रदाह में किया जाता है। इस शैवाल में प्रति अर्बुद, प्रतिस्कंदक तथा प्रतिरक्षा प्रणाली को उत्तेजित करने वाले गुण पाये जाते हैं। इसमें पायी जाने वाली बहुशर्करा में कई औषधीय गुण पाये गये। डाइक्लोरोमीथेन, इथेनॉल एवं उबलते जल में प्राप्त किये गये इसके सत् में ज्वर नाशक गुण पाये गये। प्रयोगशाला के चूहों में *इ. कोलाई* के द्वारा उत्तेजित ज्वर के उपचार में यह सत् बहुत प्रभावी सिद्ध हुआ जो एस्परीन व पैरासिटामॉल के समतुल्य था, इस सत् में पीड़ा नाशी व प्रतिप्रदाह गुण भी थे।

इस प्रकार यदि देखा जाये तो शैवालों में बहुत से औषधीय गुण होते हैं इनका प्रयोग आधुनिक औषधियों की तुलना में सुरक्षित होता है। आधुनिक औषधियों में जहां उनके एक मूल औषधीय उपचार से सम्बन्धित गुण के साथ बहुत से द्वितीयक विषाक्त हानिकारक प्रभाव भी होते हैं वही शैवालों से प्राप्त औषधियों में हानिकारक प्रभाव नगण्य होते हैं उदाहरण के रूप में पैरासिटामॉल में ज्वर नाशी प्रभाव के साथ यकृत विष के रूप में उसका कुप्रभाव भी है। एस्परीन, आइब्यूजेसिक एसिड, डाइक्लोफीनेक, इत्यादि पीड़ा एवं ज्वर नाशी व प्रदाह नाशी के रूप में तो उपयोगी हैं परन्तु साथ-साथ ही आहार नाल को विशेष रूप से आमाशय की श्लेष्मा को गम्भीर क्षति पहुँचा कर अल्सर जैसे रोग उत्पन्न करने का कुप्रभाव रखती है। इसके सापेक्ष शैवालों तथा अन्य वनस्पतियों से प्राप्त रसायन व सत् सुरक्षित रूप में ज्वर एवं पीड़ा नाशक व प्रदाह नाशक औषधियों के रूप में प्रयोग किया जा सकते हैं। आज आवश्यकता है इस क्षेत्र में और शोध एवं अनुसंधान करने की।

ज्वर एवं पीड़ा नाशी शैवाल

1, 2 व 3. *टर्बीनेरिआ कोनोयडेस,* 4. *सारगासम फुलवेलम* 5. *एक्लोनिआ कावा* 6. *सारगासम थुन्बर्गाई*

हिमालय में विगलक कवकों की विविधता व संरक्षण

दीपा मिश्रा, जे. आर. शर्मा एवं बी. पी. उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

हिमालय क्षेत्र के विभिन्न प्रकार के वनों में काष्ठ को विगलित करने वाले कवकों की कुल 637 जातियों व 5 किस्में वर्णित की गयी हैं जो कि 26 कुलों के 186 वंशों से सम्बन्धित हैं। यह संख्या विश्व भर में पाये जाने वाले इस प्रकार के कवकों के 350 वंशों व 3200 जातियों का क्रमश 52 प्रतिशत व 22 प्रतिशत है। हिमालय में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कवकों में तीन कुलों व वंशों की जातियाँ ही ऐसी हैं, जो केवल जमीन पर उगती हैं। बाकी 23 कुलों के वंशों में पाई जाने वाली जातियाँ ज्यादातर काष्ठ पर उगती हैं। इनमें 6 कुलों में केवल एक ही वंश है, 15 कुलों में 2 से 11 तक वंश हैं और 2 कुलों में 30 अधिक वंश हैं। जहां तक वंशों की बात है, पॉलीपोरेसी में सबसे अधिक 68 वंश हैं। इसके पश्चात् क्रमश: कॉर्टीसिएसी (46) व हाइमेनोकीटेसी (9) हैं। वंशों में जातियों की संख्या के आधार लगभग 212 जातियों के साथ शीर्ष पर है, इसके बाद क्रमश: कॉर्टीसिएसी (लगभग 136) हाइमेनोकीटेसी (96), थैलीपोरेसी (38), क्लेवेरिएसी (28) व स्टीरिएसी (19) का स्थान आता है।

हिमालयी क्षेत्र में पाये जाने वाले एफिल्लोफोरेल्स के कुल 186 वंशों में से लगभग 60 वंशों (कुल का 37 प्रतिशत) का प्रतिनिधित्व केवल एक ही जाति करती है, 114 वंशों की 2 से 9 तक जातियों हैं। हिमालयी क्षेत्र में *फैलिनस* 52 जातियों के साथ सबसे बड़ा एवं विस्तृत वंश है, इसके बाद *रामारिया* (26) *ट्रेमिटस* (19), *टोमेन्टेला* (18), *इनोनोटस* (17), *हाइफोडोन्टिया* (14), *पॉलीपोरस* (13), *फेलिबिया* (12), *एन्ट्रोडिया* 2 (11), *हाइफोडर्मा* (11), *गेनोडर्मा* (10), *हाइमेनोकीट* (9) *आलिगोपोरस* (6) का स्थान है। 678 जातियों मे से लगभग 108 जातियों 16 प्रतिशत) जमीन पर उगती है। शायद ये पेड़ों की जड़ों के साथ कवकमूल संबंध बनाती हैं, जबकि बाकी 570 जातियाँ (54 प्रतिशत) लकड़ी पर उगने वाली हैं। लगभग 5 जातियाँ पर्णांगों के संपर्क में भी रहती है। इन कवकों के लिये आवृतबीजी एवं अनावृतबीजी दोनों प्रकार के वृक्ष मुख्य आधार होते हैं। 570 लिग्नोकोलस जातियों में से 276 अर्थात् 49 प्रतिशत आवृतबीजी पौधों पर, 162 (28 प्रतिशत) अनावृतबीजी पौधों पर व बाकी 132 जातिया (23 प्रतिशत) दोनो प्रकार के वृक्षों पर पाई जाती हैं। इन लिग्नोकोलस जातियों की एक प्रतिशत से भी कम जातियां जीवित वृक्षों पर पाई जाति हैं जबकि शेष जातियाँ जमीन पर पड़ी लकड़ियों पर उगती हैं।

यद्यपि पूर्वी व पश्चिमी हिमालय में इस प्रकार के कवकों की मात्रा व उपलब्धता में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है परन्तु निम्नलिखित जातियां ही अधिकतर हिमालय के जंगलों में दिखाई देती हैं। *ट्रेमिटस वर्सीकॉलर, फैलिनस जीरेन्टीकस, फै. एलार्डी, ट्राईकेप्टम एबीटीनम, जाइलोभोलस सबपीलिएटस, हाईमेनीकीट टेबेसाइना, स्टीरियम हिर्सुटम, स्टी. सेंग्यूनोलेनटम, डाइडेलिया इनकाना, फोमिस फोमेनटेरियस, एन्ट्रोडियल्ला जोनेटस, इनोनोटस फ्लेविडस, ट्रेमिटस गिब्बोसा, एमाइलोस्टीरियम, चाइल्लेटाइ, लेनजाईटिस बिटुलाइना, ग्लोइयोफाइलम सबफेरूजीनियम* आदि।

आवृतबीजियों पर उगने वाली 276 जातियों में से निम्न जातियों का वर्चस्व रहता है : *हाइमेनोकीट टेबेसिना, फोमिस फोमेनटेरियस, ट्रेमिटस वर्सीकॉलर, ट्रे. गिब्बोसा, फैलिनस एलार्डी, फै. फेरियस, फै. जीरेन्टीकस, इनोनोटस फ्लेविडस, इ. टेन्यूकारनिस, जैरकेन्डरा एडसटा, आक्सीपोरस पॉपुलाईनस, पॉलीपोरस अरकुलेरिस, पॉ. ट्राइकोलोमा, रिजीडोपोरस अलमेरियस, रि. विक्टस, जाइलोबोलस सबपीलिएटस* व *लेनजाइटिस बिटुलाइना।*

अनावृत्तबीजियों पर पाई जाने वाली 162 जातियों में से *कीटोडर्मा लूना, डेक्रायाबोलस करस्टीनाइ, हाइपोडोन्टिया एलुटेरिया, रेजिनीसियम बाइकॉलर, फेलिबायोप्सिस रामुगुराई, फे. जिजैन्टिया, ट्रिकीस्पोरा फेरिनेसिया, ग्लोइयोस्टीडिल्लम आर्केसियम, फैलिनस पिनि, फोमिटोप्सिस रोजिया, ग्लोइयोफाइलम सबफेरूजीनियम, हेट्रोबेसिडियोन इन्सुलेरी, ऑलीगोपोरस फ्रेजीलिस, एमाइलोस्टीरियम चाइल्लेटाई, स्टीरियम सेंग्यूनोलेनटम, टॉमेनटेल्ला टेरिस्ट्रीस, साइटीनोसट्रोमेला हेट्रोजिना एमाइलोकार्टीसियम इन्डिकम, वेरारिया रॉडोस्पोरा* आदि प्रमुख हैं। आवृत्तबीजी व अनावृत्तबीजी पौधों के सामान्य रूप से काष्ठ पर जब कि *गेनोडर्मा एप्लेनेर्टम, इनोनोटस डोईडियस, फैलिनस राबसटस, एन्ट्रोडिया एलबीडा, ए. गोसिपिना, ए. सिरयिलिस, डाइडेलिया इनकाना, सिप्लोमाइटोपोरस लेनिस, ट्राईकेप्टम एबीटीनम, स्टीकेरियम आक्रेसिनम, स्टीरियम हिरसुटम, जाइलोबोलस फ्रूस्टूलेटस आदि मिलती हैं। वृक्ष के तनों को अधिक*

हानि पहुंचाने वाली जातियों में : फोमिस फोमेनटेरियस, गेनोडर्मा एप्लेनेटम, इनोनोटस ड्राइडियस, फेलिबायोप्सिस जिजैन्टिया, फे. रॉमुगुराई, रिजिडोपोरस अलमेरियस, फैलिनस इग्निरियस, फै. राबस्टस, फै. लेविगेटस, एमाइलोस्टीरियम चाइल्लेटाइ, स्टीरियम सेंग्यूनोनटम, स्टी. गॉसेपेटम, फेइओलुस स्वेनीट्जाई, इनोनोटस टिन्युकार्निस, इ. रेडियेटस, ग्लोइयास्टीडिल्लम ऑर्केसियम आदि हैं।

वृक्षों पर उगने वाले लगभग 165 वंशों में से केवल 22 (13 प्रतिशत) वंश भूरा विगलन (Brown rot) पैदा करते है : इनमे से प्रमुख हैं :- *एन्ट्रोडिया, डाइडेलिया, फोमिटोप्सिस, कोनियोफोरा, आलिगोपोरस, फेइओलुस इकाइनेन्टियम, कीटोसर्मा, एमाइलोकार्टीसियम, सेपेरेसिस तथा सरपुला।* ज्ञात लिग्नीकोलस जातियों में से केवल 86 (15 प्रतिशत) जातियाँ ही भूरा विगलन पैदा करती हैं। 52 जातियाँ (60 प्रतिशत) केवल अनावृत्तबीजी तथा 14 जातियां (17 प्रतिशत) अन्त: काष्ठ व बाकी 20 जातियाँ (20 प्रतिशत) दोनों प्रकार की काष्ठ पर पाई जाती हैं। *एबीस, सिड्रस, परसिया, पाइनस* व *लैरिक्स* इनके पसंदीदा आश्रय होते है। आवृतबीजी जातियों में क्वेरकस व बेटुला मुख्य आश्रय होते हैं। कुछ जातियां जैसे कि *एन्ट्रोडिया एलबिड़ा, डाइडेलिया इनकाना, कीटोडर्मा लुना, लेटीपोरस सलफ्यूरिस, ग्लोइयोफाइलम एबिटीनम, ग्लो. सबफेरूजीनियम, कोनियोफोरा एरिड़ा, सरपुला हाइमेनटियोडस, स. लेक्रिमेन्स डेक्रायोबोलस करस्टीनाई, फोमिटोप्सिस रोजिया, फेइओलस स्वेनीटजाई, फो. रोजिया, ऑलिगोपोरस फ्रेजिलिस,* हिमालय में पेड़ों को 80 प्रतिशत से अधिक भूरा विगलन करने की उत्तरदायी हैं। *पिप्टोपोरस बीटुलाइनस* व *एन्ट्रोडिया* की जातियाँ हिमालय के ऊपरी जंगलों अथवा वृक्ष सीमा रेखा पर मुख्यतया पाई जाती हैं।

शेष 143 वंश श्वेत विगलन (White rot) के जनक होते हैं परन्तु इनमें भी *फैलिनस इनोनोटस, टोमेनटेला, हाइमेनोकीट, स्टीरियम फेलिबिया, फेनेरोकीट, हाइपोडोन्टिया हाइफोडर्मा,* लगभग 484 जातियों (85 प्रतिशत) श्वेत विगलन पैदा करती हैं और इनमें से 164 जातियां (32 प्रतिशत) अनावृत्तबीजी वृक्षों की लकड़ियों पर, 223 (46 प्रतिशत) आवृतबीजी वृक्षों की लकड़ियों पर व 107 (22 प्रतिशत) दोनों प्रकार के वृक्षों की लकड़ियों पर उगती हैं। कवकों में काष्ठ को विगलित करने वाली जातियों में 80 प्रतिशत से अधिक श्वेत बिलगन पैदा करने वाली व अधिकतर दिखाई पड़ने वाली जातियों में *फैलिनस एलार्डी, फै. जिरेन्टीकस, फै. पिनी, फै. रॉबस्टस, फै. फेरियस, फाइलोपोरिया बेवरियाना, ट्राइकेप्टम एनीटीनम, ट्रेमिटस गिब्बोसा, ट्रे. वरसीकॉलर. ट्रे. हिर्सुटा, गेनोडर्मा एप्लेनेटम, हाइमेनोकीट टेबेसिना, एन्ट्रोडिइला जोनेटस, लेनजाइटिस बीटुलाइना, स्टीरियम हिर्सुटम, इनोनोटस फ्लेविडस, हेट्ररेबेसीडियोन इनसुलेरी, एमाइलोस्टीरियम चाइल्लेटाई, जाइलोबोलस सबपीलिएटस, वेरारिया, रॉडोस्पोरा, फेलिबायोप्सिस जिजैन्टिया, फे. रामुगुराइ, हाइपोडोनिटया अरगुटा, हा. स्पेथुलेटा, प्रमुख हैं। क्वेरकस, बीटुला, एस्कुलस, जुग्लेन्स अलनस, श्कीमा* व *वाइवरनम* की जातियाँ इन कवकों के पसंदीदा आश्रय हैं।

वासस्थान/प्रमुख क्षेत्र :

हिमालयी क्षेत्र के जंगलों में मृत वृक्षों की बहुतायत होती है जो कि कवकों को उगने का अच्छा वातावरण प्रदान करते हैं। जीवित वृक्षों पर ये कवक शायद ही दिखाई दें क्योंकि काष्ठ को विगलित करने वाले कवक तब तक फलित नहीं होते जब तक वृक्ष मर नहीं जाता है। ये कवक साधारणत: तभी दिखाई पड़ते है जब जंगल कुछ हद तक नष्ट हो जाते हैं। जब पेड़ टूट जाते है या उन्हें कुछ क्षति हो जाती है तो उस पेड़ पर कवक फैलना व फलना शुरू हो जाते हैं।

जंगलो के किनारों की पर वृक्षों की दूसरी या नई पैदावार होती है। उनमें स्वस्थ्य व तीव्रता से उगने वाले वृक्ष होते हैं ।ऐसे स्थानों पर काष्ठ को हानि पहूँचाने वाले कवक या तो होते ही नहीं या नगण्य होते हैं। अनछुए जंगलों में जहां अधिकतर स्वस्थ व परिपक्व वृक्ष होते हैं। केवल कुछ ही ज़ातियाँ जैसे - *फेलिबिल्ला वोरिएलिस, फोमिटोप्सिस पाइनीकोला, स्टीरियम सैंगुइनोलेंटम, हाइपोडोन्टिया एलुटेरिया, फेलिओलुस स्वेनिटजाई, पालीपोरस बेडियस* जीवित वृक्षों के तनों पर पाई जाती हैं।

प्राकृतिक रूप से नष्ट जंगलों में जहां वृक्षों के विगलने की भिन्न-भिन्न दशायें मौजूद रहती है, काष्ठ को विगलित करने वाले कवक पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। खुले स्थानों पर कम गहरी जड़ों वाले वृक्ष या कवकों के कारण कमजोर हुए वृक्ष हवा के थपेड़ों से गिर जाते हैं। पर कवकों के लिये सबसे अनुकूल परिस्थितियों तब होती हैं जब गिरे हुये व काटे हुए वृक्षों को जंगल में एक स्थान पर जमा कर रख दिया जाता है। काष्ठ को हानि पहुँचाने वाले 70 प्रतिशत कवक ऐसे ही स्थानों पर पाये जाते हैं। जब वृक्ष मर जाते हैं या उनकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं तो सूर्य का प्रकाश जंगल के फर्श तक पहुँच जाता है जिसके कारण जंगल में नमी की मात्रा कम हो जाती है, ऐसी स्थिति कवकों के लिये अनुकूल नहीं होती। कुछ जातियाँ जैसे - *एन्ट्रोसिया सीरियेलिस, एमाइलोस्टीरियम चाइल्लेटाई, कॉनियोफोरा एरिडा, ट्राईकेप्टम फुस्को-वायोलेस्यिम, ट्रा. एबीटीनम, रेजिनीसियम बाइकालर, ग्लोइयोफाइलम सेपियरियम, हाइपोडोन्टिया एस्पेरा,*

ट्रेमिटस वर्सीकालर, स्टीरियम हिर्सुटम, स्टी. सेंग्यूनोलेनटम, गेनोडर्मा एप्लेनेटम ऐसे स्थानों पर पाई जाती हैं। *क्वेरकस* की जातियों कवकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण एवं मुख्य आश्रय होती हैं। *एफिलोफोरेसियम* फंजाई की लगभग 120 जातियाँ मुख्यतया क्वेरकस की जातियों पर ही उगती हैं इनमे से कुछ हैं- *वेरारिया एफुस्काटा, अलबेट्रील्लस डिसपेनसस, एन्ट्रोडियल्ला जोनेटस, जेरकेन्डरा एडसटा, डाइडेलियोप्सिस पुरपुरिया, फोमिस फोमेनटेरियस, लेटीपोरस सल्फ्यूरिस, ले. परसाइसिनस, पाइलोपोरिया इन्डिका, स्पोजिंपिलिस यूनिकॉलर, टाइरोमाइसिस पेलीकुलोसस, बुलफिपोरिया डाइलेटाहाइपा* आदि। कुछ अन्य जातियाँ जो अन्य वृक्षों के अतिरिक्त *क्वेरकस* पर भी उगती हैं; वे हैं - *फैलिनस एलार्डी, फै. फेरियस, फै. फै. जीरेन्टिकस, स्टीरियम, गॉसेपेटम, ट्रेमिट्स वर्सीकलर, ट्रे. हिर्सुटा, जाइलोबोलस सबपीलिएटस, इनोनोटस ट्यूनीकारनिस, इ.फ्लेविडस, एल्यूरोडिसकस ऑकेसाइ, फेइओलस स्वेनीटजाई लेनजाइटिस बिटुलाइना, फेलिबिया रेडिएटा, हेरीसियम एरिनेसियम, फाइलोपोरिया बेवेरियाना।*

अनावृत्तबीजियों में एबीस पिन्ड्रो व ए. स्पेक्टाविलिस इनके पंसदीदा आश्रय हैं। मुख्यत: *एन्ट्रोडिया सिरिएलिस, कोनियोफोरा एरिड़ा, हाइपोडर्मा स्टीजिरियम, फोमिटोप्सिस पाइनीकोला, फो. रोजिया, इनोनोटस रेडियेटस, फैलिनस, इग्नोएरियस, फेलिबायोप्सिस रामुगुराई, फे. जिजेन्टिया, ग्लोइयोसिसडिल्लम आर्केसियम, ट्राइकेप्टम एबीटीनम, स्टीरियम सेंग्यूनोलेनटम* । मुख्यत: एबीज की ही जातियों पर उगती हैं। वृक्ष रेखा के पास साधारणतया *फैलिसि निग्रीकेन्स, पिप्टोपोरस बीटुआइनस, साइटिनोस्ट्रोमा प्रेस्टेन्स,* बेटुला पर ही उगते हैं। *ट्रेमिटस गिब्बोसा, ट्रे. वर्सीकोलर, इनोनोटस टिनुकारनिस, आ. फ्लेविडस, इ. रेडियेटस, फेलिनस सेनफारडाइ, फै. इग्निरिस, हाइपोडोन्टिया स्पेथुलेटा, कोनियोफोरा बीटुलाई, लेनजाइटिस बीटुलाइना, रिजिडोपोरस अलमेरियस स्पेन्जिपीलस डीलेक्टेन्स, पॉलिपोरस अरकुलेरिस* भी अधिकतर बिटुला पर ही उगते हैं। यूं तो *रोडोडेन्ड्रॉन* इन कवकों का अच्छा आश्रय नहीं है परन्तु *रोडोडेन्ड्रॉन* के झुरमुटों में जहाँ थोड़ी नमी हाती है, कवकों की कुछ जातियाँ उगती हैं इनमें *एपीथीली फुल्वा, हाइपोडोन्टिया कस्टोसा, फेलिबिल्ला सबनिटेन्स, फैलिनस एकोनटेक्सटस, बोट्रायोबेसीडियम सबकोरीनेटम, फेनिरोकीट फिलामेनटोसा, फेलिबिया रेडियेटा, फैलिनस सेनफोरडाइ, साइटीनोस्ट्रोमा ड्यूरिसकुलम, हिडनम रिपेन्डम, एन्ट्रोडिया ओडोरा, ए. आलेरेसिया* केवल *रोडोडेन्ड्रॉन* पर ही उगती हैं। कुछ अन्य जातियाँ जैसे *बोट्रायोबेसीडियम सबकारिनेटम, एन्टोडिया औलेरेसिया* भी *रोडोडेन्ड्रॉन* के खड़े वृक्षों के मृत ऊतकों पर उग जाते हैं।

विविधता के आकलन में समस्याएं

काष्ठ को हानि पहुँचाने वाले कवकों की विविधता का आकलन करने में निम्न समस्यायें आती हैं :

मौसम की अनुकूलता : कवकों में बेसीडियोकार्प का प्रकट होना तापक्रम, नमी, पोषकतत्वों की उपलब्धता (कार्बन/नाइट्रोजन) अनुपात व वानस्पतिक अनुक्रमण के प्रारूप पर निर्भर करता है अत: मौसम में बदलाव समस्यायें पैदा कर सकता है। समशीतोष्ण क्षेत्रों में अक्सर तापमान में बदलाव के कारण फलनकाय प्रकट होने में भी उल्लेखनीय बदलाव हो जाते हैं। सामान्यतया हिमालय के जंगलों में गर्मी की शुरूआत में लम्बे समय के सूखे के बाद भारी बरसात होती है और उसके 25 से 30 दिन बाद कवक पैदा होते हैं, इनमें से कुछ कवक कुछ समय के लिये ही दिखाई देते हैं, परन्तु कुछ सामान्यतया पाये जाने वाले कवक लम्बे समय तक देखे जा सकते हैं, अत: अलग अलग मौसम में विविधता भी बदल जाती है व अर्थहीन हो जाती है। साल दर साल वनस्पति जातियों का मिश्रण व विविधता भी बदलती रहती है जिसका प्रभाव कवकों की विविधता पर भी पड़ सकता है। यह भी देखा गया है कि पर्णपाती व अनावृत्तबीजी जंगलों में पेड़ों के कटान पर विभिन्न स्तरों पर आरोपण के कारण कुछ सालों तक कवकों में बहुत कम या ना के बराबर फल हुये।

कवक वर्ष के एक विशेष समय में हो सकते हैं जैसे न होने के समय में काफी अंतर भी हो सकता है। अत: शोधकर्ताओं को या तो सही समय पर सही स्थान पर होना चाहिये या जाति विशेष की विरलता का ज्ञान होना चाहिये, विशेषकर उन्हें जो कवको से अपरिचित या अल्प परिचित हैं तथा नष्ट होने से पहले ही उनकी पहचान किसी विशेषज्ञ द्वारा करवा लेनी चाहिये। ये वे समस्यायें हैं जो कि अधिकतर अन्य कई समूहों के साथ नहीं आती हैं। जातियों की सूची के आधार पर काष्ठ को नष्ट करने वाले कवकों की विविधता का अनुमान लगाना या आकलन करना काफी नहीं है। क्योंकि एसी सूचियां एक निश्चित समय (साधारणतया अगस्त-सितम्बर) पर किये गये सर्वेक्षणों पर आधारित होती हैं। इसके अतिरिक्त यह इस पर भी निर्भर करता है कि शोधकर्ता की रूचि किस समूह में है। कवकों में मौसमी बदलाव वातावरणीय कारणों के अनुसार उनकी मात्रा के आधार पर ही विशिष्ट कहा जा सकता है, यद्यपि बेसिडियोकार्प की अत्यधिक मात्रा में उत्पादन के लिये कुछ परिस्थितियों का होना आवश्यक है। वर्षा, कवको के उत्पादन के लिये महत्वपूर्ण कारक लगता है। मई -जून में सभी जंगलों में वर्षा का होना कवकों के लिये आवश्यक है जबकि अगस्त मे उपयुक्त घनात्मक प्रभाव में कमी आ जाती है। उगने के मौसम में वुड रोटिंग फंजाई जैव भार में सालाना 19-45 प्रतिशत तक विविधता व 24-29 प्रतिशत तक जातियों की विविधता तापमान व वर्षा के कारण

समझाई जा सकती है। अत: वर्ष भर में वर्षा की स्थिति का लम्बे समय तक का आंकड़ा कवकों के अध्ययन के लिये आवश्यक है।

ज्ञान की कमी : विविधता सम्बन्धी विषयों और दुष्प्रभावों पर कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। यद्यपि इन लेखों में कई पौधों, जन्तुओं या अन्य जीवों (अवयव) संबंधित जानकारी मिलती है पर अधिकतर कवकों से संबन्धित जानकारी का अभाव होता है। जहां तक हिमालय के कवकों का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में विस्तृत कार्य आज भी उपलब्ध नहीं है।

अन्य समूहों की तुलना में माइकोलॉजी से सम्बन्धित अध्ययन बहुत कम है, जबकि शोध की दृष्टि से वह बहुत महत्वपूर्ण है। विश्व भर मे पाई जाने वाली जातियों में से केवल 5-10 प्रतिशत जातियों का वर्णन ही हो पाया है। इसका अर्थ है कि उच्चवर्गीय पादपों के अध्ययन व पहचान की तुलना में माइकोलॉजी 70 से 100 साल पीछे है।

अन्वेषक : कवकों की विविधता के आकलन में आनेवाली मूल समस्या है विशेषज्ञों की कमी। शिक्षित विशेषज्ञों की संख्या इतनी कम है कि वे स्वयं को ही संकटापन्न की श्रेणी में रखने लगे हैं। बात यह भी है कि मॉइकोलॉजी पर कार्य करने वाले मुठ्ठी भर लोग अलग-अलग कार्य करते हैं। एक दूसरे से उनका सम्पर्क नहीं रहता। माइकोलॉजिस्टों को प्रशिक्षित करना एक टेढी खीर है। जो विश्वविद्यालय प्रशिक्षण देते हैं, उनका ध्यान आर्थिक रूप से उपयोगी कवकों व तथा मनुष्यों को हानि पहुंचाने वाले कवकों पर ही होता है।

अनुक्रमण :

काष्ठ को विगलित करने वाले कवकों की जातियाँ वृक्षों की विगलित होने की अवधि में एक दूसरे का अनुसरण करती हैं। यह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर अलग अलग हो सकती है। शीतोष्ण क्षेत्रों में काष्ठ को हानि पहुँचाने वाली विशेषकर *पॉलीपोरस* की 9 जातियों को एसे वृक्षों पर उगते हुये पाया गया है जो कवकों की अन्य जातियों के द्वारा पहले ही विगलित की जा चुकी थी। अनुकरण करने वाली जाति पहले से मौजूद जाति के खत्म होने के पश्चात् ही प्रकट होती है और कभी कभी तो उसके मृत फलकाय पर फलित होती है। गिरे हुये तनों के विगलित होने की विधि और उसके बाद अनुकरण में आने वाली दूसरी कवक जातियों के विषय में जानकारी कम ही हैं। *फोमिटोप्सिस पाइनीकोला, हेट्रोबेसीडियोन, एन्नोसम, पिप्टोपोरस बीटूलाइना* व *फैलाइनस* की जातियाँ पहले उगने वाली जातियाँ हैं। एक रोचक तथ्य यह है कि हाइमेनोकीटेसी कुल की जातियाँ पहले उगने वाली जातियों में अग्रणी हैं।

काष्ठ विगलित करने वाले कवकों में कुछ वंशों में कई जातियाँ हैं जो इस प्रकार के अनुक्रम को अपनाती हैं। सक्सेसर कवक के रूप में *एन्ट्रोडियला* सबसे प्रसिद्ध वंश हैं। *स्कैल्यूटोकूटिस, जुन्गुनिया, पाइलोपोरा* तथा *पिक्नोपोरैलस* इत्यादि वंश भी इस मायने में काफी नजदीक हैं। वे जातियों (कवक) जो दूसरी जातियाँ पर अधिक निर्भर करती हैं ज्यादा असुरक्षित होती हैं तथा संरक्षण में ज्यादा ध्यान मांगती हैं। ऐसी जातियाँ अधिकतर विशुद्ध जंगलों में ही पाई जाती हैं और वहां भी विरल होती हैं। जातियों की संख्या में जरा सी कमी भी अनुसरण करने वाली जाति की संख्या पर भयंकर प्रभाव डाल सकती हैं, यहां तक कि वे विलुप्त भी हो सकती हैं।

संकट :

पिछले कुछ वर्षो में संकटग्रस्त कवकों की कई राष्ट्रीय व क्षेत्रीय सूचियाँ प्रकाशित की गई हैं। विभिन्न देशों के कवकों की रेड डाटा सूची तैयार की गई हैं जिनमें 25 से 30 प्रतिशत जातियाँ संकटग्रस्त हैं। संकटग्रस्त कवकों में सबसे अधिक जातियाँ *अगेरिकस* (30 प्रतिशत से भी अधिक) की हैं। इसके बाद वुडरॉटिंग फंजाई का स्थान है जिनकी 20 प्रतिशत से अधिक जातियाँ संकटग्रस्त हैं। जंगलों में काष्ठ अपघटनकारी कवकों की जातीय विविधता में व बेसीडियोकार्प की संख्या में बड़ी कमी पाई गई हैं यद्यपि इस कमी का सटीक अनुमान लगाना संभव नही है परन्तु इसके कारण ''वन पारिस्थितिकी इकोसिस्टम'' में बदलाव आ सकता है जिसके अज्ञात परिणाम हो सकते हैं। आर्नोल्ड (1989) ने यह बताया है कि घास के मैदानों (44 प्रतिशत) के बाद पर्णपाती वन (33 प्रतिशत) व समशीतोष्ण शंकुधारी वन (30 प्रतिशत) व इनके कवक फ्लोरा में उल्लेखनीय बदलाव आया है। काष्ठ को विगलित करने वाले कवकों की संख्या में आई इस कमी के मुख्यत: दो कारण हैं।

प्राकृतिक कारण : आश्रय प्रदान करने वाले पेड़ों की जातियों में कमी व अनुक्रम प्राकृतिक कारणों में मुख्य हैं।

मानवजनित कारण : सदियों से हिमालय के वनों में मनुष्यों की गतिविधियों जारी हैं। जिनमें मुख्यतया खेतों के लिए जंगल काटकर जमीन तैयार करना और वृक्षारोपण हैं। रोपित जातियों में कुछ शंकुधारी वृक्ष कठोर काष्ठ की जातियां हैं जिनके कारण वुड रॉटिंग फंजाई के कई आश्रय स्थल या तो समाप्त हो गये हैं या उनमें काफी बदलाव आ गया है। चुनिंदा पेड़ों का कटान व अन्य कारणों से पेड़ों के पतन के कारण भी परितंत्र, जैव विविधता व वर्षा पर बहुत दुष्प्रभाव पड़ा है। इसका एक गंभीर परिणाम प्रकृति में कार्बन भंडार में कमी व वुड रोटिंग फंजाई को आश्रय प्रदान करने वाले वृक्षों की कमी है। प्राकृतिक वास के नष्ट होने के कारण कई काष्ट अपघटनकारी कवक विशेषकर जो कि

वृक्ष विशेष पर उगते हैं खतरे में पड़ गये हैं। कई जातियों को लगातार नम परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। वृक्षों के कटान के कारण जंगल का ऊपरी आवरण नष्ट हो जाता है, और जंगलों मे नमी की कमी हो जाती है जो कवकों के लिये हानिकारक हैं। पुराने वनों की यह एक महत्वपूर्ण देन है कि कवकों के प्राकृतिक वास सुरक्षित हैं कवको के फल-काय का अत्यधिक संग्रहण भी कई जातियों के लिये हानिकारक है। यद्यपि इस हानि का विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है।

कवकों की कई जातियों की वास्तविक परन्तु अज्ञात आर्थिक उपयोगिता व कई जातियों के वितरण एवं स्थानिक होने के बावजूद प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन व संरक्षण की दृष्टि से में कवको को नजर अंदाज किया गया है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षो में कवकों के अध्ययन में रूचि बढी है फिर भी वनस्पतियों की अन्य जातियों की तुलना में कवकों के संरक्षण पर ध्यान न के बराबर दिया गया है। अत: इनके संरक्षण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। ये उपाय अन्य समूहों के संरक्षण के लिये सुझाये गये उपायों के ही समान हैं। ये निम्न प्रकार हैं -

1. कुछ विरल व सुन्दर विचित्र फलकाय वाली जातियों को कानुनी संरक्षण प्रदान करना इस दिशा में पहला कदम होगा। शुरूआत में कुछ जातियों जैसे कि *फोमेस फोमेनटेरियस, फो. पिनीकोला, फोमिटोप्सस रोजिया, गेनोडर्मा एप्लेनेटम, जाइलोबोलस सबपीलिएटस स्टीरियम सेंग्यूनोलेनटम, स्टी. हिर्सुटम, फिस्टुलाइना हिपेटिका, इनोनाटस ड्राइडियस, इ. टिन्यूकार्निस, इ. फ्लेविडस, हेरिसियम इरिनेसियस, पिप्टोपोरस, बीटुलाइनस, पाइलोपोरिया इन्डिका, लेटिपोरस सल्फ्यूरियस, फेइयोलस स्वेनीटिजाइ, फैलिनस राबसटस पाइरोडर्मा सेडेन्स, स्पेरेसिज क्रिस्पा, डाइडेलिया इनकाना, डाइडेलियोप्सिस पुरपुरिया, रिजिडियोपोरस अलमेरियस* को संरक्षण दिया जाना चाहिये।
2. कवकों की जीव विज्ञान में भिन्नता के कारण वे पुष्पी पौधों के लिये निर्धारित प्रक्रिया से अलग है ये तभी देख जा सकते हैं जब उनकी फल काय मौजूद होती है, परन्तु इनका लम्बे समय तक न दिखाई देनेका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि ये विलुप्त हो गयी हैं। एसा भी हो सकता है कि इनका मॉइसिलियम जीवित हो और सही परिस्थितियां मिलने पर फ्रूट-बॉडी निकल आये। एसे उदाहरण हैं जब वर्षो तक अदृश्य रहने के बाद उसी स्थान पर फ्रूट बॉडी प्रकट हो गई। इस कारण कवक विस सूचक जाति के विचार का उपयोग कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में हम जानते हैं कि पुराने जंगल काष्ठ कवकों के अच्छे वास स्थान हैं और हम यह भी जानते हैं कि आसानी से पहचाने जाने वाले कवकों के माध्यम से हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह लकड़ी कितनी पुरानी हैं और उसे विगत में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। अत: कहा जा सकता है कि यदि हम खूबसूरत व वड़े कवकों की रक्षा करते हैं तो कुछ कम जानी जाने वाली जातियों के संरक्षण में भी बढ सकते हैं।
3. ऊपर वर्णित समस्याओं एवं उनसे पैदा होने वाली कठिनाइयों को देखते हुय संकटग्रस्त वास स्थानों में उगने वाली कवक जातियों की विविधता व विवरण का ज्ञान आवश्यक हैं क्योंकि भारत जैसे विशाल देश में जाति दर जाति संरक्षण संभव नहीं है। अत: काष्ठ कवक के प्राकृतिक आवासों का अध्ययन व संरक्षण सही विकल्प हो सकता है।
4. भारत के विश्वविद्यालयों में मॉइकोलॉजी के अध्ययन के लिये कोर्स विकसित करने की आवश्यकता है। कार्यशालाओं एवं सम्मेलनों के माध्यम से इनमें वृद्धि की जा सकती है। इस विषय के विशेषज्ञों को आपस में संपर्क में रहने की आवश्यकता है। मॉइकोलॉजी के अध्ययन टुकड़ो में किये जा रहे हैं। अध्ययनों को देखते हुये उचित होगा कि विभिन्न संस्थानों में कवकों पर किये जा रहे कार्यो की विवेचना की जाए और भारत में कवकों की विविधता के अध्ययन के लिये एक अलग संस्थान स्थापित किया जाए।
5. काष्ठ कवक के प्रभावी संरक्षण गहन वर्गिकीय व पारिस्थितिकीय अध्ययनों पर निर्भर करेगा. अत: इस विधा पर कार्य करने वाली की संख्या में वृद्धि करना एक महत्वपूर्ण कदम होगा। यदि ऐसा संभव न हो तो दूसरा रास्ता अपनाने की जरूरत होगी। इसके लिये स्थानीय लोगों को प्रशिक्षण देकर उनमें रूचि जागृत की जा सकती है।

स्कूलों के स्तर पर मॉइकोलॉजी अध्ययन के लिये विशेष प्रयास किये जा सकते हैं, तथा इसको और उच्च स्तर पर पहुँचाया जा सकता है। कवकों की पहचान के लिये समय समय पर पाठ्यक्रम आयोजित किये जा सकते है जिनमें अनुभवी, प्रशिक्षित कवकविज्ञ व्याख्यान दे सकते हैं। अपुष्पी पौधों के लिये ''क्रिप्टोगेमिक सेंचुरी'' या ''उद्यान'' बनाये जा सकते हैं। ऐसे कवक बगीचे स्कूली बच्चों व आम जनता में रूचि पैदा करने में लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

---

1. *एन्ट्रोडिएला जोनाटा* 2. *फोमिस फोमेन्टेरियस* 3. *गेनोडर्मा एप्लेनेटम* 4. *हाइमेनोकीट क्रुएंटा*
5. *डाइडेलियोप्सिस परपूरिया* 6. *फेलिनस सैन्फोडी* 7. *ट्रामेटेस वर्सीकलर* 8. *ट्राईकाप्टम एवीटिनम*

पर्णांग *एथिरियम* का विस्तृत अध्ययन

हिमांशु द्विवेदी एवं एच. सी. पाण्डे
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पेड़-पौधे हमारे पारिस्थितिकीय तंत्र के लिये बहुत ही उपयोगी है। पेड़-पौधे ही सूर्य की विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदलते हैं जिसके द्वारा हमें भोजन और आक्सीजन मिलता है। इस कारण पौधों को खाद्य शृंखला में प्रथम स्थान दिया जाता है।

पादप जगत को मुख्यत: दो भागों में बांटा गया है जो निम्नलिखित है :

1. क्रिप्टागेम्स - वह पादप समूह जिसमें फूल और बीज नहीं बनते हैं।

2. फैनेरोगेमस - वह पादप समूह जिसमें फूल या बीज या फिर दोनों पाये जाते हैं।

क्रिप्टोगेम्स को तीन समूहों में बांटा गया है।

1. थैलोफाइटा - इनका शरीर जड़, तना और पत्तियां में विभेदित नहीं होता है। यह समूह शैवाल, कवक और जीवाणु से मिल कर बना है।

2. ब्रायोफाइटा - यह थैलोईड अथवा पर्णिल आकार के होते हैं। इनका शरीर मृदूतक कोशिकाओं का बना होता है। इनमे मुख्य पौधा युग्मोकोद्भिद् होता है।

3. टेरिडोफाइटा - (*टेरोन* - पंख, *फाइटोन* - पौधा) ये पौधे दिखने में पक्षी के पंख के समान होते हैं। इनमें वास्तविक, जड़, तना और पत्तियां होती हैं। इसमें वास्तविक संवहन पूल होते हैं। इस कारण इन्हे वेस्कुलर क्रिप्टोगेम्स भी कहा जाता है। इनका मुख्य पौधा बीजाणुउदभिद होता है। यह स्वतंत्र तथा दीर्घजीवी और द्विगुणित होता है। इन पौधों में बीजाणुधानियां पायी जाती हैं जिसमें अगुणित बीजाणु बनते हैं। इसकी युग्माकोद्भिद को प्रोथैलस भी कहते हैं। इसमे पुंधानियॉ और स्त्रीधानियॉ पायी जाती हैं। टेरिडोफाइटा को क्रिप्टागैमस और फैनेरोगैमस के बीच की कड़ी माना जाता है।

पर्णांगों (टेरिडोफाइटा) की उत्पत्ति आज से लगभग 400 अरब वर्ष पूर्व कार्बोनिफेरस काल में हुयी थी। उस समय प्रमुख पादप टेरिडोफाइट ही थे। इस काल के पर्णांग भीमकाय थे जैसे क्लब मॉसेस एवं होर्सटेल। यह पादप लगभग 30 मीटर की ऊँचाई के होते थे परन्तु आज कल के पर्णांग उनकी तुलना में बहुत छोटे होते हैं। यह अन्तर जलवायु परिवर्तन के कारण ही है।

पर्णागोंद्भिदों के उद्भव के बारे में अलग-अलग मत प्रचलित है। कुछ शोध कर्ताओं का मत है कि इनका उद्भव हरितोद्भिद से हुआ है तो कुछ मानते हैं कि इनका विकास शैवालों से हुआ है। इस समूह को पादपों में बाह्य आकारिकी भिन्नता पायी जाती है जिसके कारण इनमें आवासीय भिन्नता भी होती है। इसलिये पादप चट्टानों पर, अधिपादप के समान पेड़ों पर, नदी के किनारों पर, जल, आदि कई स्थानों पर पाये जाते हैं। वर्तमान में पर्णांगोद्भिद् के 318 वंश और 13,600 जातियां पायी जाती हैं. जो कि विश्व के विभिन्न भागों विशेष कर उष्णकटिबन्धीय से लेकर शीतोष्ण तक पायी जाती हैं। दक्षिण पूर्व एशिया पूर्व एशिया में विशेषत: चीन, जापान, ताइवान, मलेशिया, न्यूगिनी तथा भारत में पर्णांग बहुतायत में मिलते हैं।

हमारा देश क्षेत्रफल के अनुसार विश्व में 7 वां स्थान रखता है। भारत को 11 पादप भौगालिक क्षेत्रों में बांटा गया है, विश्व के 17 वृहद जैव विविधता वाले देशों में भारत का 10 वां स्थान है जबकि पहला स्थान ब्राजील का है।

भारत के विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों में पर्णांगों की लगभग 1,100 जातियां पायी जाती हैं। इसमें से लगभग 24 जातियां स्थानिक हैं। पर्णांगों के 34 कुल और 144 वंश के अन्तर्गत भारत में पाये जाने वाले वंशों में *एथाइरम* एक महत्वपूर्ण वंश है।

'*एथिरियम*' टेरिडोफाइटा समूह का एक महत्वपूर्ण वंश है। *एथिरियम* वंश की स्थापना एल्वट रॉथ ने की थी। रॉथ ने इसे टेन्टामैन फ्लोरी जरमैनिकी में सन 1800 में प्रकाशित किया था। इसका टाइप स्पेसिमेन *एथिरियम फिलिक्स-फेमिना* है। यह *एथिरियम* परिवार का सदस्य है। विश्व में इसकी लगभग 810 जातियां पायी जाती हैं। जिसमे भारत में लगभग 60 जातियां पाई जाती हैं। इस वंश की विविधता में संकटापन्न जातियों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इस वंश के सदस्य भारत के विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह भारत के उष्णकटिबन्धित क्षेत्र से एल्पाइन क्षेत्र तक पाया जाता है। इस वंश के पादप नम मृदा में जहां की मृदा अम्लीय हो, उगना पसन्द करते हैं। इस प्रकार की मृदा का पीएच 4.5से 6.5 हो सकता है। इस वंश के पादप क्षारीय मृदा को भी सहन कर सकते हैं।

भारत में इस वंश की ज्यादातर जातियां उत्तरी पूर्वी हिमालय में पायी जाती हैं, तथा इनमें से कुछ जातियां उत्तरी पूर्वी हिमालय क्षेत्र की स्थानिक हैं। उत्तरी पूर्वी हिमालय क्षेत्र में इस वंश की लगभग 42 जातियां पायी जाती हैं। उत्तरी पूर्वी हिमालयी क्षेत्र विविधता में दूसरा स्थान रखता है। यहां पर लगभग 28 जातियां पायी जाती हैं। दक्षिण भारत में सबसे ज्यादा 20 जातियां पश्चिमी घाट में मिलती हैं।

भारतवर्ष में वंश *एथिरियम* की स्थानिक (4 जातियां), संकटग्रस्त (5 जातियां), अति संकटग्रस्त (2 जातियां), और दुर्लभ (3 जातियां) जातियों का विवरण निम्न लिखित हैं।

स्थानिक जातियां	**वितरण**
एथिरियम कुमाउनिकम	उत्तराखण्ड (पिथौरागढ)
एथिरियम एट्रेटम	मणिपुर
एथिरियम पारसनाथैन्स	बिहार (पारसनाथ हिल्स)
एथिरियम सबट्राईन्युअेटा प्रभेद *सिक्किमेन्स*	सिक्किम
संकटग्रस्त जातियां	**वितरण**
एथिरियम एट्राटम	पूर्वोत्तर हिमालय (मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश)
एथिरियम कुमिन्जिएनम	दक्षिण भारत, पूर्वोत्तर हिमालय (मेघालय)
एथिरियम नीपोंनिकम	पूर्वोत्तर हिमालय (मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश, त्रिपुरा)
एथिरियम रेपेन्स	पूर्वोत्तर हिमालय (सिक्किम)
एथिरियम रोसेथम	पूर्वोत्तर हिमालय (पश्चिम बंगाल, दार्जिलिंग)
अति संकटग्रस्त जातियां	**वितरण**
एथाईरियम नाकोनोई	पूर्वोत्तर हिमालय (अरूणाचल प्रदेश)
एथिरियम कूमायुनिकम	उत्तर–पश्चिम हिमालय (उत्तराखण्ड)
दुर्लभ प्रजातियां	**वितरण**
एथिरियम जिम्नोग्रायडिस	दक्षिण भारत
एथिरियम प्राटरमिसस	दक्षिण भारत
एथिरियम पन्टिकौले	पूर्वोत्तर हिमालय (मेगालय)
एथिरियम रूब्रिकौले	उत्तर पश्चिम हिमालय (कश्मीर), हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पूर्वोत्तर हिमालय (सिक्किम)

टेरिडोफाइटा में पिकी सरमोली का वर्गीकरण सबसे ज्यादा प्रचलित है जो पादप के बाहरी आकार तथा आकृति के आधार पर दिया गया है। परन्तु आज कल आणविक वर्गीकरण का प्रयोग भी किया जाता है। आणविक वर्गिकी में डी.एन.ए. का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण में एएफएलपी, आरएफएलपी, आरएपीडी का प्रयोग करते हैं।

इस वंश के सदस्य प्राय: शाकीय होते हैं। कुछ तो बहुत ही कोमल होते हैं, सूखने के बाद हल्के दबाव में टूट जाते हैं जैसे *एथिरियम मैक्रोप्टेरम, ए. एनआइसोप्टेरम*। इस वंश की अधिकतर जातियां स्थलीय होती हैं जो कि छायादार स्थानों पर तथा सूर्य की विपरीत दिशा वाले पर्वतों पर पाये जाते हैं। चट्टानों पर भी *एथिरियम* की कुछ जातियां पायी जाती हैं। लिथोफिटिक जातियां पानी के स्रोतों के निकट ही पायी जाती हैं।

इसका प्रकन्द दीर्घ विसर्पी से लघु विसर्पी, काफी पतला या मोटा तथा कुछ में उर्ध्व या अर्ध उर्ध्व होते है। प्रकन्द का रंग प्राय: काला या भूरा हो सकता है। प्रकन्द शल्कीय होता हैं। शल्क भालाकार, त्रिकोणीय, अण्डाकार या तीक्ष्ण होते हैं। शल्क का ऊपरी भाग प्राय: पतला और लम्बा होता है। इस वंश के शल्क का प्रमुख लक्षण यह है कि शल्क की परिधि या किनारे की कोशिकायें कभी भी मोटी भित्ति वाली, काले या गाढ़े रंग की नहीं होती हैं जबकि शल्क के अन्दर की कोशिकायें मोटी भित्ति वाली होती हैं। शल्क का किनारा प्राय: समतल होता है। कुछ जातियों में शल्क में बर्हिवृद्धि रहती है, जैसे *एथिरियम मैंक्रोप्टेरम*/ शल्क एक समान रंग का या कभी–कभी द्विरंगी होते है। शल्क अपने आधारीय भाग से प्रकन्द से जुड़ा होता है जोड़ वाले स्थान पर शल्क का रंग गहरा होता है। प्रकन्द के ऊपर वाला भाग पर्णवृन्त कहलाता है। पर्णवृन्त का आकार रंग और मोटाई जातियों के अनुसार बदलती रहती है। कुछ जातियों को उनके पर्णवृन्त के विशेष रंग के

कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। जैसे *एथाईरियम सिम्पेराई* के पर्णवृन्त का आधारीय भाग गहरे काले रंग का होता है, *एथिरियम एटीकनसोनाई* के पर्णवृन्त का रंग गुलाबी या हल्के लाल रंग का होता है और *एथिरियम वालिचीआना* का वर्णवृन्त हल्के पीले रंग का और शल्कों से ढका होता है।

एथिरियम की सभी जातियों में पर्णवृन्त में संवहन ऊतक के दो समूह होते हैं, जो रैचिस में पहुंचने से पहले ही आपस में संयुक्त होकर "V" या "U" आकार का एक संयुक्त संवहन बंडल बनाते हैं। संवहन ऊतक के बाहर बल्कुट की कोशिकायें होती हैं, जो पौधों के विकास के प्रारम्भिक दिनों में तो मृदूतक की होती हैं, लेकिन बाद में बाहरी कोशिकाओं या संपूर्ण बल्कुट दृढ़ ऊतक का हो जाता है।

पर्णफलक में प्राय: 2-3 पिच्छक होते हैं, पर्णफलक का आकार भी भिन्न-भिन्न जातियों में अलग-अलग होता है।

बीजाणुधानी पुंज, बीजाणुधानी आवरण से ढका होता है। बीजाणुधानी पुंज शिराओं के ऊपर की तरफ मध्य भाग में होता है। एक शिरा में केवल एक ही बीजाणुधानी पुंज पाया जाता है, एक साथ सो कभी नहीं पाये जाते। बीजाणुधानी पुंज प्राय: "J" आकार के होते हैं, लेकिन बाद में सीधे हो जाते हैं।

बीजाणुधानी पुन्ज में बीजाणुधानी पायी जाती है। बीजाणुधानी, वृन्त, स्टोमियम कोशिकाओं और वलय कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। एनुलस कोशिकायें (वलय कोशिकाओं) की संख्या 14-18 होती हैं तथा बीजाणु अत्यधिक कंटकीय होते हैं।

उपयोग

पर्णांग वंश एथिरियम की कुछ जातियों का विभिन्न प्रकार से उपयोग निम्नवत् है -

भोज्य पदार्थ के रूप में

- इस वंश के सदस्यों का उपयोग भोजन के रूप में किया जाता है। इनकी कुछ जातियों को सूप बनाने में उपयोग में लाते हैं।

- *एथिरियम पेक्टिनेटम* और *एथिरियम फिलिक्स-फैमिना* के नए कोमल पतले प्रकन्द और जड़ों का प्रयोग खाने मे किया जाता है तथा नयी पत्तियों का प्रयोग विभिन्न मसालों के साथ चटनी और विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ को बनाने में किया जाता है। पर्णांगों को खाने से पूर्व किसी जानकार व्यक्ति की सलाह अवश्य ली जानी चाहिए।

- अचार बनाने में भी इसके प्रकन्द का प्रयोग किया जाता है।

- इस समूह के सदस्यों को भोजन के रूप में प्रयोग करने से पहले सावधानी रखनी चाहिये क्योंकि इसमें एक विशेष प्रकार का किण्वक थाईमीनौज पाया जाता है। यह किण्वक विटामिन बी समूह को नष्ट कर देता है। विटामिन बी समूह भोजन को अवशोषित करने और लाल रूधिर कोशिकाओं तथा श्वेतरूधिर कणिकाओं के विकास में और निर्माण में सहायक होता है इसलिये पर्णांग को खाने से पहले हमें अच्छी तरह उच्च ताप पर पका लेना चाहिए जिससे किण्वक नष्ट हो जायें।

- इसकी कुछ जातियों में *एथिरियम योकोसेन्स* और *ए. फिलिक्स-फैमिना*-लेडी-फर्न) में फाइटोरिमीडियेशन की क्षमता होती है। ये पौधे उन स्थानों पर भी अपना विकास कर सकते हैं जहां की मृदा में उच्च भार वाले तत्वों लेड, जिंक की अधिकता होती है। ये पौधे इन तत्वों को विशेष प्रकार की चालका प्राटीन, जो कि पादप के मूल रोम में पायी जाती है, के द्वारा अवशोषित कर लेते हैं। अवशोषण के बाद इन हानिकारक तत्वों को पौधों की कोशिकाओं की रिक्तिकाओं में एकत्रित कर लिया जाता है। यह एकत्रण सबसे अधिक मात्रा में पत्तियों में होता है। इस प्रकार ये पौधे मृदा से हानिकारक तत्वों को अवशोषित कर के भूमि को उपजाऊ बनाते हैं।

कुछ देशों जैसे जापान, चीन, एवं साइबेरिया में इन वंश के पादप को जिंक, कैडमियम और तांबे के पाये जाने के जैव संकेतकों के रूप में प्रयोग किया जाता है।

- पर्वतीय क्षेत्रों में पर्णांग का प्रयोग पानी के संकेत के रूप में भी किया जाता है।

- पर्णांग की पर्णफलक का प्रयोग सरस फल तथा बदरी की टोकरी को ढकने को करते हैं।

- नई पत्तियों का प्रयोग मछली, सब्जियों और खानों को ढकने तथा धूप से बचाने के लिये करदे हैं।

- *एथिरियम फिलिक्स-फैमिना* (लेडी फर्न) की पत्तियों को चट्टानी शैलों पर उगने वाले कवकों के साथ मिलाकर लाल रंग का लेप बनाने में प्रयोग करते हैं।

औषधि के रूप में

औषधीय उपयोग में आने वाली प्रजातियां निम्न लिखित हैं।

ए. पेक्टीनेटम ए. फिलिक्स-फैमिना ए. मल्टिडेन्टाटम ए. पोकोसेन्स

– *एथाइरियम पैक्टिनेटम* में प्रतिजीवाणु रोधक क्षमता पायी जाती है। इसमें प्रतिजीवाणु क्षमता *एग्रोबैक्टिरियम ट्यूमीफेसिपन्स, इश्चेरेकिआ कोलाई, सालमोनेला ओरीजोनी, सालमोनेला टाइफी एवं स्टेफाइलोखोकस फीलोकोकस आरिनस।*

– प्रतिजीवाणु पदार्थ (यौगिक) सबसे अधिक मात्रा में पौधे के प्रकन्द में मिलता है तथा सबसे कम मात्रा में परिपक्व पत्तियों में मिलता है।

–प्रतिआक्सीकारक यौगिक एथाइरियम, *एथिरियम मल्टिडेन्टाटम* और *ए. फिलिक्स–फैमिना* जातियों में पाये जाते हैं। इन पौधों में एक विशेष प्रकार का सल्फर युक्त कार्बोहाइड्रेट बहुलक पाया जाता है, प्रतिआक्सीकारक क्षमता के द्वारा ये पादप हाइड्रोसिल मूलक और सुपरऑक्साइड मूलक पदार्थो को निष्क्रिय कर देते हैं, तथा ये मूलक प्रकाश–संश्लेषण को प्रकाश अभिक्रिया को मन्द कर देते हैं या रोक देते हैं। प्रतिआक्सीकारक क्षमता के द्वारा ही डी.एन.ए. का पुन: निर्माण होता है, इस कारण से इस प्रकार के यौगिक का प्रयोग मानव चिकित्सा में कैंसर रोधी दवाओं को बनाने में किया जाता है क्योंकि कैन्सर में कोशिकाओं का डी.एन.ए. ही प्रभावित होता है।

– *एथिरियम फिलिक्स – फैमिना* के जड़ का काढ़ा अतिमूत्रता को रोकने, आंखों के घावों और आंखों की मांस पेशियों के उपचार में किया जाता है।

– पर्णवृन्त का प्रयोग दर्द निवारक के रूप में किया जाता है।

– नई कोमल पत्तियों का प्रयोग आंतो के घावों के उपचार और गर्भाशय के कैन्सर में करते हैं।

– प्रकन्द के मध्य भाग को भूनकर खाने पर पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन हार्मोन्स की पर्याप्त मात्रा बनी रहती है जिससे प्रौस्ट्रेट कैन्सर नहीं होता है इस कारण चिकित्सक वृद्धावस्था में पुरूषों को प्रकन्द खाने की सलाह देते हैं क्योंकि वृद्धावस्था में इस हार्मोन की शरीर में कमी हो जाती है।

– प्रकन्द तथा एस्टर पादप के मिश्रण को अन्त्र बुखार में प्रयोग में लाते हैं। यह मिश्रण अपनी प्रतिऑक्सीकारक और प्रतिजीवाणुविक क्षमता के कारण जीवाणुओं की कोशिका कला और कोशिका भित्ति को नष्ट कर देता है जिसके कारण जीवाणु नष्ट हो जाते है।

इस प्रकार *एथिरियम* पर्णांग समूह का एक महत्वपूर्ण वंश है। इसका चिकित्सीय उपयोग भोजन के रूप में तथा प्रतिऑक्सीकारक और प्रतिजीवाणुविक क्षमता के कारण इसका उचित मात्रा में प्रयोग तथा संरक्षण करना चाहिए जिससे ये पादप हमारी भविष्य निधि के रूप में सुरक्षित रह सकें।

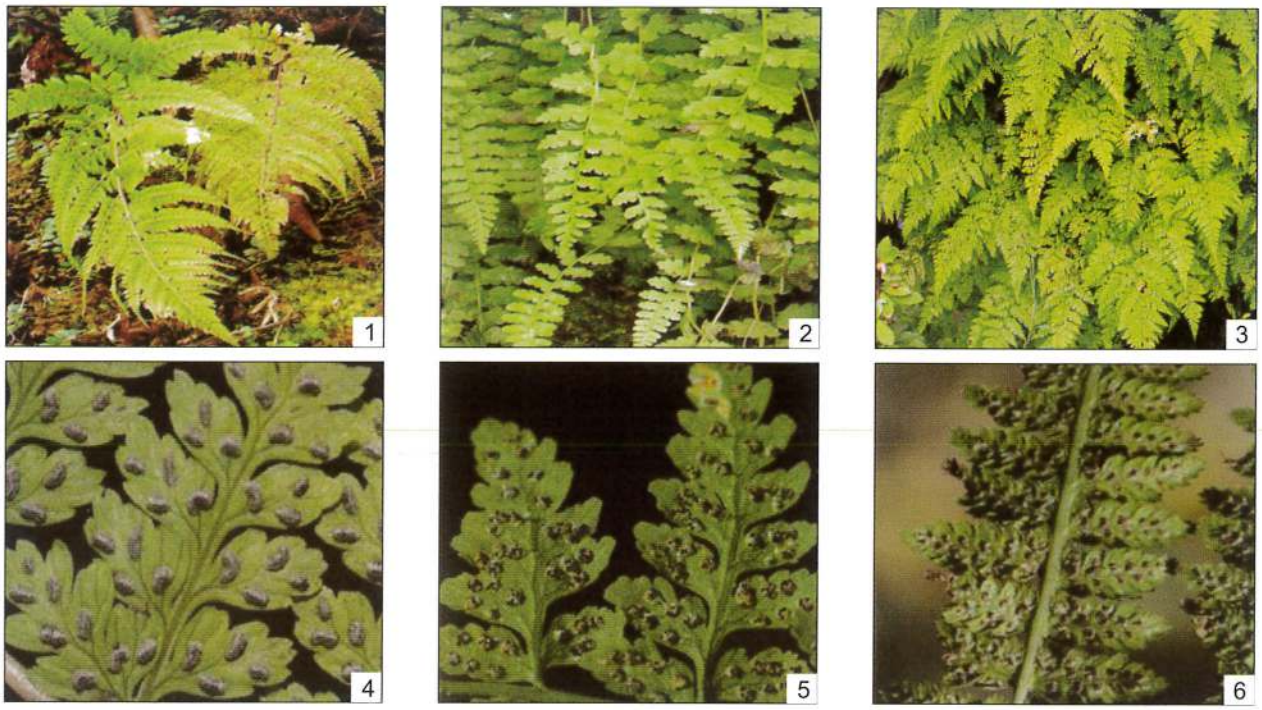

1. एथिरियम मैकिनिओरम का प्राकृतिक आवास 2. एथिरियम माइक्रोप्टेरम का आवास 3. एथिरियम पेक्टिनेटम का आवास
4. *एथिरियम एटकिन्सोनाई;* 5. *ए. माइक्रोप्टेरम;* 6. *ए. रूब्रीकोली* की बीजाणुधानियां

''नागलिंगम'' वृक्ष का महत्व : एक पुनरावलोकन

रसानन्द कार, भावना जोशी, अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं ए. ए. अंसारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

नागलिंगम समान्यत: दक्षिण अमेरिका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाता है तथा इसकी जन्म भूमि गुआना क्षेत्र है। भारत में इसे कई सदियों पहले लगाया गया। इसकी संख्या बहुत ही कम है अत: भारत के लिए यह वृक्ष एक दुर्लभ वृक्ष है। इसका वनस्पतिक नाम *''कोउरोपिटा गुइआनेन्सिस''* और यह लेसीथिडेसी कुल का सदस्य है। वर्ष 1,755 में फ्रेन्च वनस्पतिज्ञ जे. एफ. आउबल ने सर्वप्रथम इसकी खोज की थी। *''काउरोपिटा गुइआनेन्सिस''* दो शब्दों से मिलाकर बना है जिसमें *''कोउरोपिटा''* गुआना में इसका स्थानीय प्रचलित नाम तथा ''गुइआनेन्सिस'' इसके जन्मभूमि गुआना क्षेत्र पर आधारित है। इसको हिन्दी भाषा में नागलिंगम, अंग्रेजी में ''केनन-बाल-ट्री'', बंगला में नागलिंगम (कमान गोला) तथा कन्नड, मराठी, तमिल व मलयालम में लिंगड़ा मारा, शिवलिंगम, नागलिंगम रोचक से भी जाना जाता है।

वर्णन : नागलिंगम लगभग 33 मी० तक ऊँचा व 0.8 मी० की परिधि वाला पर्णपाती वृक्ष है। इस वृक्ष के ऊपर की तुलना में नीचे का भाग अधिक मोटा होता है। इसकी छाल भूरे रंग की तथा शाखाएं लम्बी व सीधी होती हैं। इसकी पत्तियाँ लम्बी हस्ताकार, साधारण व इसका किनारा आरीदार होता है तथा इसकी डण्ठल क्रमश: 0.5-3 से. मी. तक व पत्तियाँ गुच्छों में लगती हैं। इसमें असीमाक्षी यानी तने से निकलने वाला पुष्पक्रम पाया जाता है जो लगभग 60-90 से. मी. लम्बा होता है। इसमे 12-14 संख्या में पुष्प जो मुख्य तने के नीचे के भाग एवं शाखाओं से निकलते हैं। इसके पुष्प में मोटे-मोटे 6 दल (लगभग 5 से. मी. तक लम्बे) पाये जाते हैं जो कि मजबूती से जुड़े रहते हैं। इसके फूल गुलाबी, सफेद व पीले रंग के होते हैं तथा इन फूलों से मन-भावन खुशबू आती है और देखने में अति सुन्दर व आकर्षक होते हैं। इसके फल अधिक संख्या में व वजनदार (भारी) होने के कारण तने पर मजबूत डण्ठल से जुड़े होते हैं। इसके फल 8 से 9 महीने के बीच में पक जाते हैं। यह फल नारियल के आकार के गहरे भूरे रंग के होते हैं तथा बीज की संख्या 200 - 300 तक होती है। स्वाद में यह फल खट्टा होता है। इसका छिलका भी बहुत कड़ा व सख्त होता है।

पुष्पन एवं फलन : मुख्यत: मार्च से अगस्त तक फूल एवं फल आते हैं। कहीं-कहीं पर वर्ष भर पुष्पन एवं फलन देखने को मिलता है। इसमें परागण की क्रिया मधुमक्खियों द्वारा संपन्न होती है।

आकर्षक गुण : इस वृक्ष के आकर्षण तथा आश्चर्य का मुख्य केन्द्र इसका ''शिव लिंग'' जैसा जायांग, ''नाग - फण'' की तरह पुंकेशर तथा ''तोप के गोले'' जितने बड़े आकार के फल हैं, जो तने के ऊपर लटके रहते हैं। नागलिंगम वृक्ष का असीमाक्षी पुष्पक्रम, मुख्य तने व शाखाओं से निकलता है जो अत्यन्त अलौकिक व विलक्षण के साथ-साथ सुगन्धित भी होते हैं।

धार्मिक महत्व : नागलिंगम के वृक्षों को हिन्दू और बौद्ध मंदिरों के आस-पास लगाया जाता है। यह वृक्ष मुख्यत: हिन्दुओं द्वारा शिव भगवान के मंदिर के पास लगाया जाता है। हिन्दी में इसके फूलों को ''शिव कमल'' एवं ''कैलाशपति'', तेलगू में ''नागमणि'' अथवा मल्लिकार्जुन भी कहा जाता है। कुछ लोगों का मानना है कि यह वृक्ष आत्माओं से सुरक्षा प्रदान करता है। एशिया महाद्वीप में फूलों व फलों को संपदा का सूचक माना जाता है।

व्यवहारिक महत्व : इस वृक्ष की लकड़ी मुलायम होने के कारण ईंधन के रूप में प्रयोग की जाती है। इसके फल का कठोर छिलका बर्तन के रूप में प्रयोग किया जाता है। दक्षिण अमेरिका के लोग इस फल का गूदा निकालकर इसका पेय पदार्थ बनाकर व्यवसाय भी करते हैं।

औषधीय महत्व : इसकी पत्ती, जड़ तथा छाल भी औषधीय रूप में प्रयोग होते हैं।

1. ''केनन बाल'' की पत्ती, जड़ और छाल में एन्टीबायोटिक व एन्टीसेप्टिक गुण पाए जाते हैं।
2. इसकी छाल का लेप पालतू पशुओं के चर्म रोग चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।
3. इस वृक्ष की पत्तियों के रस का उपयोग सभी प्रकार के बुखार से निजात पाने में किया जाता है।
4. इसकी पत्तियों का रस मानव के चर्म रोग चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

5. सर्दी और पेट दर्द में भी इसकी पत्ती और जड़ का प्रयोग किया जाता है।
6. दॉत के दर्द को ठीक करने के लिए नई पत्तियां को कुछ समय तक चबाने से पूर्ण रूप से आराम मिलता है।
7. फल के भीतरी गूदेदार भाग को घाव के संक्रमण को रोकने के लिए लगाया जाता है।

प्रदूषण की सूचना :

नागलिंगम अपने आस-पास होने वाले प्रदूषण की सूचना तत्काल ही दे देता है। एक बार की एक घटना है दक्षिण अमेरिका में क्लोरीन गैस की एक टंकी फट गई। उस गैस की टंकी फटने पर दो घंटे से भी कम समय में इस वृक्ष की सारी पत्तियां झड़ गई। बाद में पता चला कि इस वृक्ष की पत्तियों का झड़ना गैस रिसाव के कारण हुआ था। इस तरह से जब भी कोई गैस रिसती है तो वृक्ष की सारी पत्तियां झड़ जाती हैं। लेकिन यहाँ हैरत की बात यह है कि अगले 24 घंटों में इसमे नई-नई पत्तियां भी आने लग जाती हैं। अत: इस तरह से ''केनन बाल'' पर्यावरण के प्रदूषण से तुरन्त आगाह कर देता है।

पेड़ लगाओ, पेड़ बचाओ।
मानव का अस्तित्व बचाओ।।
ऐसी उन्नति से क्या लाभ?
जीवन हो जाये अभिशाप।।

'गूलर' का महत्व : पुनरावलोकन

ए.ए.अंसारी एवं भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

भारतीय उपमहाद्वीप की धरती पर चिर परिचित सर्वत्र उगने वाला वट पादप 'गूलर' श्वेत तथा अति चिपचिपा द्रव संग्राहक विशाल आकारधारी एवं छायादार वृक्ष है। श्वेत द्रव को गूलर का दूध अथवा गोंद कहा जाता है। यह उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध, हिमालय के तराई क्षेत्र, राजपूताना, मध्य तथा दक्षिणी भारत के क्षेत्र, अधिक वर्षावाले वनों एवं सबसे कम वर्षा वाले वनों, पहाड़ी एवं पठारी भू-भागों में विकसित होनेवाला तथा स्वत: शीघ्रता से बढनेवाला वृक्ष है।

यह वृक्ष संस्कृत में उदुम्बर, सदाफल अंग्रेजी में गुलार फिग, क्लस्टर फिग, हिन्दी में गूलर, उमार, गुजराती में अम्बर, मराठी में दधुरी, रूमदी, बंगला में लोवा, ईबा, उड़ीशा में डुमरी, तेलेगू में पैदी, उदम्बरामु, तमिल, मलयालम एवं कन्नड़ में एत्ति नाम से वर्णित है।

गूलर की उपयोगिता का वर्णन सुश्रुत संहिता, चरक संहिता, द्रव्यगुण विज्ञानम्, वनस्पति चन्द्रोदय, अभिधानमंजरी, भावप्रकाशम, राजनिघन्टु, मदनदिनिघन्टु, धनवन्तरीनिघन्टु, कल्यदेवनिघन्टु, गुणपदम् आदि ग्रंथों में किया गया है।

वनस्पतिक अध्ययन :

गूलर मूलत: वट कुल मोरेसी के फाइकस वंश का सदस्य है। इसका वैज्ञानिक नाम *फाइकस रेसिमोसा* (*फाइकस ग्लोमेराटा*) है। वट कुल के अन्य पादपों के समान इसका वृक्ष भी भूगर्भीय जल को अत्यधिक मात्रा में अवशोषित करता है। इसकी पत्तियां गहरे हरे रंग की तथा चमकदार होती है जो कि प्रतिदिन अधिक मात्रा में ऑक्सीजन का निर्माण करती हैं। इस पादप के फूलने-फलने का समय अप्रैल से जुलाई तक होता है। मार्च के महीने में नई पत्तियां आती हैं जो देखने में अति सुन्दर, कोमल व पूरे वृक्ष को आकर्षक व मनमोहक दृश्य प्रदान करती है। इसके कच्चे पुष्पांग चिकने एवं कठोर होते है जिसे फिग (हाइपैन्थोडियम) कहा जाता है। इसके अन्दर ही अनगिनत पुष्प होते हैं जो अति सूक्ष्म होने के कारण अदृश्य होते है, जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से ही देखा जा सकता है। इसके अन्दर ही 'फिग वास्प' नामक कीट द्वारा परागण की प्रक्रिया संपन्न की जाती है। इसके पके फल भूरे रंग के खूशबूदार, सन्तरे की तरह मुलायम एवं स्वाद में मीठे होते है। गूलर की जडें, पत्तियां छाल, फल एवं दूध पारंपरिक औषधियों के रूप में ग्रामीणों द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं। इसके छाल की मोटाई 05-2 सेमी. तक इसकी रेशेदार लकड़ी अन्य वृक्षों की भांति मजबूत, टिकाऊ एवं आकर्षक तो नहीं होती है, फिर भी विभिन्न कार्यो हेतु उपयोग में लाई जाती रही है।

गूलर पादप जातियों का विस्तृत अध्ययन करने वाले सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राक्सबर्ग, ब्रान्डिस, कुर्ज, बड्डोम, गैम्बुल, स्टीवर्ट, इलियट, पावेल, किंग, वाटसन जैसे वैज्ञानिकों की कृतियां वर्तमान एवं भविष्य में किये जाने वाले शोध कार्यो के प्रति प्रमुख सन्दर्भ स्त्रोत हैं।

परंपरागत आर्थिक उपयोगितायें :

1. नाविकों द्वारा नावों के निर्माण में इसकी ताजी लकड़ी का उपयोग किया जाता रहा है। इसकी लकड़ी गोंदनुमा चिपचिपा द्रव / दूध धारी होने के कारण पानी में अधिक टिकाऊ होती है तथा वजन में भारी होने से नाव भी समान दशा में स्थिर रहती है।
2. इसकी रेशेदार लकड़ी को सिंचाई एवं पेय जल हेतु खोदे गये कच्चे कुओं की तली को पक्का करने के लिये कृषकों तथा आम लोगों द्वारा उनकी प्रारम्भिक बुनियाद के नीचे सांचे के रूप में (निवाड़ के रूप में), धान की कुटाई करने की ढकुली बनाना एवं खेतों की जुताई के बाद समतलीकरण हेतु पाटा या पटेला के रूप में अधिकता से उपयोग किया जाता है।
3. ईटों को पकाने हेतु कोयले के स्थान पर भट्टियों में गूलर के तने एवं मोटी डालियों का उपयोग प्रचुरता से किया जाता है।
4. जंगलों में कुछ जन-जातियों द्वारा शिकार करने के लिए तथा बहेलियों द्वारा पक्षियों को पकड़ने के लिए गूलर के चिपचिपे गोंद/दूध का उपयोग सर्वाधिक किया जाता रहा है।
5. गूलर की पत्तियां एवं टहनियॉ लाख उत्पन्न करने वाले कीटों को अधिक पसन्द होती है तथा इनके द्वारा इसी वृक्ष पर लाख का उत्पादन भी अधिक किया जाता है। इस प्रकार लाख प्राप्त करने के लिए गूलर के वृक्ष का संरक्षण करके लाभ कमाया जा सकता है।

6. गूलर की छाल से अच्छी किस्म की 'काली डाई' बनाई जाती है।
7. गूलर के पौधे से अच्छी किस्म की बोन्साई भी बनाई जा सकती है तथा आर्थिक लाभ संभव है।
8. इसकी पत्तियां पालतू मवेशियों जैसे गाय, बकरी, भेड़ आदि के लिए चारे के रूप में उपयोग की जाती हैं।
9. इसके कच्चे फलों को सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।
10. लकड़ी का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, शादी विवाह, व्रतबंध एवं मुण्डन संस्कार, आदि में होता है।

परंपरागत औषधीय उपयोगितायें :

1. मुंह के आन्तरिक भाग गलफड़ों तथा जीभ के आस-पास उत्पन्न छालों /दानों पर गूलर के ताजे दूध का लेपन करने से लाभ मिलता है तथा छाले प्राय: ठीक हो जाते हैं।
2. गूलर के ताजे दूध को फटी हुई एड़ियों एवं तलवों पर लगाने से घाव ठीक हो जाते है।
3. गूलर के एक चम्मच ताजा दूध, गाय अथवा बकरी के दूध में मिलाकर, इसकी कोमल जड़ों को पीसकर सेवन करने से तथा छोटे फलों को उबालकर बिना मसाले की सब्जी खाने से पतला दस्त, पेंचिस, आंव अधिक उल्टी होना, हैजा, आदि में लाभ मिलता है।
4. गूलर के तने की छाल को पानी में उबालकर पीने से पेचिस एवं पतला दस्त ठीक हो जाता है तथा इससे फोड़े-फुन्सी के घावों को तथा कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, आदि के काटे हुए घावों को धोते हैं।
5. गूलर की कोमल पत्तियों का चूर्ण शहद के साथ मिलाकर तथा कोमल फलों की साधारण सब्जी बनाकर सेवन करने से पित्त विकार एवं मधुमेह में लाभ मिलता है।
6. पके हुए फलों को खाने से तथा पके फलों का शरबत बनाकर पीने से मधुमेह में लाभ मिलता है। पेट तथा आंतों को ठंडक मिलती है तथा पेट की खराबी, मूत्र एवं रक्त संबंधी बिमारियां दूर होती हैं।

सामाजिक अवधारणा :

प्राचीन काल से गूलर के प्रति विविध सामाजिक भ्रान्तियां, किंवदन्तियां, अन्धविश्वास एवं जनश्रुतियां प्रचलित हैं। जिसके कारण इस वृक्ष को अनिष्ट सूचक माना जाता रहा है और परिवेश में स्वत: उगने वाले इसके पौधों को परिपक्व होने से पहले जड़ से उखाड़ दिया जाता है। कहा जाता है कि 'गूलर' वृक्ष के ऊपर ही मृत्यु के देवता यमराज का आश्रय स्थान है तथा मृतात्माओं को साथ में लेकर निवास करता है। इसकी छाया में बैठने अथवा इसके नीचे से गुजरने पर मृतात्माएं अमुक व्यक्ति के शरीर पर सवार हो जाती हैं इस कथानक को बैताल पच्चीसी नामक कहानी से भी जोड़कर कहा जाता है, क्योंकि बैताल एक शव था। वह जिस वृक्ष की डाल पर बैठता था, शायद वह गूलर का वृक्ष था। अन्धविश्वासों के कारण यह वृक्ष उपेक्षित माना जाने लगा तथा निर्दयता पूर्वक इनकी कटाई कर दी गई जिससे परिवेश में इनकी उपस्थिति भी दिनोंदिन कम होती गई। उक्त जनश्रुतियों का कोई वैज्ञानिक आधार एवं किसी भी प्रकार का लिखित प्रमाण अभी तक किसी के पास नहीं है।

मध्यकाल से स्वतंत्रता प्राप्ति तक देश की धरती पेड़-पौधों से सुसज्जित होकर वन तथा वन्य जीव जन्तुओं से भरी हुई थी। प्रत्येक गांव का सीधा रास्ता जंगलों से जुड़ा था। वनों के ऊंचे घने वृक्षों से गुजरती हवाओं के झोकों की सनसनाइट, शेर, चीते, भेड़िये, लकड़बग्धे, आदि हिंसक वन्य जीवों की गर्जना, हाथियों एवं गैडों की चिघाड़, चीतल हिरणों तथा बारहसिघों का कुलाचें भरना, उल्लू, भूरा, धनेश, रंगीन धनेश, तीतर, बटेर, मैना, तोते, कबूतर जैसे पक्षियों तथा शृगाल, गीदड़ परिवार की डरावनी आवाजें तथा कीट-पतंगों की गुनगुनाहट सूदूर बसे गांवो तक सुनाई देती थी। वन्य जीवों के परिवार के भोजन, आश्रय हेतु वट कुल पादपों के सदस्य बरगद, पीपल, पाकड़, अंजीर, गूलर, आदि वृक्षों की उपस्थिति से जंगल सदैव भरा हुआ एवं जागृत रहता था। लेकिन वर्तमान समय में प्राकृतिक वनों तथा सामाजिक वानिकी द्वारा तैयार किये गये वनों में उक्त वृक्षों को निकृष्ट मानते हुए कोई विशेष महत्व नहीं दिया जा रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रकृति एवं जैव-विविधता के संरक्षण में वट कुल के समस्त सदस्य वृक्षों का विशेष योगदान होता है।

नीम का औषधीय एवं आध्यात्मिक महत्व

भावना जोशी, अर्जुन प्रसाद तिवारी एवं ए. ए. अंसारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

नीम भारत का सुपरिचित, उष्णकटिबंधीय सदाबहार वृक्ष है, जो भारत का मूल निवासी है। नीम अपने औषधीय गुणों के कारण अन्य दक्षिण पूर्वी देशों में भी पाया जाता है। यह एक विशाल वृक्ष है जो लगभग 15-20 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ता है लेकिन कभी कभी कई क्षेत्रों में यह 25-35 मीटर की ऊँचाई तक भी बढ़ जाता है। इसकी पत्तियाँ संयुक्त पिच्छाकार भाला की तरह दाँतेदार नुकीली होती हैं। उनमें अनेक छोटे पत्रक होते हैं। नीम के फूल मार्च से मई तक लगते हैं। ये फूल छोटे, सफेद, सुगंधित तथा सितारों के आकार के दिखाई देते हैं। इसके फूलों की तरफ आकर्षित होकर छोटे-छोटे कीट, मधुमक्खियों इसमें परागण की क्रिया को संपन्न करते हैं। नीम के फल सरस, तथा लगभग 2 सेमी. तक लंबे होते हैं। कच्चा फल हरे रंग और पका फल पीले रंग का होता है। फलों में एक बीज पाया जाता है।

भौगोलिक वितरण : नीम भारतीय प्रायदीप में स्वाभाविक रुप से उगता है। इसके अलावा अन्य देशें जैसे कि नेपाल, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, थाईलैण्ड एवं मलेशिया में भी पाया जाता है। भारत में यह मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, महाराष्ट्र मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, झारखण्ड, गुजरात व तमिलनाडु तथा अन्य राज्यों में भी पाया जाता है। यह विशेष कर नगरों तथा सड़कों के किनारे भी लगाया जाता है।

पारिस्थितिकी : यह एक उष्णकटिबंधीय वृक्ष है जो कि सूखी गहरी रेतीली मिट्टी एवं 400-1200 मिमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों पर अच्छी तरह से पनपता है। यह बहुत उच्च तापमान को और 4° से. ग्रेट. से नीचे तापमान को सहन नहीं करता है। यह वृक्ष भारत और पाकिस्तान के सूखे व तटीय दक्षिणी जिलों में विशेष रूप से पाया जाता है। युवा नीम का पौधा अत्यधिक ठंड बर्दाश्त नहीं कर सकता है।

खेती : नीम का वृक्ष आसानी से शुष्क, पथरीली और मिट्टी में उग जाता है। इनको थोड़ा पानी और सूर्य के प्रकाश की जरुरत होती है। पहले वर्ष के दौरान यह धीरे-धीरे बढ़ता है। कलमों के माध्यम से भी इनको प्रचारित किया जा सकता है।

औषधीय उपयोग :

बीज :

नीम के बीजों से तेल निष्कर्षण के बाद बचे अवशेषों को मिट्टी संशोधन के लिए प्रयोग किया जाता है। यह मिट्टी में न केवल कार्बनिक पदार्थ के साथ मिट्टी को समृद्ध करता है बल्कि नाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रोजन नुकसान में आने वाली बाधा को भी कम करता है।

नीम के बीज से तेल निकाला जाता है, जिसका औषधीय गुणों और कीटनाशी गुणों के कारण हजारों वर्षों से कीट नियंत्रण तथा सौदंर्य प्रसाधन दवायें बनाने में इस्तेमाल किया जाता रहा है।

इसके फल और बीज छोटे पीले अंडाकार आकार के होते हैं तथा स्वाद में कड़वे होते हैं। नीम के बीज के तेल के चिकित्सकीय परीक्षण ने सिद्ध किया है कि यह बाहरी गर्भ निरोधक के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।

फूल :

नीम पर हल्के बादामी रंग के फूल आते हैं, जो खाए जाते हैं। यह उत्तेजक के रूप में काम करते हैं। नीम के फूल की उत्कृष्ट चटनी बनायी जाती है जो उल्टी, मतली या खट्टी डकार, बेहोशी और भोजन के लिये अरुचि दूर करने में प्रयोग होती है। इसके फूल चावल, रोटी व पराठे के साथ भी मिलाए जाते हैं।

पत्तियाँ :

नीम के पत्ते को सीधे एक पेस्ट के रुप में त्वचा पर उबटन के रूप में लगाया जाता है। इसके पत्ते को पानी में भिगोकर स्नान करने से चेचक और मस्सा के उपचार में लाभ होता है।

नीम का उपयोग कई रोगों जैसे कि मुँहासे, छालरोग के रूप में, त्वचा संक्रमण, खुजली, एक्जिमा के साथ-साथ एड्स, कैंसर, हृदय रोग, दाद, एलर्जी, अलर्जी, अल्सर, हेपेटाइटिस, मधुमेह, आदि में किया जाता है।

इसकी पत्तियाँ का उपयोग स्वास्थ्य और सौंदर्य की देखभाल के उत्पादों के निर्माण करने के लिए किया जाता है। इस तरह के उत्पादों

में से कुछ साबुन, पाउडर, शैंपू, लोशन, क्रीम, टूथपेस्ट, आदि हैं।

डाक्टरों द्वारा कहा जाता है कि नीम के पत्ते आँखों के लिए उत्कृष्ट होते हैं। भारतीय गावों में दावा किया गया है कि अगर आप सिर्फ दोपहर भोजन से पहले थोड़ा सा गर्म चावल, (एक मुट्ठी),घी मक्खन और नीम का सूखा पाउडर एक चम्मच रोज लें तो जहरीले साँप द्वारा काटे जाने पर भी मृत्यु नहीं होगी। इसके पत्ते छाल और जड़ों से गढ़वाल व कुमाँयू में कड़क चाय ''ढोलरु'' तैयार की जाती है जिसका ज्वरनाशक व सर्दी जुकाम के इलाज के लिये प्रयोग किया जाता है।

नीम का भारतीय चरवाहों द्वारा, एक प्रभावी लेकिन सौम्य पशु चिकित्सा प्रलेप के रूप में प्रयोग किया जाता है। 16 वीं सदी के पुर्तगाली वनस्पतिशास्त्री 'गार्सिया दा ओरया' के अनुसार यह एक मूल्यवान वृक्ष है। उन्होंने बताया कि नींबू के रस के साथ नीम की पत्तियाँ मिलाकर घोड़े के तले और पीठ के घावों पर रखने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है।

भारत के कुछ राज्यों मे नये साल की शुरुआत के समय चैत्र शुक्ल और माघ के प्रथम पखवाड़े के दौरान नीम के पत्ते के उपयोग कृमियों के निवारण हेतु होता है। यदि आप दैनिक रूप से नियमित नीम के पत्ते का सत् प्रयोग करें अथवा तेल का लेप करें तो मच्छर नहीं काटते।

छाल :

नीम की छाल में विरोधी आवधिक कड़वा कसैला टॉनिक होता है, जिसको जलाने से यह हवा को शुद्ध और कीड़े मुक्त रखता है। लौंग, दालचीनी और पानी से बना काढा एक टॉनिक के रूप में कार्य करता है और आंतरिक बुखार,भूख ना लगना, मलेरिया बुखार व सामान्य दुर्बलता के बाद स्वास्थ्य लाभ में उपयोग किया जाता है। नीम के वृक्ष की छाल और तेल उत्तेजक, पूर्तिरोधी और कीटनाशक हैं जो कि दीमक तथा अन्य कीटों के खिलाफ सुरक्षा के लिए प्रयोग किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये मूल्यवान लाल देवदार के पौधों में क्वींसलैंड (आस्ट्रेलिया) में पाये जाने वाले कीट के खिलाफ रक्षा के लिए इंजेक्ट किया जाता है तथा बीज के शेष भाग को उर्वरक के रुप में प्रयोग किया जाता है।

शाखाएँ :

नीम के दातून को भारत और अफ्रिका में टूथब्रश के रुप में उपयोग किया जाता है। भारत में ग्रामीण नीम की पतली शाखाओं को टूथब्रश और टूथपेस्ट के रुप में उपयोग करते हैं। दातून का संस्कृत में अर्थ दाँत से है। इसका एक छोर मुलायम होता है। यह दाँत को साफ और मसूड़ी को रोगाणु-मुक्त करता है। इसकी छाल दांत दर्द के लिए उपयोग की जाती है। कुछ नीम की पत्तियाँ दैनिक चबाने से पायरिया नामक बीमारी खत्म हो जाती है।

नीम का अर्क :

अनुसन्धान के निष्कर्षो के आधार पर नीम की पत्ती के अर्क और बीज से गर्भ निरोधक दवा बनाने का कार्य किया जा रहा है। अमेरिकी पर्यावरण संरक्षण एंजेसी द्वारा विभिन्न शोध अध्ययनों ने साबित किया है कि नीम की पत्ती का अर्क 200 से अधिक विषाक्त कीड़ों से फसलों की सुरक्षा करने की क्षमता रखता है।

माँ काली : उत्तर प्रदेश के लोगों का मानना है कि नीम के वृक्ष में माँ काली का निवास होता है अत. नवदुर्गा में इस वृक्ष की पूजा की जाती है। पुराने समय में देवी देवताओं के मंदिर नहीं होते थे अत: छाया देने के कारण इसे छाया देवता का अवतार माना जाता हैं। तमिल महिलायें भी माँ काली की पूजा करती हैं। एक हजार साल पुरानी परंपरा है कि गर्मियों के महिनों के दौरान अप्रैल से जून तक, तमिलनाडु के मरिअम्मन मंदिर में मरिअम्मन त्योहार मनाया जाता है जिसमें नीम की पत्तियों और फूलों का उपयोग किया जाता है। देवी मरिअम्मा की प्रतिमा को नीम की पत्तियों और फूलों के साथ माल्यार्पण किया जाता है। नीम की पत्तियों का गुच्छा घर में इस देवी की उपस्थिति के संकेत के रूप में दरवाजे के ऊपर लटका दिया जाता है।

पोंगल : दक्षिण भारत में नये साल की शुरुआत के उत्सव के दौरान नीम के पत्ते मिलाकर मीठा चावल तैयार किया जाता है। जिसे पोंगल कहा जाता है।

अंतिम संस्कार : उत्तरी भारत में हिंदू परिवार में किसी की मृत्यु के बाद दसवें दिन पूरा परिवार अंतिम संस्कार में भाग लेने के बाद

पहले भोजन में नीम के पत्ते मिलाते हैं क्योंकि नीम की पत्तियों द्वारा शमशान से लौटने पर मृतकों की आत्माओं से लोगों की रक्षा होती है, एसी मान्यता है।

चेचक सुरक्षा हेतु : लोक देवी शीतला की छवि को अक्सर नीम की पतली शाखाओं में देखा जा सकता है जो चेचक से सुरक्षा में सहायक होते हैं।

शादी की सजावट : समारोह और शादियों के अधिकांश अवसरों के दौरान लोग सजावट के रूप में नीम की पत्तियों और फूलों के साथ अपने घर और परिवेश को सजाते हैं जो बुरी आत्माओं के संक्रमण से बचाता है. रामायण कथा के अनुसार राम के वनवास समाप्त होने के बाद घर लौटने पर अयोध्या के लोग बहुत खुश थे इस उपलक्ष्य पर उन्होंने पूरी नगरी को फूलों और नीम की शाखाओं से सजाया था।

जादू टोने से मुक्ति : नीम का प्रयोग जल्द से जल्द आत्माओं और जादू छुड़ाने के लिए किया जाता है। नवजात शिशु की संक्रमण से सुरक्षा हेतु महाराष्ट्र और गुजरात में औरत प्रसूति कक्ष के दरवाजे के पास मिट्टी के बर्तन में गाय का मूत्र व नीम के पत्तों को डालकर रखा जाता है। यह परम्परा ब्राह्मण समाज में आज भी है और यह समझा जाता है कि जब कोई भी व्यक्ति कक्ष में प्रवेश करता है तो अपने पैरों पर टहनी के साथ गौमूत्र पैरों में छिड़क कर ही अन्दर प्रवेश करता है।

नवजात की सुरक्षा करने के लिए नीम की पत्तियाँ बिस्तर पर रखी जाती हैं। ये अधिक ऑक्सीजन उपलब्ध कराती हैं। यह विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए आसान उपाय माना है, इसलिए घरों में दक्षिण की ओर तथा अस्पतालों के मैदानों में इसे उगाया जाता है।

पीपल और नीम : तमिलनाडु में पीपल और नीम का पेड़ एक दूसरे के इतने करीब होता है कि वे नाग की मूर्ति के रूप में दिखाई देते है। अत: इसे 'नागफल' कहा जाता है। मान्यता है कि, महिलाओं द्वारा सुबह स्नान करके इनके चक्कर लगाने से बाँझ स्त्री भी गर्भवती हो जाती है। इस प्रकार गर्भाधान के इस उद्देश्य के पूरा होने के बाद प्रतिज्ञा के रूप में साँप मंदिर में बना देते हैं और जो बच्चा पैदा होता है उसे नागप्पा नाम दिया जाता है।

नीम और सूरज : भारत के लगभग हर हिस्से में आप नीम को देख सकते हैं। घर पर लगाये नीम के वृक्ष को स्वर्ग का मार्ग कहा जाता हैं। नीम के वृक्ष और सूरज की कहानी काफी प्रचलित है, इसके अनुसार एक वैरागी ने सूर्य भगवान के दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया पर भोजन बनते रात हो गयी और अंधेरा हो गया। बैरागी को डर लगा कि अब क्या होगा लेकिन सूर्य भगवान नीम के वृक्ष से उतरे और भोजन के समय में उजाला कर दिया। इन्हीं सब कारणों से नीम के वृक्ष को पुरुष माना जाता है इसलिए उस दिन से राजस्थान में महिलायें नीम के पास से गुजरने पर घूघंट कर लेती हैं ताकि पर पुरुष की नजर उन पर न पड़े।

पेड़ की शादी : भारत के कुछ राज्यों में लड़की की शादी से पहले एक समारोह में नीम के पेड़ की शादी बरगद के पेड़ के साथ की जाती है। नीम लड़की का प्रतिनिधित्व और बरगद उस के पति का प्रतीक होता है। अगर वह पति का नसीब खोता हुआ महसूस करती है तो बरगद द्वारा अपना भाग्य हस्तांतरित किया जाएगा जिससे उसका पति मर नहीं पाएगा ऐसी मान्यता है।

भगवान जगन्नाथ : उड़ीसा में नीम का वृक्ष विशेष रूप से प्रतिष्ठित है। कुछ आध्यत्मिक प्रयोजनों के लिए भगवान जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियाँ नीम के वृक्ष के तने से बनायी जाती हैं। रथ यात्रा के दौरान रथ को सड़कों के माध्यम से एक वर्ष में एक बार घुमाया जाता है। भगवान जगन्नाथ की नई मूर्तियाँ हर बारहवें वर्ष लकड़ी पर बनायी जाती है। मूर्तियों के नवीनीकरण की तारीख से कुछ महिने पहले पुरी में जगन्नाथ मंदिर के मुख्य पुजारी को जगन्नाथ की मूर्ति के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले नीम के वृक्ष के स्थान के बारे में एक सपना आता है। इस नीम के वृक्ष को 'लॉग दारू' ब्रह्मा निर्माता वृक्ष भी कहा जाता है। इन वृक्षों छाल पर कृष्ण, बलराम और सुभद्रा की स्पष्ट छापों के साथ ही भगवान विष्णु के चार प्रतीक के साथ शंख चक्र गदा कमल चिह्नित देखे जा सकते है। इस तरह के नीम के वृक्ष को भगवान जगन्नाथ की छवियों को उत्कीर्ण करने के लिये उपयोग किया जाता है।

जटामांसी के औषधीय उपयोग एवं संरक्षण नीति

पुष्पी सिंह एवं आरती गर्ग
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद

हमारे साहित्य में जड़ी बूटियों द्वारा असाध्य से असाध्य रोगों की चिकित्सा, अनेक चमत्कारी औषधीय पादपों एवं अविश्वसनीय घटनाओं के विवरण मिलते हैं। जटामांसी ऐसा ही सुपरिचित औषधीय पौधा है, जो जड़ी-बूटियों में विशेष रूप से विख्यात है। इसके औषधीय गुणों की व्याख्या धन्वन्तरिनिघन्टू तथा रजनीनिघन्टू में है :

मांसी स्वादु कषाया स्यात्कफपित्तास्त्रनाशिनी।
विषमारूतहृत् बल्या त्वच्या कान्तिप्रसादनी।। (धन्वन्तरिनिघन्टू)
सुरभिस्तु जटामांसी कषाया कटुशीलता।
कफहृत् वातदाहनी पित्तहघ्नी मोदकान्तिकृत।। (रजनीनिघन्दु)

वनस्पतिक विवरण : वेलिरियेनेसी कुल के इस पुष्पी पौधे की (वैज्ञानिक नाम *नार्डोस्टाचिस ग्रांडीफ्लोरा*) जड़ों का आकार विशिष्ट होने के कारण संस्कृत तथा हिन्दी में इसे जटामांसी अर्थात हिमालयो संन्यासियों के उलझे हुए बाल सदृश नाम से सुशोभित किया गया है। अंग्रेजी में यह डंडीयन स्पाइकनारड, मसक रूट, नार्ड आदि के नाम से जाना जाता है।

भारतीय भू-भाग में समुद्र तल से 3300-5000 मीटर तक की ऊँचाई पर हिमाद्रि वन में उगने वाला यह पौधा जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड तथा दक्षिण-पश्चिम चीन, नेपाल और भूटान में पाया जाता है।

10-16 सेमी. तक की ऊँचाई वाले इस सुरभित बारहमासी पौधे की पत्तियां आयताकार व अण्डाकार भाले के आकार की 15-20 से.मी. लम्बी तथा 2.5 से.मी. चौड़ी होती है। नीचे वाले पत्ते पतले लम्बे तथा ऊपर के छोटे होते हैं। इसके पुष्प सफेद व गुलाबी-बैगनी रंग के होते हैं। इसकी जड़ें (प्रकन्द) छोटी, कड़ी व मोटी होती हैं। उन पर पुराने पत्तों के डंठलों के काले-भूरे, लाल-भूरे, गुच्छेदार रेशे लगे रहते हैं, जो दाढी जैसे दिखते हैं। यह सुगंधित, कड़वा तथा कसैला होता है। इन्हीं जड़ों के लिए इस पौधे की अत्यधिक मांग है। इन जड़ों को निकालकर सुखा लिया जाता है एवं बाजार में पहुँचाया जाता है।

इसमें पाए जानेवाले रासायनिक तत्वो जैसे-इसके जड़ और भौमिक कन्द में जटामेंसान जटामासिक एसिड, एक्टीनिडीन, टरपेन, एल्कोहल, ल्यूपियाल, जटामेनसोन और कुछ उत्पत्त तेल पाए जाते हैं।

जटामांसी के औषधीय गुण : जटामांसी अति गुरुत्वपूर्ण औषधीय पादप है। विशेषकर औषधि इसके प्रकंद (राइजोम) से प्राप्त होती है। जिसमें अनेक व्याधियों के निवारण की आश्चर्यजनक क्षमता है। इसकी जडें व प्रकंद को सुखाकर दवा बनती है। यह जड़ी बूटी मस्तिष्क टॉनिक, मन की शान्ति, मानसिक मंदता तथा मानसिक विकारों के उपचार मे मदद करती है। शरीर में पाचन नियमित और शरीर की कमजोरी दूर करती है। मस्तिष्क और नाड़ियों के रोगों के लिए रामबाण औषधि है।

औषधीय पौधे के रूप में जटामांसी अनेक प्रकार से उपयोगी है। यह त्रिदोषो को शान्ति करती है। सन्निवात के लक्षण को समाप्त करती है। इसका चूर्ण सुगन्धित होने के कारण पसीने मे आने वाली दुर्गन्ध को रोकता है। इसके सेवन से बाल काले और लम्बे होते हैं। इसके काढ़े को नियमित पीने से आँखों की रोशनी बढ़ जाती हैं। दांतों के दर्द में इसका मंजन करने से फायदा होता हैं। इसके नियमित सेवन से भूख बढ़ जाती है। खॉसी और अस्थमा (दमा) में कफ से राहत मिलती है। यह गर्भाशय के डाईस्मेनओरहीआल और सूजन जैसे रोगों में प्रयोग किया जाता है। यह विरोधी विष के रूप में बिच्छू के डंक के लिए प्रयोग किया जाता हैं। मिर्गी और हिस्टीरिया के उपचार में यह जड़ी-बूटी सबसे अच्छी मानी जाती है। इसको खाने व पीने से मूत्रनली के रोग, पाचन नली के रोग, श्वास नली के रोग, गले के रोग, तथा आँखों के रोग दूर होते हैं।

संरक्षण

भारत में जटामांसी का ओद्यौगिक तौर पर अधिक उत्पादन न होने के कारण यह वनों से ही प्राप्त किया जाता है। औषधीय जगत में अत्यधिक मांग के कारण अब इन पौधों को इनके प्राकृतवास से प्राप्त करना कठिन हो गया है। अत: इसके स्थान पर दूसरी प्रजातियों के पौधों जैसे- *वैलीरिना आफिसीनेलिस, सिलीनम वेजीनेटम* आदि के कन्द भी जटामांसी के नाम से बेचे जाने लगे हैं। आयातित जटामांसी का

मूल्य 2000 रूपये प्रति कि.ग्रा. है।

औषधीय गुणों से भरपूर इस पौधे को निरन्तर प्रयोग में लाया जा रहा है। अत्यधिक दोहन किन्तु सीमित उत्पादन के फलस्वरूप यह प्रजाति संकटग्रस्त हो चुकी है। तथा इसे कन्वेशन ऑन इन्टरनेशनल ट्रेड ऑफ इन्डेन्र्जड स्पशीज ऑफ फ्लोरा एण्ड फॉउना (सी.आई.टी.ई.एस.) के परिशीष्ट-2 में (सी टी ई एस. 1997) भी इसे सम्मिलित किया जा चुका है। सीटीईएस का उद्देश्य वर्णित वन्य जातियों का किसी भी रूप में व्यापार पूर्णतया वर्जित करना है अत: विलुप्त होती प्रजातियों की सुरक्षा के योगदान में सी.आई.टी.ई.एस. एक ठोस कदम है। इसके अतिरिक्त जटामांसी के उत्पादन एवं पूर्ति में संतुलन स्थापित करना भी अत्यंत आवश्यक है। इसका उत्पादन अनुकूल जलवायु वाले स्थानों पर किया जा सकता है जहां भरपूर नमी एवं ठंडक रहती है साथ ही प्राकृतवास में भी इसका संरक्षण किया जाना अति-आवश्यक है, ताकि जटामांसी जैसे अद्‌भुत औषधीय पौधे को विलुप्त होने से बचाया जा सके।

1

2

3

1. प्राकृतवास में पौधा, 2. पुष्प 3. प्रकंद (राइजोम)

नागफनी (कैक्टस) : एक परिचय

शिव कुमार
आचार्य जगदीश चन्द्र बोस
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

नागफनी को अंग्रेजी में 'कैक्ट्स' कहा जाता है। इसकी अबतक 2500 प्रजातियाँ पहचानी गई हैं। यह एक प्रकार का मांसलोद्भिद् (गूदेदार या रसदार) पौधा है। साधारणत: नागफनी का मतलब ऐसे पौधे से है जो मरुस्थल में या जहाँ जल की उपलब्धता आसानी से नहीं होती, अत्यधिक तापमान एवं शुष्क वातावरण में पाया जाता है। परन्तु, अपवाद स्वरूप, *इकिनोसेरेयस* तथा *मातुकाना* जाति के पौधे ठंडे वातावरण जबकि *ऑपन्सिया* की कई जातियाँ बर्फ बनने के तापमान पर भी जीवित रह सकती हैं। ये प्राय: पर्ण-रहित, अपने शरीर के अन्दर जल संग्रहित करने के साथ गर्तरोम या एरिओल से युक्त होते हैं। शूल (जो पत्ती का रूपान्तर है) तथा नलिकाकार पुष्प गर्तरोम या एरिओल के बीच से उत्पन्न होता है। कैक्ट्स के बढ़ने के लिए औसतन 2-3 वर्ष का समय लगता है।

कैक्ट्स की कुछ अनियंत्रित एवं विचित्र आकृतिवाली कुरूप जातियां दुर्लभ होने के कारण काफी मूल्यवान होती है। कुरूपता दो प्रकार की होती है-विकट (दैत्याकर) तथा मेड़-नुमा।

'कैक्ट्स' के खोज के उपरान्त, इसके वैज्ञानिक नामकरण एवं वर्गीकरण करने में काफी विवाद एवं मुश्किलें आई। कार्ल लिनियस ने सन् 1737 ई. में इसके दो भिन्न वंश जैसे 'कैक्ट्स' तथा 'पेरेस्किया' बतलाया। परन्तु, सन 1753 ई. में उन्होने अपने 'स्पेसीज प्लांटेरम' में दोनों वंश को मिलाकर एक वंश 'कैक्ट्स' रखा। 'कैक्ट्स' शब्द लैटिन के माध्यम से प्राचीन ग्रीक शब्द 'केक्टोस' (*kaktos*) से लिया गया है तथा थिओफ्रेस्ट्स ने इसे शूल-दार पौधा कहा। सन् 1754 ई. में एक वनस्पतिज्ञ, फिलिप मिलर ने कैक्ट्स वंश को खण्डित कर कई वंश बनाया। सभी वंशों को फिर सन् 1789 ई. में एंटोनि लॉउरेंट डी जुसियस ने नए कुल 'कैक्टेसी' में रखा। सन् 1905 ई. में 'वियाना वनस्पतिक सम्मेलन' में कैक्ट्स नाम को ही अस्वीकार दिया गया तथा बदले में अन्य नाम 'मामिलेरिया' को कैक्टेसी कुल का प्ररुप (टाइप) वंश के रुप में स्वीकृति दे दी गई। बहुतायत, कैक्टेई का नामकरण इन्हें उगाने या फिर उद्यान-वैज्ञानिकों द्वारा किया गया वनस्पतिज्ञों द्वारा नहीं। कहा जाता है कि व्यक्तिगत रुप से कर्ट बैकेबेर्ग ने 1200 जाति का नया एवं पूर्व नाम को बदल कर नामकरण किया तथा किसी भी पौधे के नमूने के साथ अपना नाम नहीं जोड़ा। सन् 1984 ई. में 'अन्तर्राष्ट्रीय मांसलोद्भिद् अध्ययन संस्थान' (इंटरनेशनल ऑर्गेनाईजेशन फॉर सकुलेंट प्लांट्स स्टडी) में कैक्टेसी भाग के लिए एक कार्यकारणी समिति का गठन किया गया ताकि कैक्ट्स का जाति स्तर तक का एकमत वर्गीकरण हो सके। उक्त संस्थान को अब 'अंर्तराष्ट्रीय कैक्टेसी वर्गीकरण विज्ञान संघ' (इंटरनेशनल कैक्टेसी सिस्टेमेटिक्स ग्रुप) नाम से जाना जाता है। इस प्रकार, अब तक इस कुल के अंर्तगत लगभग 130 वंश और 1800 जाति का उल्लेख किया जा चुका है। इन्हें 9 गोत्र (ट्राइब) तथा 4 सह-कुल के अन्दर व्यवस्थित किया गया है।

कैक्ट्स का कोई जीवाश्मिक प्रमाण नहीं है जिससे इसके विकसित होने की जानकारी मिल सके। परन्तु, इसके भौगोलिक वितरण का प्रमाण उपलब्ध है। जाति विविधता के अनुसार ऐसा समझा जाता है कैक्ट्स की उत्पत्ति 10 से 5 मिलियन वर्ष पूर्व मिओसीन के अन्त से लेकर प्लीओसीन तक के बीच हुई है। इसका विस्तार समुद्री मैदान से लेकर ऊँचे पहाड़ी इलाकों तक है। कैक्टेई, मूल रुप से अमेरिका का पौधा है परन्तु इसका फैलाव पटागोनिया से लेकर ब्रिटिश कोलम्बिया तथा पश्चिम कनाडा के अलबर्टा तक है। इसका तीन मुख्य केन्द्र मेक्सिको तथा दक्षिण-पश्चिम संयुक्त राष्ट्र ; दक्षिण-पश्चिम ऐडेस (पेरु, बोलिभीया, चिले तथा आर्जेन्टिना) तथा ऑमेजन से दूर पूर्वोत्तर ब्राजील है। इसका विस्तार मडागास्कर, ऑरीजोना, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रिका के कुछ भागों में भी पाये जाने की जानकारी प्राप्त हुई है। भारतवर्ष में कैक्ट्स के भिन्न जाति को विदेशों से लाया गया जिसकी जानकारी 3-4 दशक पूर्व प्रकाश में आई। आम आदमी के लिए इन्हें पैदा करना या रखना मुश्किल होता। शायद इसी कारण महलों की शान के साथ उनकी शोभा बढ़ाता या फिर इसका प्रदर्शन प्रदर्शनियों तक ही सीमित था। जसवंत निवास महल स्थान के उद्यान में कैक्ट्स आकर्षण केन्द्र है। सजावट करने वाले पौधों में इसे ही प्रमुखता दी

गई। परन्तु साधनों के अभाव एवं चाहने वालों की संख्या में कमी के कारण आर्किड को आगे बढ़ने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। कलिंगपोंग को कैक्ट्स के उत्पत्ति एवं फैलाव का मुख्य केन्द्र समझा जाता रहा है। परन्तु, अब अन्य संस्थानों की स्थापना कर इसके उत्थान, अनुसन्धान एवं संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। अन्य पौधों के साथ-साथ कैक्ट्स के विकास के लिए सन् 1985 ई. में ओडिशा राज्य के अंतर्गत भुवनेश्वर में 'क्षेत्रीय पादप संसाधन केन्द्र' (रीजनल प्लांट रिसोर्स सेंटर) स्थापित किया गया। दो वर्ष बाद, सिर्फ कैक्ट्स एवं मांसलोद्भिद के उत्थान एवं अनुसंधान के लिए एशिया का सबसे बड़ा केन्द्र 'राष्ट्रीय कैक्ट्स, मांसलोद्भिद् वनस्पतिक उद्यान तथा अनुसंधान केन्द्र' (नेशनल कैक्ट्स, सकुलेंट बोटेनिकल गार्डेन एण्ड रिसर्च सेंटर) को सन् 1987 ई. में हरियाणा राज्य के पंचकुला में स्थापित किया गया। आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान के अंतर्गत भी एक 'कैक्ट्स एवं मांसलोद्भिद् संरक्षण गृह' है जिसमें 400 से अधिक पौधों को संरक्षित किया गया है जिसकी स्थापना सन 1990 ई. में किया गया।

'कैक्ट्स' के प्रकार

'आकार, परिमाण तथा पैदा होने के तरीके के अनुसार कैकट्स कई प्रकार के होते हैं जैसे वृक्ष सदृश स्तम्भाकार, गोलाकार, कवलिका (पैड) तथा अधिपादपीय (एपिफाइट)।

वृक्ष सदृश : कैक्ट्स के कुछ जातियों की आकृति अधिकांश कैक्ट्स से काफी भिन्न, सामान्य वृक्ष मतलब एक या एक से अधिक शाखाओं वाली होती हैं। जैसे *पेरेस्किआ* की शाखाएं, छाल एवं दीर्घकालिक पत्तियों से अच्छादित होती हैं। पत्तियां प्रकाश-संश्लेषण का मुख्य केंद्र होती हैं। शूल तथा फूल इन पर अवस्थित गर्तरोम (एरिओल) के मध्य से समयानुकूल उत्पन्न होकर कैक्ट्स के जैसा पहचान देता है। पुष्प का अण्डाशय ऊर्ध्ववर्ती होता है। *पेरेस्किआ* को कैक्ट्स के पूर्वज के रूप में जाना जाता है।

परन्तु, अन्य कई शाखित कैक्ट्स बिना पत्ती एवं छाल के सिर्फ शूल से अच्छादित होते हैं जैसे *पैकिसेरेय्स प्रिंग्लेई* या बृहत ऑपनसिया। कुछ कैक्ट्स परिमाण के अनुसार अशाखित वृक्ष की तरह जैसे *एकिनोकैक्ट्स प्लेटियाकैंथस* तथा कुछ झाड़ी की तरह जिसमें शाखाएं धरातल से सटे मुख्य तने या काफी नीचे अवस्थित शाखाओं से निकलने वाले होते हैं जैसे *स्टेनोसेरेय्स थुर्बेरि*। वृक्ष सदृश कैकट्स जैसे *पैकिसेरेय्स प्रिंग्लेई* की ऊँचाई 19.2 मी. (63 फीट) तथा सबसे छोटे कैकट्स जैसे *ब्लोसफेल्डिया लिलिपुटिआना* की गोलाई लगभग 1 से.मी. (0.4 इं. उल्लेखित किया गया है। बहुतायत, 'कैक्ट्स' का वृद्धि-ऋतु छोटा तथा सुप्तावस्था (डोरमेन्सी) लम्बा होता है। धरातल के ऊपरी सतह से नजदीक इसके जड़-विन्यास के कारण यह वर्षा के आभास मात्र से ही अविलम्ब सक्रिय हो जाता है। बरसात में एक पूर्ण विकसित *कार्नेजिया जाइगेंटी* पौधे में अधिकतम 200 यू. एस. गैलन (760 ली.) पानी जमा हो सकता है।

स्तम्भाकार : छोटा एवं सीधा तना बेलनाकार, शाखित या अशाखित होता है। सामान्यत: स्तम्भाकार कैक्ट्स को वृक्ष सदृश या फिर झाड़ीनुमा कैक्ट्स से अन्तर कर पाना आसान नहीं होता। जैसे *सिफेलोक्लीस्टोकैक्ट्स रिटेरी, सिफेंलोसेरिय्स सेनिलिस* तथा अन्य जाति के छोटे तथा नवजात पौधे स्तम्भाकार होते हैं। परन्तु पूर्ण विकसित पौधे बड़े वृक्ष सदृश होते हैं। कुछ अवस्था में स्तम्भ ऊर्ध्व (खड़ा) के जगह पार्श्व (पट्ट या क्षितिज पर सोया हुआ) होता है जैसे *स्टनोसेरिय्स एरुका* का तना जमीन पर लेटे हुए जिसमें जड़ें बीच-बीच में निकल आती हैं।

गोलाकार या गेंद सदृश : गोलाकार या गेंद सदृश कैक्ट्स का तना काफी छोटा होने के साथ स्तम्भाकार कैक्ट्स से भिन्न होता है। एकल कैक्ट्स इसका मुख्य उदाहरण है जैसे *फेरोकैक्ट्स लैटिस्पाइन्स* जिसे 'फीस-हुक' कैक्ट्स भी कहा जाता है। यह काफी धीरे-धीरे बढने के साथ काफी मात्रा में चुभने वाले शूल धारण करते हैं। इसकी गोलाई 16 से 20 फी. एवं वजन 10 टन तक हो सकता है। छह साल के उपरांत अन्य कैक्ट्स की तुलना में इसमें काफी बड़ा फूल खिलता है। गोलाकार कैक्ट्स के कई एकल मिलकर समूह तथा इन समूहों के मिलने से ये टीलानुमा (पर्वतनुमा) आकृति अपने-आप बनाते हैं जैसे *इकीनोप्सिस केलोक्लोरा* द्वारा। सामान्यत: ऐसे कैक्ट्स का जड़ एक ही होता है।

कवलिका (पैड) सदृश : पर्ण-रहित एवं शूल से अच्छादित तना मुख्यत: कैक्ट्स की पहचान है। तना प्राय: सपाट, चिकना, पसली या बाँसुरीनुमा आकृति के जैसा होता है। यह अपने अन्दर यथासम्भव जल संग्रहित करता है। तना के ऊपर शूल के बीच निकलने वाले कई प्रकार के प्रोद्वर्ध जिसे सामान्यत: 'कन्दुक' या 'गुलिका' ('गाँठ) कहते हैं, से अच्छादित होता है। 'कन्दुक' या 'गुलिका' भिन्न प्रकार के

होते हैं जैसे मामिलेरिया वंश में चूचुक (स्तन का अगला भाग) तथा *एरिओकार्प्स* वंश में यह पत्तीनुमा होता है। पसली या बाँसुरीनुमा दिखने वाला कैक्ट्स का तना जल संग्रहण के परिमाण/अवस्था पर निर्भर करता है।

आरोही और अधिपादपीय (एपिफाइट) : ऊष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों मे कैक्ट्स, आरोही-वन तथा अधिपादपीय की तरह होता है। इनका तना सपाट, पत्ते के सदृश, अल्प या बिना शूल का होता है जैसे *इपिफाइलम ऑक्सिपेटेलम* तथा *इपिफाइलम अंगूलिजर*। आरोही कैक्ट्स काफी बृहत होता है जैसे हाय्लोसेरेय्स लगभग 100 मी. (330 फी.) लम्बा होता है। अधिपादपीय कैक्ट्स जैसे *रिपसालिस* या *स्कूलम्बर्गेरा* ('क्रिसमस कैक्ट्स') ऊँचे वृक्ष के ऊपर से नीचे की तरफ लटकते हुए तथा जमीन से ऊपर घना गुच्छा बनाता है।

नागफनी की संरचना तथा जल संरक्षण के लिये उनमें बदलाव

नागफनी के प्रकार के अनुसार इसकी संरचना अन्य पादपों से काफी भिन्न होती है। ये अपने शारीरिक अंगों में आवश्यकतानुसार केवल जल ही संग्रहित नहीं करता बल्कि उसकी मात्रा में कम ह्रास हो इसके लिए भी यह शरीर में बदलाव लाता है। जैसे अधिकांश कैक्टेई - *ऑपनसिया* तथा कैक्टॉयड गर्म एवं शुष्क वातावरण में जीवित रहने के लिए विशिष्टता हासिल कर लेता है। परन्तु, इसका प्रथम पूर्वज आधुनिक कैक्टेई के रूप में अपने कार्य-कलाप में बदलाव लाकर विरामी अनावृष्टि (इंटरमिटेंट ड्रॉट) को प्राप्त कर चुका है।

कैक्ट्स की कुछ जाति जिन्हें *हाय्लोसेरेयस* तथा *रिप्सेलिडी* गोत्र में रखा गया है ऊष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों (जहाँ जल के संरक्षण की कोई जरुरत नहीं) के जैसा गुण को प्राप्त कर तथा अपने में बदलाव लाकर आरोही, लता तथा अधिपादपीय पौधे के रूप में जीवन-यापन कर रहा है। इस तरह नागफनी के आवश्यक अंगों की संरचना तथा उनमें बदलाव कुछ इस प्रकार है :

जड़ : धरती पर उगनेवाले कैक्टेई में जड़ महीन होता है जो पौधे के निचले हिस्से से कम या अधिक दूरी तक सतह के करीब फैलता है। मूसला जड़ स्तम्भाकार कैक्टेई को खड़े रहने में मदद करता है। जबकि आरोही, लता तथा अधिपादपीय में अपस्थानिक मूल, उपयुक्त माध्यम के सर्म्पक में आये तना के भाग से पैदा होता है। सूखा के बाद बारिश आने पर जड़ अतिशीघ्र निकल आता है तथा इनके द्वारा पानी काफी मात्रा में अवशोषित कर लिया जाता है। औसतन 12 घंटे के वर्षा से 7 मि.मी. (३ इं.) वर्षा का पानी जमा होता है ऐसे में *फेरोकैक्ट्स सिलेंड्रसिय्स* कुछ ही दिनों में जलमय हो जाता है। *कोपिआपो* में मूसला जड़ (टैप रुट) होता है जो तना के आयतन के हिसाब से अधिक जल संग्रहकर काफी अधिक बड़ा हो जाता है।

तना : पर्ण-हरित (क्लोरोफिल) वर्णक की उपस्थिति के कारण कैक्ट्स के तने का रंग हरा, प्राय: नीला-हरा तथा भूरा-हरा होता है। इसके साथ इनमें रन्ध्र (स्टोमाटा) भी पाया जाता है। इस तरह कैक्ट्स में पत्तियों के अभाव में तना द्वारा ही प्रकाश-संश्लेषण होता है। कैक्ट्स के शरीर में 90% पानी होता है तथा इनका आकार जैसे स्तम्भाकार, गोल, पैड या पसली या बाँसुरीनुमा जल की मात्रा पर निर्भर करता है। तना के ऊपर मोम सदृश मुलायम परत के कारण वाष्पोत्सर्जन के क्रिया को कम कर जल-ह्रास से इन्हें बचाता है।

गर्तरोम : कैक्ट्स में गर्तरोम एक अनोखी रचना है। ये तना के ऊपर अवस्थित होता है जिसके बीच से शूल तथा फूल उगते हैं। *पेरेस्किया* में गर्तरोम पत्ती तथा तना के बीच कक्ष में होता है। पत्ती-रहित कैक्टेई में गर्तरोम तना के ऐसे भाग में पैदा होता है जहाँ पत्ती का आधार होना चाहिए। यह अत्यन्त ही विशिष्ट तथा तना या शाखा का संघनित रुप होता है। एक गर्तरोम में तना का गांठ इतना नजदीक होता है कि यह एक अकेली रचना दिखती है। इसकी आकृति गोल, लम्बा, अण्डाकार या दो भागों में विभक्त होने के बाद भी एक-दूसरे से ये जुड़ा हो सकता है। गर्तरोम के ऊपर वाले हिस्से से फूल तथा निचले हिस्से से शूल निकलते हैं। गर्तरोम में बहुकोशिकीय त्वचा रोम होते हैं जिसके कारण ये रोएँ या ऊन जैसा दिखता है। इसका रंग सफेद, पीला या भूरा होता है। ये गर्तरोम अपना काम शुरु के कुछ वर्ष तक ही करते हैं बाद में शिथिल पड़ जाते हैं। इसी कारण हर जाति में शूल की संख्या निश्चित तथा फूल भी तना के अन्त में होता है और यह क्रम अनवरत चलता रहता है। परन्तु, *पेरेस्किया, ऑपन्सिया* तथा *नियोरैमोंडिया* में गर्तरोम काफी लम्बे समय तक अपना कार्य करते रहता है।

पत्तियाँ : *पेरेस्किया, ऑपन्सिया, मैहूएनिया* तथा *पेरेस्कियोप्सिस* को छोड़कर बहुधा कैक्ट्स में कोई दिखने वाला पत्ता नहीं होता और इसके जगह प्रकाश-संश्लेषण तना द्वारा होता है। परन्तु, ऐसे पौधों में बहुत ही छोटे पत्ते जो आकार में लम्बाई 0.5 मि.मी. (0.02 इं.) से कम तथा अब तक जितने जाति अध्ययन किया जा चुका है उनमें से आधे में पत्ते की लम्बाई 1.5 मि.मी. (0.06 इं.) से भी कम होता है।

ऐसे पत्ते प्रकाश-संश्लेषण में भाग नहीं लेते सिवाय पादप उद्दीपक (हारमोन्स) जैसे ओक्सिन के स्राव करने के, जो इनके बढ़ने के साथ ही कक्षीय कली (एक्सिलरी बड्स) के निकलने की क्रिया को भी नियंत्रित करता है। इसके अलावे यह जल-ह्रास को भी कम करता है।

शूल : वनस्पति शास्त्र के अनुसार 'शूल' पत्ते का तथा 'काँटा' शाखा का रूपांतर है। कैक्टेई में शूल हमेशा गर्तरोम से निकलता है। ये शूल वैसे कैक्टेई में भी निकलते हैं जिनमें पत्ते होते हैं जैसे *पेरेस्कियोप्सिस जो* पर्ण-रहित कैक्टेई के पहले विकसित हुए। कुछ कैक्टेई में शूल नवजात पौधों में तथा व्यस्क होने पर खत्म हो जाता है। जैसे *रिप्सालिस* या *स्कूलम्बर्गेरा* जो पेड़ पर तथा *एरियोकार्प्स* जो जमीन पर बिना शूल के बढ़ते हैं। ये शूल इनकी पहचान किए जाने में काफी मदद करते हैं क्योंकि इनकी संख्या, रंग, आकार, दृढ़ता यहाँ तक कि सभी उन्नत शूल एक जैसे हैं या भिन्न। कुछ शूल की लम्बाई तथा मोटाई के कारण सीधा या मुड़े हुए, रोएँ जैसा, सुई या टेकुआ की तरह होता है। कुछ कैक्टई जैसे *स्केरोकैक्ट्स पापिराकैंथ्स* में शूल सपाट तथा *मामिलेरिया रेपोई* में हुक की तरह, कभी एक या एक से अधिक गर्तरोम के बीच में होता है तथा बाहर वाला शूल सीधा होता है। *ऑपनसिओआइडि* सह-कुल के जाति में सूक्ष्म शूल जिन्हें अंकुशलोम (ग्लोचिड) कहा जाता है आसानी से गिर या निकल जाता है। एक बार यह हमारे त्वचा में घुस जाय तो इसे निकालना काफी मुश्किल होता है साथ ही लम्बे समय तक खुजली भी करता है।

शूल, पत्तियों का रूपान्तर है जो पूर्ण विकसित होने पर भी जल संग्रह नहीं करता है। इसकी उपस्थिति से पौधे को छाया प्राप्त होती है। यह वाष्पोर्त्सजन के क्रिया को कम करता है। यह जल संरक्षित करने के साथ मवेशियों से पौधों को बचाता भी है। शूल के ऊपर संघनित ओस की बूंदे जमीन पर गिरने पर जड़ द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है।

कैक्टेई की उपयोगिता : कैक्टेई के कई जाति के पौधों को चारा तथा अन्य प्रकार के खाद्य (फल) की तुलना में सबसे ज्यादा घर के अंदर या बाहर सजावट के लिए उपयोग किया जाता है। घर के बाहर उद्यान बनाने के लिए *आगेभ, ब्युर्कानिया* तथा *एलोय* का रोपन कर विशेष आकृति बनाया जा सकता है। *यूफोर्बिया मिलि* से बाह्य-सजावट करने से इसका रंगीन फूल, एक साथ मिलकर लम्बे समय तक सुशोभित करता है। आकर्षक फूलों के कारण *एडेनियम ओबेसम* (मरूस्थलीय गुलाब) बोंसाई के लिए उपयोगी है। *मामिलेरिया, नोटोकैक्ट्स, रेबूसिया* तथा *जिम्नोकैलिसियम* अत्यन्त दृढ़ तथा अल्प अवस्था में फूल धारण कर लेते हैं। *सेलेनिसेरेयस ग्रेण्डिफ्लोरस* का काफी बड़ा फूल रात्रि में खिलकर सुगंध फैलाता है। *इकिनोकैक्ट्स* गंदला-पीला शूल के साथ हरे रंग का होता है। जिसमें फूल 10 वर्ष में एक बार ही खिलता है। *मामिलेरिया* कैक्ट्स अत्यधिक रोशनी तथा समूह में होता है। शरद ऋतु में पौधे के ऊपर प्राय: एक या कभी दो वलय में छोटे लाल, गुलाबी तथा बैगनी फूल का मुकुट बनाता है।

कोचीनियल लाल प्राकृतिक रंग होता है जिसे प्राय: किसी कैक्टेई पर निवास करने वाले शल्क कीड़े (स्केल इंसेक्टस) द्वारा बनाया जाता है। इसका इस्तेमाल कभी केंद्रीय तथा उत्तरी आमेरिका के लोगों द्वारा किया जाता था और अब इसका व्यवसायिक उत्पादन किया जा रहा है। *ऑपनसिया स्ट्रीक्टा* एवं *ऑगेभ* के अन्य जाति से बाड़ बनाया जाता है। *ऑपनसिया इलेटिओर* खाने योग्य फल के साथ पश्चिमोत्तर भारत में पाया जाता है जबकि *कारालुमा अम्बेलाटे* ओडिशा तथा उसके प्रायद्वीप भूभाग में पाया जाता है।

कैक्टस के नाश होने का कारण

कैक्ट्स का रख-रखाव बहुत आसान तथा खर्च-रहित होता है। परन्तु अत्यधिक पानी देने पर यह मर सकता है। जाड़े के दिन कैक्ट्स के लिए प्रसुप्ता-काल के जैसा होता है जब पानी की बिलकुल आवश्यकता नहीं होती। गर्मी या शुष्क-काल में पानी पौधे के जड़ में नीचे से देना फायदेमंद होता है। कैक्ट्स के तना या जड़ में सड़न का मुख्य कारण गीली जमीन होती है इसके साथ ही फंफूद से होने वाले रोगों को भी यह बढ़ा सकता है। इसके अलावा जंगल या इनके वासस्थान में कैक्ट्स के नाश होने के तीन मुख्य कारण हैं :

1. **विकास :** निमाण कार्य या खेती के लिए जमीन तैयार करने से जैसे :

    * जिमापन, मेक्सिको में बांध निर्माण करने से *एकिनोकैक्ट्स ग्रुसोनि* के बहुत बड़े वासस्थान का नष्ट होना।
    * नए मेक्सिको तथा ऑरिजोना के कुछ भूभाग पर शहरीकरण तथा राजपथ के निर्माण से।
    * मेक्सिको में मक्के के लिए खेती योग्य जमीन तैयार करने से *अरिओकार्प्स कोस्चौबेएनस* तथा चिले में अंगूर की खेती के कारण *कोपिआपो* के जाति तथा *इल्यूचिया* के जाति की संख्या में कमी।

1. गर्तरोम या एरिओल, शूल (पत्ती का रूपांतरित रुप), कली तथा नलिकाकार पुष्प 2. प्राकृतक मेड़-नुमा नागफनी 3. *पेरेस्किआ ग्रेंडीफोलिया* (गुलाब नागफनी) सभी कैक्ट्स जाति का एक पूर्वज 4. *ऑपनसिया* जाति 5. *सिफेलोक्लीस्टोकैक्ट्स रिटेरी* 6. *एकल फेरोकैक्ट्स लैटिस्पाइन्स* ('फीसहुक' कैक्ट्स) 7. कई *इकीनोप्सिस केलोक्लोरा* एकल द्वारा निर्मित टीला 8. कैक्ट्स का सपाट तथा चिकना तना 9. तथा 10. गमले में शूल व पत्ता-रहित अधिपादपीय नागफनी जैसे *इपिफाइल्म ऑक्सिपेटेल्म* तथा *इपिफाइल्म अंगूलिजर* का तना तथा 11. *टर्मिनेलिया कटापा* के ऊपर से लटकता हुआ स्तम्भाकार अधिपादपीय नागफनी तथा उसका बृहत अग्र भाग (इंसेट में) 12. हरा नागफनी

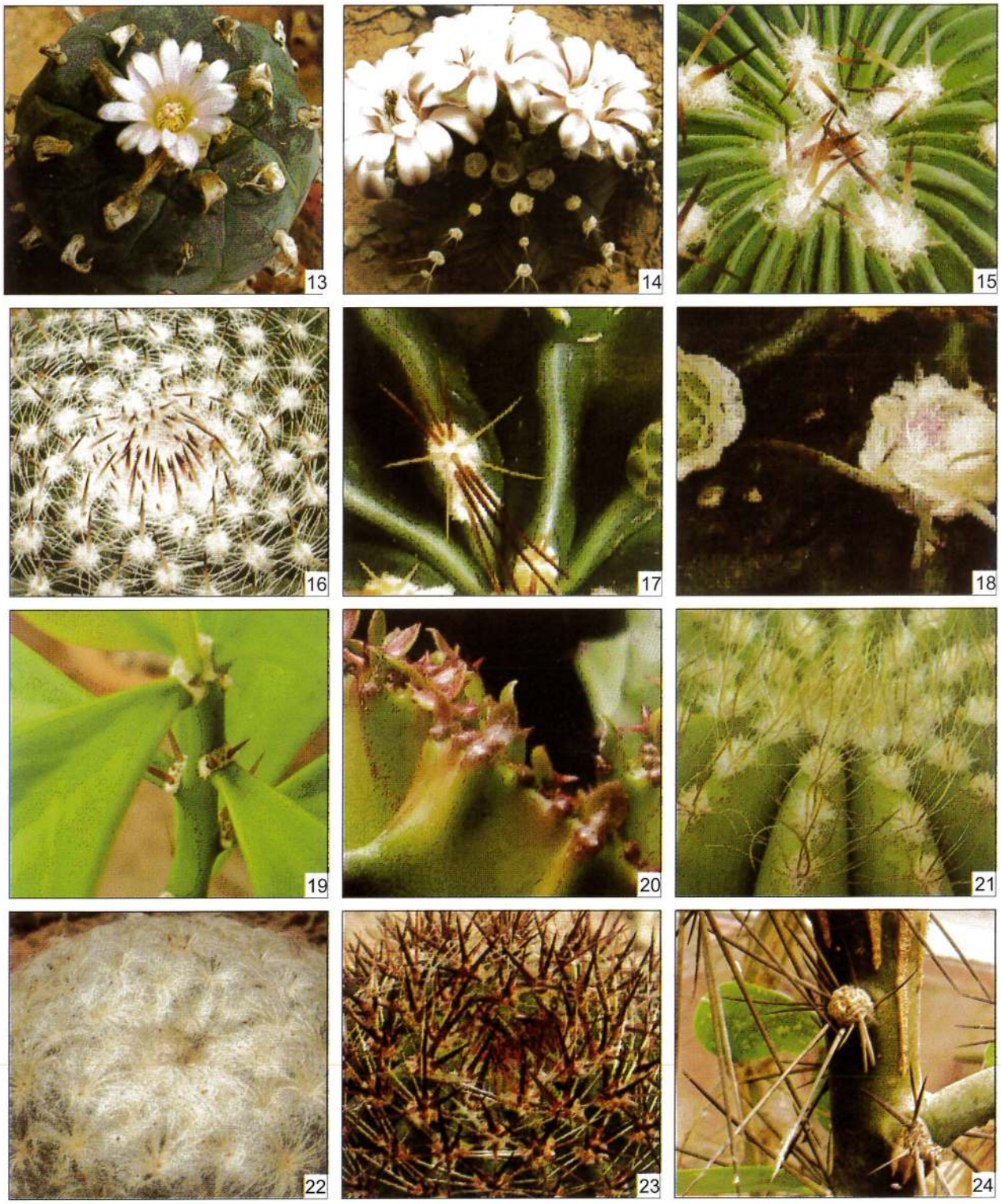

13. नागफनी का नीला-हरा 14. भूरा-हरा नागफनी का तना 15. 16. ऊन या रोएं जैसा गर्तरोम, 17.-18. गर्तरोम के बीच से निकलता शूल तथा पुष्प की कली 19. पत्ते तथा तना के बीच कक्ष में अवस्थित गर्तरोम 20. सूक्ष्म पत्तियाँ जो ओक्सिन उद्दीपक (हारमोन्स) का स्राव तथा जल-ह्रास को कम करता है। 21.- 24. शूल के प्रकार-21. सीधा तथा मुड़ा हुआ शूल 22. रोएं जैसा शूल 23.- 24. दृढ़ सूई की तरह शूल

2. **अत्यधिक चरने से :** पेरु के गलापागोस टापू पर भेड़-बकरी द्वारा अत्यधिक चरने से *ब्राउन्जिया कैंडेलारिस* कैक्टेई की आबादी पर काफी गंभीर प्रभाव पड़ा।

3. **अत्यधिक संग्रह करने से :** मेक्सिको के मिक्यूहुयाना में *पेलेस्य्फोरा स्ट्रोबिलिफोर्मिस* के अत्यधिक बिक्री तथा जंगल से गैरकानूनी तरीके से अत्यधिक संग्रह करने से कैक्टेई के कुछ जातियों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा।

संरक्षण

सभी नागफनियों में *ऑरियोर्कप्स कोट्स्चौबेएनस* एक नाम मात्र संकट ग्रस्त जाति है जिसे साईटिस (सी. आई.टी.एस.)के अत्यंत निरोधक परिशिष्ट (एपेंडिक्स I) के अन्तर्गत उल्लेखित किया गया है। इसे किसी भी कार्य के लिये आयात या निर्यात नहीं किया जा सकता है। *ऑरियोर्कप्स* तथा *डिस्कोकैक्ट्स* के कुछ जाति जिन्हें परिशिष्ट-I में उल्लेखित किया गया है को अपवाद स्वरूप वैज्ञानिक कार्य के लिये आयात या निर्यात किया जा सकता है। बाकी सभी कैक्टेई को साईटिस के परिशिष्ट - II में उल्लेखित किया गया है तथा निम्न उपायों द्वारा इन्हें संकट ग्रस्त होने से बचाया जा सकता है।

स्वस्थाने (इन-सिटू) : इसके अन्तर्गत कैक्टेई को संरक्षण कानून बनाने के उपरांत उन्हें लागू कर तथा विशिष्ट राष्ट्रीय पार्क या आरक्षित क्षेत्र बना या घोषित कर संरक्षित किया जा सकता है जैसे संयुक्त राष्ट्र का बिग बेंड नेशनल पार्क, टेक्सॉस; जोशुआ ट्री नेशनल पार्क, कैलिफोर्निया; तथा कासगुआरो नेशनल पार्क, ऑरिजोना। लैटिन अमेरिका का पार्क्यू नेसीयोन्ल डेल पीनाकेटे, सोनोरा, मैक्सिको तथा पान डि आजूकार नेशनल पार्क, चिले।

बहिःस्थाने (एक्स-सिटू) : इस प्रकार के संरक्षण का मुख्य उद्देश्य पौधों तथा उनके बीज का उनके प्राकृतिक वासस्थान से बाहर संरक्षित करने के साथ उनको पुनर्वास कराना है। इस कार्य में वनस्पतिक उद्यान महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निभाते हैं जैसे ऑरिजोना का डेर्जट बोटेनिक गार्डेन जहाँ कैक्टेई एवं मांसलोदभिद् के कई प्रकार / जाति के बीज को दीर्घकाल से संग्रहित /संरक्षित किया गया है जिनसे जरुरत पड़ने पर पुनः बुआई कर नया पौधा पैदा किया जा सकता है।

सिसुण : एक उपयोगी पौधा

भावना जोशी पाण्डे

वनस्पति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा

हमारे आस-पास बहुत से पौधे प्राकृतिक रूप से उगते हैं। अधिकांश पौधों की उपयोगिता के बारे में हम बहुत कम जानते हैं। ऐसा ही एक पौधा है 'सिसुण' जो हमारे घरों के आस-पास सर्वत्र 600 से 20,000 फुट की ऊँचाई तक उगता है।

'सिसुण' एक बहुवर्षीय शाक है। पहाड़ में यह कई नामों से प्रचलित है यथा - 'सिन', 'सिसलू', 'कानी', 'कालि', 'कनालि', 'कण्डाली', इत्यादि। पूरे विश्व मे 'सिसुण' की 50 जातियाँ हैं जिसमें भारत में इसकी 4-5 जातियाँ एवं उत्तराखण्ड में 4 जातियाँ पायी जाती है। जिनके लैटिन नाम इस प्रकार हैं - *अर्टिका अरडेन्स, अर्टिका डायोका, अर्टिका हाइपरबोरिया* तथा *अर्टिका यूरेन्स*। इनमें से *अर्टिका यूरेन्स* का उत्तराखण्ड में हाल ही में प्रवेश हुआ है तथा *अर्टिका अरडेन्स* एवं *अर्टिका डायोका* लगभग सर्वत्र एवं अत्यधिक मात्रा में उगती हैं। साधारणत: इसे 'नेटल' कहते हैं। आयुर्वेदिक साहित्य में इसका नाम 'वृश्चकाली' है। कुमाऊँ में इसकी तीन जातियाँ *अर्टिका अरडेन्स, अर्टिका डायोका, अर्टिका हाइपरबोरिया* मिलती हैं।

इस पौधे की रोयेंदार पत्तियाँ एवं तना, शरीर पर स्पर्श मात्र से खुजली, जलन एवं झनझनाइट पैदा करती है। सिसुण की टहनी यदि पानी से भीगी हो तो अधिक जलन करती है। एसीटाइल कोलीन हिस्टामीन और 5-हाइड्रोक्सी ड्रिप्टेमीन (वैल्थ ऑफ इण्डिया, भाग-10) में वर्णित है कि यह पौधा त्वचा एवं संयोजी ऊतक में स्राव को उत्तेजित करता है, जिसके परिणाम स्वरूप खुजली एवं जलन उत्पन्न होती है।

जलन/खुजली पैदा करने वाला यह पौधा किस-किस तरह से हमारे लिए उपयोगी है, इस पर एक नजर डालें:

आस्था/विश्वास के रूप में :

- हमारे बुजुर्ग इस पौधे को शरारती छोटे बच्चों को डराने - धमकाने के काम में ही नहीं लाते थे वरन् कई बार सत्य बात को उगलवाने हेतु भी प्रयोग करते हैं।
- एक मत के अनुसार यह पौधा जादू-टोना में काम आता है तथा बिच्छूघास की टहनी को बीमार मनुष्य के चारों तरफ तीन बार घुमाकर दूर चौराहे या अन्यत्र फेंक देते हैं, ऐसा बीमार व्यक्ति को कुदृष्टि से बचाने हेतु करते हैं। इसके अलावा इसकी टहनी को कुछ मंत्रों के साथ किसी से डरे हुए छोटे बच्चों के चारों ओर घुमाकर बाहर फेंक देते हैं। मान्यता है कि ऐसा करने से बच्चे के अन्दर किसी कारण से घुसा डर दूर हो जाता है।
- पालतू जानवरों को नजर लग जाने पर भी इसकी टहनी को सात बार नजर लगे जानवर के सिर से पूँछ तक छूते हुए ले जाते हैं तो नजर हट जाती है ऐसी मान्यता है।
- ऐसी मान्यता है कि नवजात शिशु की गर्भनाल को बिच्छूघास (जिसमें से पत्तियाँ व रोयें हटाये गए हों) की टहनी में रखने से बच्चा दीर्घायु होता है।
- मातायें अपने बच्चे को एक स्थान से दूसरे स्थान (उनके अपने गॉव से बाहर) या नदी पार करते समय या जंगल के रास्ते कहीं अन्यत्र ले जाने पर बिच्छू घास (सिसुण) की एक टहनी अपने साथ अवश्य ले जाती हैं। मान्यता है कि सिसुण की टहनी साथ ले जाने से बच्चे छल-छिद्र या बुरी-आत्माओं या कुदृष्टि से बचाया जाता है।
- सिसुण की पत्तियों के कक्ष से कभी-कभार ठीक ककड़ी की तरह का फल लगता है। मान्यता है कि यह फल जिसे मिल जाये वह धन-धान्य से सम्पन्न हो जाता है।

भोजन के रूप में :

सिसुण प्राचीन समय से ही भोजन के रूप में प्रयुक्त होता आया है। महान तिब्बती धर्मगुरु दसियों वर्षो तक एकान्त में समाधि लगाकर बैठे और आहार के रूप में केवल सिसुण को खाया। कुमाऊँ पूरे उत्तराखण्ड में ग्रामीणजन सदियों से बिच्छू घास की पत्तियाँ युक्त कोमल टहनियों कलियों की सब्जी (विशेषकर जाड़ों में) बनाकर खाते हैं। परन्तु स्थानीय ग्रामीण इसकी सब्जी को अधिक महत्व नहीं देते हैं। यह भाव अग्रेतर उक्ति से स्पष्ट झलकता है-

'मडुवक रोटि सिसुणक साग,
खा ले रनकरा यो त्यर भाग।'

इसका कारण शायद हमारे पूर्वजों की सिसुण के गुणों से अनभिज्ञता रही होगी, किन्तु परीक्षणों से पता चला है कि इस पौधे में अत्यन्त महत्वपूर्ण पोषक तत्व (प्रोटीन, लवण, विटामिन आदि) पाये जाते हैं। इसमें विटामिन 'ए' और 'सी' पर्याप्त मात्रा में तो साथ में विटामिन 'डी' भी पाया जाता है। इसमें आयरन (लौह), पोटेशियम, कैल्शियम, आदि खनिज मिलते हैं। इन्हीं उपयुक्त गुणों के कारण विदेशों में सिसुण (नेटल) का प्रयोग 'सूप' के रूप में, नरम पत्तियों को सलाद के रूप में, सुखाकर रखी गयी पत्तियों को 'नेटल टी' के रूप में, कार्डियल पेय के रूप में, नेटल बियर के रूप में कर रहे हैं। अपने देश में सिक्किम का नेटल सूप 'सोचा' अत्यधिक प्रचलित है।

पालतू पशुओं हेतु भी इस पौधे का उपयोग चारे के रूप में किया जाता है। इस हेतु पौधे को काटकर हल्का सा धूप में सुखा देते हैं। मोठ में लार्वा (जो काले/लाल रंग के होते हैं) इसकी पत्तियों को चट करने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं।

सिसुण की सब्जी बनाने की विधि: सिसुण की कोमल पत्रयुक्त कोमल टहनियों को दराती से या कैंची से काटकर साफ पानी से धोने के बाद इसके छोटे टुकड़े कर कढ़ाई में हल्का सा पानी डालकर उबालते हैं। उबालते-उबालते जब यह लुग्दीनुमा बन जाय इसे निकाल कर पुन: दूसरी कढ़ाई में सरसों के तेल में भून लिया जाता है। इसके बाद आवश्यकानुसार मसाले व नमक डालकर सब्जी बना ली जाती है। जितनी गाढ़ी सब्जी चाहिए उस हिसाब से पानी भी मिला सकते हैं। पुन: खूब पकाकर सब्जी तैयार हो जाती है।

औषधि के रूप में :

भोजन के रूप में ही नहीं सिसुण का प्रयोग तो कई बीमारियों से निजात पाने हेतु भी किया जाता है।

- प्राचीन काल में इस पौधे का प्रयोग बाह्य त्वचा पर पक्षाघात वात तथा बन्द घावों में किया जाता रहा है। इन्हीं के अनुसार उत्तरांचल (अब उत्तराखण्ड) हिमालय में रहने वाले लोग इस पौधे का प्रयोग मूत्र रोग, साईटिका, श्वास रोग, त्वचा एवं हृदय के विकारों में करते हैं।
- इस पौधे का प्रयोग ट्यूमर, स्तन कैंसर, कान के कैंसर, पेट के कैंसर, तिल्ली के कैंसर एवं मुँह के कैंसर में किया जाता है। रूस में इसका प्रयोग आन्त्रशोध में किया जाता है तथा इसके जड़ व बीजों प्रयोग मलेरिया, बवासीर, सिरदर्द, पीलिया, गठियावात तथा रक्त लोलुप्ता में किया जाता है।

सिसुण के बीजों का तेल खाया भी जाता है तथा साइटिका बात त्वचा रोग में भी प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों के रस से सिर धोने से गंजापन होने से बचा जा सकता है।

- कुमाऊँ में भी इस पौधे का औषधीय उपयोग कई तरह से किया जाता है, यथा-
  - इस पौधे की रोयेंयुक्त टहनी को हाथ-पॉव में मोच आने पर उसमें झपकाते हैं।
  - यदि किसी को कब्ज हो तो इस पौधे की कोमल टहनी के रोयें निकालकर छोटे से टुकड़े को गुदा में डालने से कुछ ही घण्टों बाद मल विसर्जन आसानी से हो जाता है।
  - पालतू पशुओं से अधिक दूध प्राप्त करने हेतु इसके पौधों को काटकर धूप में रखकर हल्का सा मुरझाने के बाद पशुओं को खिलाया जाता है या पौधों को ओखली मे कूटकर, भट्ट या मादिर के साथ पकाकर (जिसे पहाड़ में 'द' कहते हैं) देते हैं।
- पालतू पशुओं में गर्मी लाने हेतु इस पौधे के पुष्पक्रम (बाली) को काटकर खिलाते हैं।
- सिसुण की सूखी पत्तियों का चूर्ण चार रत्ती मात्र आग में डालकर धुएँ को सूंघने से श्वास व फुफ्फस रोग में लाभ मिलता है। प्रसव के बाद जिन महिलाओं का दूध कम बनता है, तो उन्हें सिसुण के पंचांग को दो औंस देने से दूध की मात्रा बढ़ जाती है। पुन्सी, पसूरिका, फफोली, आदि रोगों में सिसुण के शर्बत के सेवन से लाभ होता है। सिसुण के पौधे से बना हेयर टॉनिक बालों को गिरने से रोकने के साथ ही बालों को चमकीला एवं मुलायम बनाता है।
- इसकी सूखी पत्तियों की चाय पेचिस में आराम पहुँचाती है और गुर्दो हेतु भी लाभकारी है। इसकी पत्तियों का रस पीने से शरीर से यूरिक एसिड की मात्रा कम हो जाती है। सिसुण चर्म रोगों, जोड़ों के दर्द, बात, लकवा पड़े अंगों को सचेत करने में, खिंचवा, पेशियों की पीड़ा व सूजन कम करने में, बार-बार छींक आने से निजात पाने हेतु एवं कीड़ों के काटने में औषधि का कार्य करती है।
- इसकी जड़ का प्रयोग पौरूष ग्रंथि को (यदि शुरूआती दौर में है तो) बढ़ने से रोकने में मदद करती है। इस उपेक्षित 'सिसुण' का उपयोग आयुर्वेद, यूनानी, एलोपैथी की दवा बनाने में हो रहा है।
- पित्त (शीत पित्त) के उपचार हेतु सिसुण की 20 ग्राम जड़ को कूटकर रस निकालकर उसमें 10 ग्राम मिश्री मिलाकर दिन में तीन बार दिया जाता है।

- परम्परागत रूप से मां बाराही देवी मे मन्दिर में बग्वाल के दिन चोटिल व्यक्ति के घाव पर मन्दिर के आस-पास उगी बिच्छू घास लगाने की प्रथा कालान्तर में रही है। मान्यता है कि बिच्छू घास लगाने से घाव भर जाते हैं।
- रानीखेत में फुंसी आदि होने पर स्थानीय लोग बिच्छू की पत्तियों एवं तने का लेप करते हैं जिससे घाव ठीक हो जाता है (स्रोत : रश्मि हरबोला, रानीखेत)।
- कटे हुए घाव में खून के बहाव को रोकने के लिए बिच्छू की पत्तियों को कुचल कर लगाया जाता है।

रंग बनाने हेतु :

इस पौधे के काढ़े से चमोली (उत्तराखण्ड) जिले के जनजाति के लोग पीला रंग बनाते हैं। ऊन के कपड़ों को रंगने से पहले ये लोग इस पौधे से बने काढ़े में नींबू के रस की कुछ बूंदें मिलाते हैं।

रेशे से वस्त्र बनाने हेतु :

सिसुण के तने से रेशे निकालकर विभिन्न प्रकार के थैले, बोरे, पालों का मोटा कपडा, रस्सी, इत्यादि बनाने का कार्य तो प्राचीन काल से प्रचलित है। भाँग, अलसी, सनई, आदि के खेती का प्रचलन होने से सिसुण के रेशे का उपयोग कम होने लगा है। उत्तराखण्ड हिमालय में ऊँचाई में रहनेवाले इस पौधे के तने के छिक्कलों (रेशों) से रस्सी बनाते हैं, और इससे बनी रस्सी काफी मजबूत व टिकाऊ होती है। इन्हीं के अनुसार चमोली गढ़वाल के कुछ लोग इसके रेशों से बर्फ में चलने हेतु जूते भी बनाते हैं। इसके रेशे काफी मजबूत व चमकदार होते हैं। विगत कुछ वर्षों से अल्मोड़ा में कुछ लोग इसके रेशों से विभिन्न प्रकार के वस्त्र बना रहे हैं।

सावधानी :

पहाड़ में बिच्छू घास (सिसुण) जैसा दिखने वाला एक अन्य पौधे को स्थानीय भाषा में 'अल' कहते हैं। अल व सिसुण का अन्तर इसकी पत्तियों को देखकर आसानी से किया जाता है। अल की पत्तियाँ काफी चौड़ी व कटी-फटी होती हैं, जबकि सिसुण की पत्तियाँ साधारण व बिल्कुल भी कटी-फटी नहीं होती हैं।

निवेदन:- यह पौधा 'सिसुण' कई गुणों से युक्त है तथा उत्तराखण्ड मे बहुतायत मात्रा में मिलता है। इस उपलब्धता का हमें भरपूर प्रयोग करना चाहिये। पाठकों से हमारा निवेदन है कि हमारे क्षेत्र में मिलने वाले कई पौधे हैं जो कई पौष्टिक व औषधीय गुणों से युक्त हैं। जिन्हें बार-बार लिख कर इन पौधे के गुणों को सामान्य जन को अवगत कराने का प्रयास अवश्य करायें। जिससे सामान्य जन लाभान्वित तो होंगे ही साथ ही एसे पौधों के संरक्षण व संवर्धन में भी मदद मिलेगी तथा समय आने पर एकस्व जैसी समस्या से भी बच पायेंगें।

''वृक्षों का कृतज्ञ हों करें आभार।
ये है प्रकृति का अनुपम उपहार।।
बिना इनके धरा का अस्तित्व नहीं।
लगायें वृक्ष, महकायें जीवन-संसार।।''

मुनि वृक्ष : अगस्त्य

वीना चन्द्रा एवं महेन्द्र सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

भारतवर्ष में 'अगस्त' नाम से प्रसिद्ध -'मुनिवृक्ष' पूर्वी भारत में गंगा के निकटवर्ती क्षेत्र में पाया जाने वाला तथा अल्प अवधि तक रहने वाला, 20 फीट से 30 फीट ऊंचा हल्का, कोमल, वृक्ष है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह वृक्ष भारतवर्ष का अथवा उसके छोटे-छोटे द्वीप-टापुओं का मूल वासी है।

यह वृक्ष उष्णकटिबन्ध, दक्षिण भारतीय क्षेत्र में प्राय: बगीचों मे बढ़े सफेद, पीले, नीले और लाल गुलाबी रंग वाले पुष्पों की सुन्दरता से परिपूर्ण बगीचों को सुशोभित करने वाला, सौन्दर्यकरण की दृष्टि से उपयुक्त हरीखाद तथा पशुचारा प्रदान करने वाला वृक्ष है। इसकी अस्थायी छाया, केलों व नारियल के वृक्षों को आंधी व तेज हवाओं के झोंकों से बचाती है। इसकी झुकी हुई हरी पत्तियों से लदी हुई डालियाँ, उस पर सेम जैसी आकृति वाली हरी लम्बी फलियाँ, पत्ते व इसके पुष्प, सब्जियों के रूप में सेवन किये जाते हैं तथा इसी कारण इसे लोग बगीचों में उगाते हैं, यह तेजी से बढ़ने व संवर्द्धन करने वाला भारतीय सुन्दर वृक्ष है।

वृक्ष पर चर्चा :- डॉडिमोक द्वारा लिखित पुस्तक 'फार्माकोग्राफिया, इण्डिका' (3 खंड) के अनुसार यह वृक्ष पूर्वी द्वीप समूह से लाया गया हैं भारतवर्ष का नहीं है। किन्तु भाव प्रकाश मिश्र 'निघण्टु' उनके कथन को निराधार बताते हुए यह कहते हैं - ''अगस्तय ऋषि इस वृक्ष के नीचे तपस्या करके प्रसिद्ध हुए तब से इसका नाम 'अगस्त' पड़ा ऐसी शास्त्र प्रसिद्ध कथा है।'महर्षि सुश्रत' ने इसका उल्लेख किया है। यदि इसका काल 2500 वर्ष ही मान लें तो भी यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि यह भारतवर्ष का ही वृक्ष है।''शालिग्राम निघण्टु' जी लिखते हैं कि अगस्त्योदय होने पर अर्थात हेमन्त ऋतु में फूलने के कारण इसका 'अगस्त' नाम पड़ा है।

इस वृक्ष के अनेक प्रादेशिक भाषीय तथा अन्य नाम हैं। यथा : **संस्कृत**-अगति, अगस्ती; **हिन्दी**-बक, अगस्ती, अगस्तिया, हथिया, अगथिया, बसना; **बंगला**-अगति, अगस्ता, बक, बागफल, अठाशि; **मराठी**-अगति, अकट्टि; **तमिल**-अगथि, अवेसी, अक्वेती एवं **तेलेगु**-अगास, **उड़िया**-बुको, ओगस्ति।

वनस्पतिक नाम : *सेसबेनिया ग्रान्डीफ्लोरा* यह कुल फैबेसी का सदस्य है।

उपयोग : इस वृक्ष की हल्के बादामी रंग वाली तथा चिकनी छाल होती है। इसकी छाल से प्राप्त रेशों से रस्सी बनाई जाती है। इसकी दाल का रस, जाल की सुदृढ़ता तथा चटाई मे रंगाई प्रयोग में लाया जाता है तथा पोषक के रूप में बल्य पौष्टिक, उदर रोग, दस्त पेंचिस में क्वाथ (काढ़ा) औषधि के रूप में रोग निवारण के लिये दिया जाता है। इसकी पिसी हुई छाल खुजली, चर्मरोग, जीभ पर छाले, तथा पाचक नली में विकार दूर करने में उपयोगी है। इसके पुष्पों के रस का आंखों की रोशनी मध्यम, मन्द पड़ने, दृष्टि कमजोर होने पर, प्रयोग में लाने से दृष्टि में सुधार होता है।

काष्ठ, सफेद, मुलायम, हल्का होने से, खिलौने, बन्दूक का पाउडर तथा कोयला बनाने में प्रयोग होता है।

अगस्त-शीतल, रूक्ष, वातकारक, कडुवा और पित्त कफ, चातुर्थिक ज्वर तथा प्रतिश्याम नाशक है।

पाश्चात्यमत के अनुसार 'अगस्त' कफ नि:सारक है। इसकी छाल कसैली, चरपरी (तीखी) व बलकारक है। पत्ते व पुष्प के रस के सूंघने से प्रतिश्याम व सिर की पीड़ा दूर होती है।

घास और उसकी उपयोगिता

बंदना भट्टाचार्जी, पी. लक्ष्मीनरासिम्हन एवं अभिषेक भट्टाचार्जी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

पेड़-पौधों के प्रति मनुष्य की जागरूकता प्राचीन काल से ही देखने को मिलती है, परन्तु पुष्पी पौधों के समूह में एक अति महत्वपूर्ण स्थान रखने वाला घास मनुष्य को लम्बे समय तक आकर्षित नहीं कर पाया। पर्यावरणीय स्थिति तथा मिट्टी की दशा का एक अच्छा संकेतक होने की वजह से घास के बारे में जानकारी रखना बहुत ही जरुरी है। घास की अद्‌भुत विविधता इसके आकार, विस्तार, प्रकृति, वानस्पतिक तथा प्रजननी शाखा की संरचना, एक वर्गीकरण वैज्ञानिक के लिए सदा विस्मय का विषय रहा है। क्रमिक विकास के दौरान शायद ही ऐसा कोई पादप कुल होगा जिसके सामान्य तथा प्राथमिक विन्यास में इतने अधिक बदलाव देखने को मिलते हैं! प्रकृति ने विकास के उल्लास में कहीं कुछ जोड़ दिया है और कहीं किसी भाग को काटकर अलग कर दिया है, तथा सभी प्रकार के संयोजन एवं विनिमय के फलस्वरूप एक ऐसे कुल की रचना की है, जो न ही केवल कठिन है बल्कि उतना ही जटिल भी है।

एकबीजपत्री, साधारणत: कमजोर, शाखायुक्त विसर्पी पौधा। घास पादप जगत के 'पोएसी' कुल का एक प्रमुख आर्थिक उपयोगी तथा महत्वपूर्ण सदस्य है। इसकी जाति तथा वंश संख्या को देखा जाय तो यह आर्किडेसी, एसटेरेसी, फेबेसी तथा रूबिएसी के उपरान्त ही आता है परन्तु इसके आर्थिक तथा औद्योगिक महत्व को देखते हुए इसे विश्व में पादप कुल का सर्वश्रेष्ठ स्थान अर्जित है। अनुमानिक तौर पर विश्व में घास की लगभग 10,500 जातियों और 715 वंश तथा भारतवर्ष में 1313 जातियाँ तथा 260 वंश पाए जाने का अनुमान है।

विश्व के कुल वानस्पतिक क्षेत्रफल का 25 प्रतिशत तृणभूमि है। घास समरूप से सभी महाद्वीपों तथा सभी प्रकार के मौसमी क्षेत्रों में पाई जाती है। इसकी अत्यधिक मात्रा पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध है, लेकिन यह घास उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रों, बर्फ से ढके क्षेत्रों, मैदानों, दलदल, मरूस्थल, बालू में, चट्टानों के अतिरिक्त समुद्र की गहरी सतह पर भी अपनी उपस्थिति दर्शाते हैं। प्रकृति के परिवर्तित परिमण्डलीय वातावरण के अनुरूप खुद को ढालने की कला के कारण यह सफलतम तटीय वनस्पति है।

कुछ से० मी० छोटे पौधे से लेकर 25 मी० या उससे अधिक लंबे बाँस के पेड़ भी इसी कुल के अन्तर्गत आते हैं। यह एक वर्षीय तथा सदाबहार वृक्ष श्रेणी में आते हैं। दीर्घकाल तक सूखे समय को सहन कर जीवित रहना इस कुल की ज्यादातर जातिओं की विशेषता होती है।

धान, गेहूं, बाँस, बाजरा, गन्ना, इत्यादि जैसे कुछ अनाज इस कुल के प्रमुख सदस्य हैं, जो विश्व के किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था में अहम् भूमिका अदा करते हैं। घास पादप जगत का प्रमुख अनाज पैदा करने वाला कुल है जो मानव तथा जीव, जन्तुओं के लिए पौष्टिकता प्रदान करने का एक मात्र आधार है।

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य उपयोगिताओं में चटाई फर्नीचर बनाना, रस्सी बनाने एवं घर छाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। कुछ घास आदिवासियों द्वारा अकाल के समय भोजन के रूप में उपयोग किये जाते हैं। जानवरों से मिलने वाला मांस व दूध भी परोक्ष रूप में घास की ही देन है। हमारे डेयरी उद्योग मूलत: घास पर निर्भर हैं।

मिट्टी को परस्पर ठोस रूप में बाँधने में तथा उसकी नमी को बनाए रखने में घास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक खोज से यह भी पता चला है कि मध्य भारत में हजारों वर्ष पूर्व में पाये जाने वाले डायनोसोर की भी एक प्रजाति घास खाती थी।

घास हानिकारक भारी धातुओं को भी संचित कर सकते हैं जिसके कारण घास के अनुवेक्षण से ही हमें मिट्टी के प्रदूषित होने का संकेत मिल जाता है। लिथोफाईटिक घास जो पत्थरों पर उगते हैं, वह अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा जड़ों से पोषक तत्वों को व्युत्पन्न कर पाते हैं तथा अनुजीवीय सहचर्य स्थापना कर सकते हैं। इसी प्रक्रिया का उपयोग करते हुए घास के पौधे लगातार अपनी निम्नीकृत परितंत्र का पुर्नवीकरण तथा बंजर पथरीली भूमि पर हरियाली की चादर उगा सकते हैं। घास की इस भूमिका पर भी आलोकपात होना चाहिए कि वह किस तरह कृषि भूमि, खारेपन तथा अतिरिक्त खाद्य प्रयोग की समस्या का सामना कर रहे हैं उनका पुनरूद्धार किया जाए।

घास के जंगली जातियों के संग्रह, संरक्षण तथा शोध पर अधिक ध्यान देकर हम कृषि की उपज वृद्धि कर सकते हैं। घास के मैदानों जो चूहे, साँप, गिलहरी जैसे छोटे जीव जन्तुओं तथा कीड़े-मकोड़े का घर हैं, इसलिए जैव-विविधता के संरक्षण के लिए घास जैसे पादप का प्राकृतिक संरक्षण अति आवश्यक है। किसी भी देश के दीर्घकालीन सतत विकास एवं प्राणी और वनस्पति जगत की सुरक्षा हेतु घासों की अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

1. जई, 2. बाँस, 3. लंपा, शुरबाला, 4. नीबू घास, 5. काश, 6. धान, 7. काश, 8-9. गन्ना, 10. गेहूँ, 11. खस-खस, 12. मक्का.

पार्थीनियम : एक हरा कैन्सर

अरविन्द कुमार, महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया एवं संदीप कुमार सिरावत
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून
भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, देहरादून

प्रकृति का जीवन के साथ अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। प्रकृति के बिना जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है। अत: जीवन की सार्थकता प्रकृति के साथ सही तालमेल के द्वारा ही संभव है; परन्तु जिस प्रकार हर अच्छाई के साथ बुराई जुड़ी होती है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति भी अच्छी व बुरी वनस्पतियों को अपने अन्दर संजोये हुए है। अत्यन्त महत्वपूर्ण व जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियों के अलावा कुछ ऐसी घासें भी प्रकृति में उत्पन्न होती हैं, जो अभिशाप बन जाती हैं जिसका ज्वलन्त उदाहरण है- *पार्थीनियम*।

पार्थीनियम को देश के विभिन्न भागों में कई अन्य नामों से भी जाना जाता है सामान्यत: गाजर की पत्तियों से इसकी पत्तियों की बनावट मिलने के कारण इसे ''गाजर घास'' कहते हैं। पार्थीनियम को सितारा घास, सफेद सिरा, चटक चाँदनी, तीखी घास, रामफूल या कांग्रेस घास भी कहते हैं। छोटे-छाटे सफेद फूल *पार्थीनियम* के शाखाओं के शीर्ष भागों पर खिलने के कारण इसे 'सफेद सिरा' या 'चटक चाँदनी' कहा जाता है। आज यह घास भारत सहित कई अन्य देशों के लिए सिरदर्द बन गयी है।

भारत में पार्थीनियम की झाड़ियां सर्वप्रथम पुणे महाराष्ट्र में 1956 मे देखी गई और अब तो स्थिति यह है कि देश का शायद ही कोई ऐसा भाग हो जहाँ इस खरपतवार का प्रकोप न हुआ हो। भारत में यह खरपतवार उत्तरप्रदेश उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, राजस्थान व दिल्ली के विभिन्न भागों में फैल चुका है।

पार्थीनियम 'एस्टेरेसी' (कम्पोजिटी) कुल का एक वर्षीय शाकीय पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम *''पार्थीनियम हिस्टेरोफोरस''* हैं। यह लगभग 4 महिने में अपना जीवनचक्र पूरा कर लेता है परन्तु उपयुक्त वातावरण मिलने पर पूरे वर्षभर पुष्पित होता रहता है। *पार्थीनियम* शीघ्रता से बढने वाला एक खरपतवार है जिसकी ऊँचाई आधा मीटर से दो मीटर तक तथा पुष्पन की शुरूआत उगने के 6 से 8 सप्ताह के अन्दर हो जाती है।

इसका तना शाकीय व रोयेदार होता है। तने पर पाये जाने वाले रोयें तेज हवा चलने पर पौधों के आपस में रगड़ने से टूटकर हवा के साथ उड़ते हैं। ये रोयें मनुष्य व जीव जन्तुओं की त्वचा व श्वासमार्ग के लिए हानिकारक होते है। इसके तने व पत्तियोंमें एक रासायनिक पदार्थ *पार्थिनिन* पाया जाता है जो कि प्रत्यूर्जना का मुख्य कारण है। इससे प्रभावित मनुष्य सूर्य के प्रकाश के प्रति संवेदनशील हो जाता हैं तथा *पार्थीनियम* के लगातार प्रत्यक्ष संपर्क में रहने से उनके चेहरें, बाहों व गर्दन की त्वचा सख्त होकर फट जाती है व घाव बन जाते हैं।

मनुष्य ही नहीं पशुओं के लिए भी यह घास अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रही है। इसकी हरियाली के प्रति लालायित होकर पशु इसके निकट तो आते हैं लेकिन जानवर न तो इसे खाते हैं न ही इसके आस-पास की वनस्पतियों का स्वाद ले पाते हैं। कभी-कभी चारे की कमी होने से मजबूर होकर यदि पशु खाते भी हैं तो उनमें अनेक प्रकार के रोग फैल जाते हैं, दुधारू पशुओं का दूध कड़वा हो जाता है और चारागाहों में इसके फैलने के कारण पशुओं की चारे की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

पार्थीनियम की जड़ों में पाये जाने वाला रसायन *इक्यूडेर* आस-पास की मिट्टी में व जल द्वारा दूर-दूर तक फैल जाता है। 'इक्यूडेर' अन्य वनस्पतियों के बीजों के अंकुरण व विकास को रोकता हैं। जिससे महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों व चारा घासों के नष्ट हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। इसके तने व पत्तियों में पाये जाने वाले रसायन के कारण फसलों के बीजों का अंकुरण धीमा पड़ जाता है। अत: यदि कहा जाये कि वनस्पति जगत में *पार्थीनियम* एक शोषक के रूप मे उभर रहा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पार्थीनियम के परागकण बैगन, टमाटर, मिर्च इत्यादि फसलों के फूलों पर एकत्रित होकर उसके निषेचन व फल विन्यास को प्रभावित करते हैं। *पार्थीनियम* के कारण भू-क्षरण की समस्या भी बढ जाती हैं क्योंकि यह स्वयं तो मिट्टी को बांधता नही है इसकी उपस्थिति में अन्य महत्वपूर्ण पौधें भी नहीं उग पाते हैं। अपितु *पार्थीनियम* की झाड़ियों में एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध होने के कारण छोटे-छोटे जीव-जन्तु जैसे गिरगिट, तितली व टिड्डा भी इस वनस्पति के बीच नही रह पाते हैं। इन्हीं कारणों से गाजर घास को धरती के सीने पर उगा ''हरा कैन्सर'' भी कहा जाने लगा है।

पार्थीनियम के कुछ उपयोग :

कहा जाता है कि प्रकृति में कोई चीज बेकार नहीं होती है, हानिकारक चीजों का भी कोई सकारात्मक उपयोग अवश्य होता है। *पार्थीनियम* भी इस कसौटी पर खरा उतरता है; भले ही इसके उपयोग इसके नुकसान की तुलना में नगण्य हो। इसके उपयोग निम्नवत् है :

- गाजर घास का पौधा तीखा व तीव्र गन्ध वाला होता हैं तथा स्वभाव में 'एन्टीहिस्टीरिक' होता हैं। इसकी गंध के कारण मक्खियां व अन्य कीट दूर भाग जाते हैं अत: इससे एक बेहतर औषधि बनायी जा सकती है।
- पार्थीनियम की एक जाति 'पार्थीनियम अर्जेन्टेटम' को प्राकृतिक रबर का महत्वपूर्ण स्रोत माना गया है।
- पार्थीनियम के पौधे से प्राप्त हरी खाद से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होने से कृषि उत्पादन बढता है।

कैसे हो नियंत्रण :

आज समाज की तमाम समस्याओं के साथ-साथ एक समस्या और जुड़ गयी है वह है *पार्थीनियम* का बढता प्रकोप। हमारे देश में अभी तक कोई भी रसायन इसके नियंत्रण के लिए कारगर साबित नहीं हो सका है। खरपतवार नाशक दवाईयां भी सफल सिद्ध नहीं हो सकी हैं जो वातावरण को तो दूषित करती ही हैं साथ ही आर्थिक दृष्टि से मंहगी भी होती हैं।

इसका एक विकल्प पार्थीनियम पर 'जैविक नियंत्रण' के रूप में प्रकाश में आया है। जैविक नियंत्रण के अन्तर्गत मानव के लिए हानिकारक जीवों, कीटों या पौधों का उनके ही प्राकृतिक दुश्मन की मदद से सफाया किया जाता है। कीटों की कई जातियां एवं कवक की एक जाति अपने विकास एवं जीवन-चक्र को पूरा करने हेतु पार्थीनियम पर ही निर्भर हैं जैसे क्राइसोमेलिड़ी परिवार के भृंग (बीटल) *'जाइगोग्रामा बाइकोलोराटा'* नामक कीट पार्थीनियम की पत्तियों व फूलों को बड़े चाव से खाते हैं। यह कीट अन्य खरपतवार या फसल के पौधों को नहीं खाता है। पार्थीनियम के पौधों पर इसके आक्रमण के बाद पौधा मात्र एक पत्रहीन ठूंठ के रूप में बचा रहता है और धीरे-धीरे सूखकर नष्ट हो जाता है। दूसरा कीट टॉट्रीसिडी परिवार का सदस्य है जिसका नाम *'इपीब्लेमा स्ट्रेनुआना'* है। यह *पार्थीनियम* के तने में जगह-जगह गॉल (गांठ) उत्पन्न कर देता है। गॉल के अन्दर लार्वा लगातार तने को खाता रहता है। इस प्रकार धीरे-धीरे यह पौधा नष्ट हो जाता है।

पक्सीनिया अबरप्टा नामक कवक *पार्थीनियम* पर रस्ट रोग (किट्टरोग) उत्पन्न करता है। इस कवक की एक किस्म है- *पार्थीनीकोला* जिसके संक्रमण से पार्थीनियम की पत्तियां पीली पड़ जाती है व सिकुड़ कर सूख जाती है जिसके फलस्वरूप पौधा मर जाता है।

पार्थीनियम के उन्मूलन हेतु प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है कि अपने घर के आस-पास उगी इस घास को उखाड़ कर खत्म कर दें।

पार्थीनियम के दुष्प्रभाव से बचने हेतु सुझाव :

(1) *पार्थीनियम* के पौधे को हाथ से ना छुएं।

(2) अपने घर के आस-पास उगे *पार्थीनियम* को उखाड़ने हेतु खुरपी या अन्य यन्त्र का उपयोग करना चाहिए तथा उखाड़ते समय पौधे का कोई भी भाग शेष नहीं रहना चाहिए।

(3) पशुओं को ऐसी जगह ना छोड़े जहां *पार्थीनियम* अधिक मात्रा में उगा हो।

(4) *पार्थीनियम* जाति बाहुल्य क्षेत्रों में बच्चों को खेलने से रोकना चाहिए।

(5) इसके फूलों को घरों में न सजाएं।

बिदुल

भोलानाथ घोष
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

सिजलपिनेसी पादप-कुल के इस सुपरिचित वृक्ष को बंगाल में रक्तकंचन, लालकंचन, कोविदारा तथा विदुल नामों से जाना जाता है। जब कि हिन्दी में इसे कचनार, गुरिल, बरिआल, कुराज तथा कंदन नामों से पुकारते है। अंग्रेजी में इसे माउन्टेन इबोनी एवं वेरिगेटेड बाउहीनिया कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम *बाउहीनिया वेरिगाटा* है। इस वंश का नाम 16 वीं शताब्दी के दो जुड़वां भाइयों 'जान' तथा 'बाउहिन' के सम्मान में रखा गया है। यह वृक्ष मूलत: भारत का वासी है तथा इसको अति सुन्दर पुष्पीय वृक्षों की श्रेणी में स्थान प्राप्त है। इसकी द्विभाजित पत्तियां एवं विभिन्न रंग की धारियों वाले पुष्प सहज ही आकर्षित करते हैं।

कोलकाता में यह वृक्ष पार्कों उद्यानों तथा नवविकसित मुख्य पथों पर सुगमता से दिखता है। इन वृक्षों में फरवरी से अप्रैल तक फूल लगते हैं।

बौद्ध चित्रकारी में प्राय: बिदुल चित्रित किया गया है तथा बौद्ध धर्म के अनुयाइओं के लिए यह वृक्ष पवित्र मानो जाते हैं। इन वृक्षों के अनेकानेक आर्थिक एवं औषधीय उपयोग हैं। नव-पुष्प कालिकाओं का अचार बनाया जाता है। वृक्ष की छाल का उपयोग चर्म शोधन तथा रंगरेजी में किया जाता है। इनकी लकड़ी से खेती के औजार बनाए जाते हैं। इन वृक्षों से प्राप्त गोंद में 'चेरीगम' से समानता होती है। जड़ों से बनाया गया काढ़ा अपच में उपयोगी है तथा ऐसा माना जाता है कि यह काढ़ा सापों के विष के मारक का भी काम करता है। वृक्ष से प्राप्त छाल आरोग्यकार, पौष्टिक तथा कसैला होने के साथ चर्मरोगों तथा घावों में लाभकारी है।

इस वृक्ष को उसके बीजों से उगाया जा सकता है। श्वेत-पुष्पी बिदुल का वैज्ञानिक नाम *बाउहीनिया वेरिगाटा* प्रभेद *कैन्डिडा* है जो कोलकाता के उद्यानों या घरों में शोभा के लिए लगाया जाता है।

इस वंश की अन्य प्रजातियों उदाहरणार्थ *बाउहीनिया गालपीनी, बाउहीनिया पर्पूरिया* तथा *बाउहीनिया रेसिमोसा* भी कोलकाता में अनेक स्थानों पर उगाई गई हैं।

प्रदूषित वातावरण का पादपीय उपयोग द्वारा शोधन

दुर्गेश वर्मा एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

फाइटोरेमिडिएशन (Phytoremediation) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे पौधे पर्यावरण को स्वच्छता प्रदान करने में प्रमुख योगदान करते हैं। फाइटोरेमिडिएशन शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द phyto जिसका अर्थ है ''पादप'' और लैटिन शब्द remediare जिसका अर्थ है ''उपाय'' के संयोजन से हुई। यह आम तौर पर ऐसी प्रणाली का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जहाँ संदूषकों को दूर करने के लिए पौधों का (पत्तियों और जड़ों में संदूषक अवशोषित कराये जाते हैं) उपयोग करते हैं और अंततोगत्वा इन पौधों को एकत्र करके हानिकारक अपशिष्ट के रूप में निपटारा किया जाता है। इनमें से कुछ विधियों में पौधों में उपस्थित संदूषकों को हानिरहित पदार्थ में परिवर्तित करके पौधों को गीली घास, पशु चारा, कागज, आदि के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि बड़े पेड़ इस्तेमाल किए जा रहे हैं तो पौधों को सामान्य रूप से विकसित और परिपक्व होने दिया जाता है।

पौधों का उपयोग वातावरण को स्वच्छ करने के लिए किए जाने की अवधारणा नयी नहीं है। इस क्षेत्र में शोध कार्य बहुधा जंगली पौधों पर हुआ है, जो वास्तव में अपशिष्ट क्षेत्रों में उगते हैं। फाइटोरेमिडिएशन की अवधारणा का जन्म रूसी वैज्ञानिक सां इल्या रस्किन के साथ हुआ, आरम्भ में उनकी भेंट एक Envirogen Inc. नामक एक कंपनी से हुई जो कि सूक्ष्म जीवों का उपयोग तेलों एवं रसायनिक पदार्थों को मिट्टी में तोड़ने एवं साफ करने के लिए करती थी। डा. रस्किन को समरूप तकनीक खोजने में उत्सुकता हुई जो कि भारी धातुओं का शोधन कर सके, जो कि सूक्ष्म जीवों द्वारा सम्भव नहीं था। कुछ पौधों में मिट्टी से धातुओं को शोषित एवं संग्रहण करने की उच्च क्षमता होती है। इस तथ्य ने उनको आकर्षित किया और खनिजों की इन पौधों के समीप (सतहों पर) होने के कारण यह विचार आया कि धातुओं को मिट्टी से अवशोषित करने के लिये क्या पौधों का उपयोग नहीं किया जा सकता ? यहीं से फाइटोरेमिडिएशन की उत्पत्ति हुँ।

फाइटोरेमिडिएशन का उपयोग धातु, कीटनाशक, विलायक, विस्फोटक, कच्चा तेल, पालीएरोमेटिक हाइड्रोकार्बन, भूमि क्षरण, कृषि बहाव, अम्ल खानों का जल बहाव और रेडियोधर्मी संदूषण को साफ करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

फाइटोरेमिडिएशन पर्यावरण के अनुकूल संदूषणों को साफ करने का सुरक्षित एवं सस्ता माध्यम है। इस विधा में संदूषित मिट्टी या पानी को एक जगह इकट्ठा नहीं करना पड़ता, सीधे उन्हीं स्थानों पर पौधों को रोपित कर दिया जाता है तथा पानी दिया जाता है और अंत में उन्हें काट लिया जाता है, जिसमें कम श्रमशक्ति की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु इस तकनीक का मुख्य दोष यह है कि यह सभी जगहों के लिए उपयोगी नहीं है। यदि संदूषण काफी गहराई तक है या उसकी सांद्रता बहुत ज्यादा है, तो अकेले पौधे ही कुशलतापूर्वक दूषित जगह को शोधित नहीं कर सकते। संदूषित जगहों पर वृक्षारोपण, जल एवं वायु द्वारा मिट्टी के कटाव को कम कर देता है, जो संदूषको को फैलने से रोकने में मदद करता है, और मनुष्यों एवं पशुओं के प्रभावन (exposure) को कम करता है।

फाइटोरेमिडिएशन वास्तव में उन बहुत सारी विधाओं के लिए एक सामान्य शब्द है जिसमें पौधों को संदूषित मिट्टी और जल को साफ करने के लिए प्रयोग किया जाता है। पौधे कार्बनिक प्रदूषकों को अपघटित या उन्हें दूर करते हैं और धातु संदूषकों की स्थायी करते हैं। इसे एक या एक अधिक संयोजित तरीकों से किया जाता है। धातु संदूषक जैसे कि सीसा और पारा के फाइटोरेमिडिएशन की प्रक्रिया कार्बनिक संदूषकों के फाइटोरेमिडिएशन प्रक्रिया से थोड़ा अलग है।

धातु संदूषित जगहों का फाइटोरेमिडिएशन :

पादप निष्कर्षण (Phytoextraction) : जहाँ पौधों की जड़ें धातु संदूषकों को मिट्टी से अवशोषित करती हैं और उन्हें पौधे के विभिन्न अंगों जो कि मिट्टी के ऊपर हैं, में प्रवाहित करती हैं भिन्न-भिन्न पौधों में धातुओं को अवशोषित करने की अलग अलग क्षमता होती है। प्राय: उन जगहों पर जहाँ एक से अधिक प्रकार की धातुओं का संदूषण है, अलग-अलग पौधों को प्रयोग में लाते है। कुछ ऐसी प्रजातियाँ हैं जिन्हें अतिसंग्रहक पौधे (Hyperaccumulator plants) कहते हैं, जो अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक प्रदूषक अवशोषित करती हैं। ऐसी प्रजातियों को अत्यधिक प्रदूषित जगहों पर इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि उनमें प्रदूषण को शोधित करने की अच्छी क्षमता

होती है। एक बार जब यह पौधे बढ़ जाते हैं, और धातुओं को अवशोषित कर लेते हैं तो इन्हें काट लिया जाता है, और सावधानीपूर्वक फेंक दिया जाता है। इस प्रक्रिया को कई बार दोहराया जाता है, ताकि संदूषण निरामूलक अवस्था में आ जायें। कुछ हालातों में यह संभव है कि धातुओं की पुन: पादप निष्कर्षण के द्वारा निकाल लिया जाता है, यद्यपि यह प्रक्रिया प्राय: कीमती धातुओं के लिए आरक्षित है। ऐसी धातुएँ जो कि पादप निष्कर्षण द्वारा सफलतापूर्वक निष्कर्षित की गयी हैं, उसमें जस्ता, तांबा और निकिल सम्मिलित है। तथा सीसा और क्रोमियम धातुओं का शोषण करने वाले पौधों पर संतोषजनक शोध कार्य हो चुका है।

मूलनिस्पंदन (Rhizofiltration) : मूलनिस्पंदन पादप निष्कर्षण के समान है किन्तु इसे प्रदूषित मिट्टी के बजाय संदूषित भूमिजल को शोधित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। संदूषक जड़ों की सतह पर अवशोषित हो जाते हैं अथवा पौधों की जड़ों में शोषित हो जाते हैं। मूलनिस्पंदन में प्रयोग होने वाले पौधों को सीधे प्रदूषित जगह में नहीं लगाया जाता है बल्कि सर्वप्रथम उन्हें प्रदूषकों की परिस्थिति के अनुकूल बनाया जाता है।

पौधों को जलसंवर्धन प्रक्रिया द्वारा मिट्टी के बजाय स्वच्छ जल में उगाया जाता है, जब तक बड़ा मूलतन्त्र न विकसित हो जाये। जब बड़ा मूलतंत्र विकसित हो जाता है तो जल की आपूर्ति को प्रदूषित जल की आपूर्ति से प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। जब पौधे दशानुकुलित हो जाते हैं तो उन्हे प्रदूषित जगह पर रोपित कर दिया जाता है जहाँ पर पौधे की जड़ें प्रदूषित जल को संदूषकों के साथ अवशोषित करती हैं। जब जड़ें संदूषकों से संतृप्त हो जाती हैं तो उन्हें काट कर सावधानीपूर्वक फेंक दिया जाता है। यह प्रक्रिया कई बार दोहराई जाती है, ताकि प्रदूषण कम हो जाये।

पादपस्थायीकरण (Phytostabilisation) : ऐसी प्रक्रिया है जहाँ पौधे संदूषकों को ऐसी अवस्था में परिवर्तित कर देते हैं, जो कि जीवधारियों के लिये अनुपलब्ध होती हैं। बंजर भूमि क्षरण के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। इससे प्रदूषक वातावरण में फैल जाते हैं। ऐसी भूमि में सहनशील पौधों की प्रजातियों का पुनर्पादपीकरण भूमि को स्थायी बनाने में मद्द करता है। बड़े पौधे इस पादपस्थायीकरण की प्रक्रिया के लिए उपयुक्त हैं, क्योंकि यह काफी समय तक रहते हैं इनका मूलतंत्र काफी बड़ा होता है और ये छोटे पौधों की तुलना में ज्यादा क्षेत्र में पहुँच सकते है।

कार्बनिक संदूषित जगहों का फाइटोरेमिडिएशन :

पादपअपव्ययीकरण (Phytodegradation): ऐसी प्रक्रिया है जिनमें कार्बनिक संदूषक जैसे कीटनाशक, खरपतवारनाशक, हाइड्रोकार्बन इत्यादि का उद्ग्रहण (uptake) होता है और पोधों के ऊतकों में उपापचयित कर दिया जाता है या तोड़ दिया जाता है।

मूलअपव्ययीकरण (Rhizodegradation) : कुछ पौधों के मूलतंत्र रासायनिक पदार्थ हैं जो सूक्ष्मजीवों की मद्द से कार्बनिक संदूषकों के जैवविघटन (biodegradation) को बढ़ा देते हैं।

पादपवाष्पीकरण (Phytovolatilization) : ऐसी प्रक्रिया जिसमें जल में घुलनशील कार्बनिक संदूषकों का पत्तियों तक परिवहन होता है, और अंत में यह संदूषक पत्तियों द्वारा वातावरण में वाष्पित कर दिये जाते हैं।

ऐसे पौधे जो मिट्टी को विसंदूषित करने के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं, उनमें निम्नलिखित गुण होना आवश्यक है।

संदूषकों को मिट्टी के कणों और / अथवा मिट्टी में तरल पदार्थो से अपने जड़ों में अवशोषित कर रहें हो।

संदूषको को अपनी जड़ों के ऊतक से शारीरिक और / या रासायनिक रूप से बाँध रहें हों।

संदूषकों को अपनी जड़ों से बढ़ रहे तनों में परिवहित कर रहें हों।

संदूषकों का मिट्टी से रिसाव होना रोक या कम कर रहें हों।

पौधे संदूषकों का केवल संग्रहण, अपघटन, या वाष्पीकरण ना कर रहे हो किन्तु विभिन्न परिस्थितियों में शीघ्र बढ रहे हों और उन्हें आसानी से काटा जा सके।

फाइटोरेमिडिएशन के प्रयोग में आने वाले कुछ प्रमुख पौधे एवं उनके द्वारा संग्रहित संदूषकों की सूची :

क्र. सं.	पौधों के नाम	पौधों द्वारा संग्रहित संदूषक
१.	*एकीलिया मिलीफोलियम*	कैडमियम धातु
२.	*बक्कोपा मोनेराई*	पारा एवं कैडमियम धातु
३.	*बीटा वुल्गेरिस*	कैडमियम धातु
४.	*ब्रैसिका रापा*	कैडमियम व जिंक धातु
५.	*सिरस्टियम अरवेंस*	कैडमियम धातु
६.	*क्लेटोनिया परफोलिऐटा*	कैडमियम धातु
७.	*साइनोडान डैक्टिलान*	हाइड्रोकार्बन धातु
८.	*डिजीटैलिस परपुरिया*	कैडमियम धातु
९.	*आइकोर्निया क्रैसीपस*	कैडमियम व जिंक धातु
१०.	*हेलियन्थस एनस*	कैडमियम, क्रोमियम व निकिल धातुएँ एवं पाली-एरौमेटिक हाइड्रोकार्बन
११.	*हायड्रैंजिया मैक्रोफिला*	एल्युमिनियम धातु
१२.	*हाईड्रिला वर्टीसिलाटा*	जिंक, पारा, आरसिनिक व कैडमियम धातु
१३.	*हायड्रोकोटाइल अम्बेलाटा*	क्रोमियम धातु
१४.	*आइपोमिया एक्वेटिका*	कैडमियम धातु
१५.	*लेम्ना माइनर*	निकिल धातु
१६.	*लुपिनस अल्बस*	आरसिनिक धातु
१७.	*मेलस्टोमा मालाबाथ्रिकम*	एल्यूमिनियम धातु
१८.	*मोरिंगा ओलीफेरा*	कैडमियम धातु
१९.	*मोरस रुब्रा*	पाली-एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन
२०.	*ट्राईफोलियम रिपेंस*	पाली-एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन
२१.	*एजोला पिन्नाटा*	क्रोमियम धातु
२२.	*सोलेनम नाईग्रम*	कैडमियम धातु
२३.	*वेटिवेरिया जाइजेनोइडेस*	लेड़ व जिंक धातु
२४.	*कैथरेन्थेस रोजियस*	कैडमियम व लेड धातु
२५.	*टेरिस विट्टाटा*	आरसिनिक धातु

फाइटोरेमिडिएशन **से लाभ :**

यदपि फाइटोरेमिडिएशन को बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं किया जाता है, किन्तु इसके बहुत से लाभ हैं।

- यह वर्तमान में मिट्टी को शोधित करने के ''यांत्रिक'' तरीकों की तुलना में कम लागत वाला है।
- यह प्राकृतिक क्षरण की तुलना में तेज है।
- यह उदासीन है।
- भूमि भरण में दूषित सामग्री की मात्रा बहुत कम की जा सकती है।
- जीवभार के नियंत्रित दहन से पुन: ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।
- निस्तारण के लिए आरक्षित स्थानों की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- इसमें ऐसी प्रदूषित जगहों को शोधित करने की क्षमता है, जिसमें एक से अधिक प्रकार के प्रदूषक पाये जाते हैं। इसमें प्रदूषित मीडिया के उत्खनन और परिवहन से बचा जा सकता है, इस प्रकार से संदूषण के प्रसार का जोखिम कम हो जाता है।

इसे नागरिकों द्वारा स्वीकार किए जाने की संभावना अधिक है, क्योंकि यह पारपंरिक तरीकों से अधिक सुगम है।

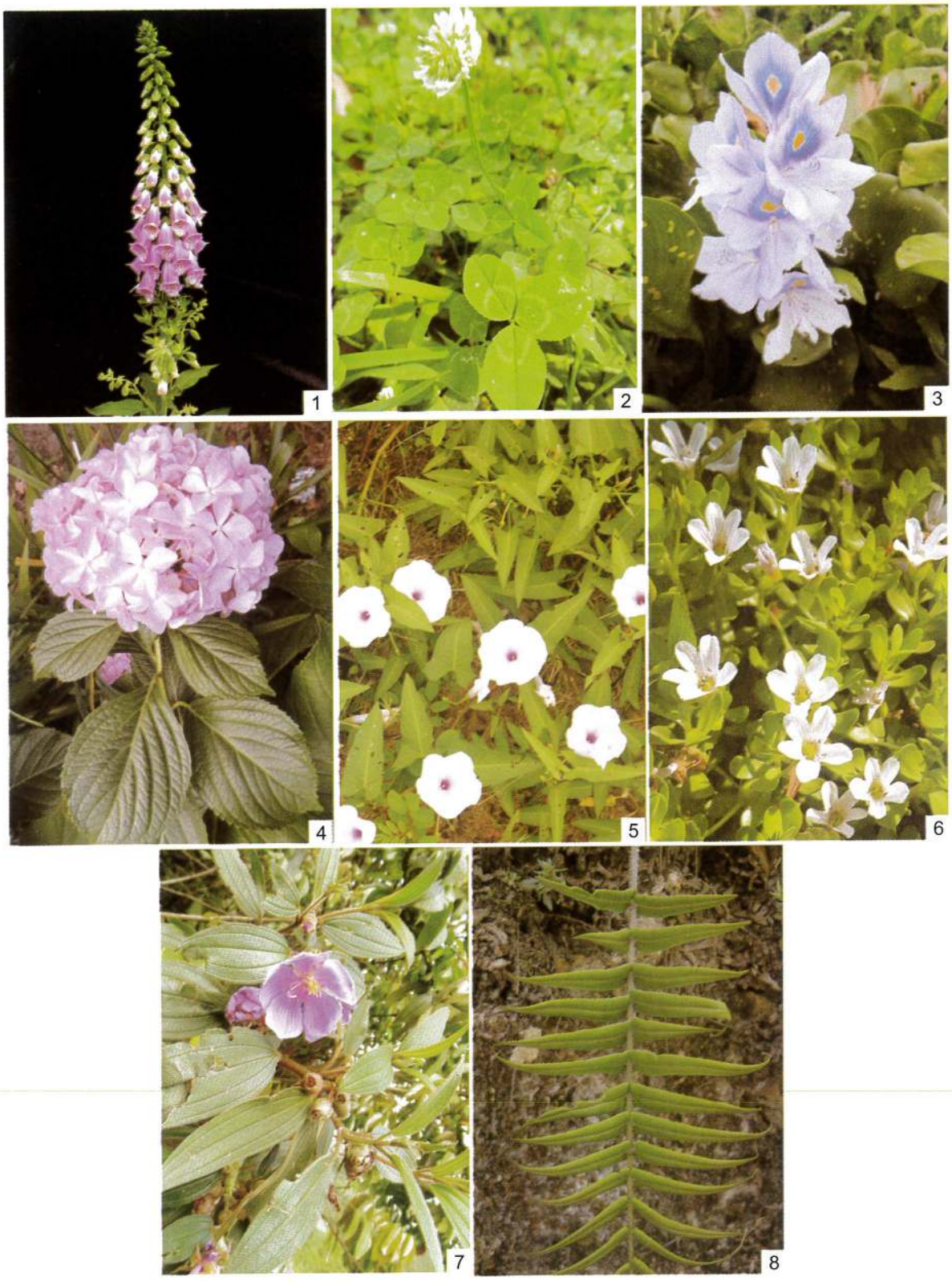

1. डिजीटैलिस परपुरिया 2. ट्राईफोलियम रिपेंस 3. एकोर्निया क्रैसीपस 4. हायड्रैंजिया मैक्रोफिला
5. आइपोमिया एक्वेटिका 6. बैंकोपा मोनिएराई 7. मेलस्टोमा मालाबाथ्रिकम 8. टेरिस विट्टाटा

फाइटोरेमिडिएशन से हानि :

- यह पौधों के बढ़ने की आवश्यक शर्तो पर निर्भर करता है (जैसे जलवायु, भू-विज्ञान, ऊंचाई, तापमान इत्यादि)
- सफलता पौधों का प्रदूषकों के सहन करने की क्षमता पर निर्भर करता है।
- मुरझाये हुए ऊतको में संग्रहित संदूषक शरद ऋतु में पुन: वातावरण में वापस जा सकते हैं।
- संदूषक लकड़ी वाले ऊतकों में संग्रहित हो सकते हैं, जिन्हें ईंधन की तरह इस्तेमाल किया जाता है।
- बड़े पैमाने पर चलाने के लिए कृषि उपकरणों के उपयोग और ज्ञान की आवश्यकता होती है।
- यह विधि आमतौर पर अन्य उपचार विधियों की तुलना में धीमी है।
- ज्यादातर परिस्थितियों में संदूषण जिसका कि निराकरण करना है, अधिक गहराई में नहीं होना चाहिए।
- जगह तक पहुँच नियंत्रित किया जाना चाहिए अन्यथा ये पौधे पशुओं और आम जनता के लिए हानिकारक हो सकते हैं।
- संदूषक जिनका कि फाइटोरेमिडिएशन द्वारा निराकरण किया जा रहा है, का बाहर प्रसार हो सकता है। (मतलब कि वह भूमिजल में प्रवेश कर सकते हैं या जीवों में जैवसंग्रहित हो सकते हैं)।

निष्कर्ष :

पर्यावरणीय संदूषकों का फाइटोरेमिडिएशन एक अग्रसर और आकर्षित करने वाला शोध का क्षेत्र है। अतिसंग्रहक पौधों में मिट्टी तथा जल से विभिन्न प्रदूषकों को निकालने की क्षमता होती है। इस क्षमता के बावजूद फाइटोरेमिडिएशन तकनीक अभी व्यवसायिक रूप नहीं ले पायी है। इसका मुख्य कारण पौधों की क्रियाविधियाँ हैं, जो कि पौधों में प्रदूषकों को अवशोषित एवं जैवसंग्रहित करती हैं, की हमारी सीमित समझ और पौधों के मूलतंत्र, प्रदूषकों, मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवधारियों के बीच जटिल पारस्परिक संबंध है।

प्रत्येक प्रदूषित जगह की परिस्थितियाँ अलग होती हैं, इसलिए भिन्न-भिन्न अतिसंग्रहक पौधों की प्रजातियों के लिए अनुकूलित हैं।

वास्तव में आदर्श फाइटोरेमीडिएटर पौधे वह हैं जो शीघ्र बढ़ रहे हों, अधिक जैवभार (biomass) बना रहे हों, और मूलतंत्र विस्तृत हो, क्योंकि प्राकृतिक फाइटोरेमीडिएटर पौधों में प्राय: ये गुण नहीं होते हैं। इसलिए वैज्ञानिक जैवतकनीक पौधे विकसित करने में केन्द्रित हैं जो कि अलग-अलग जगहों की जरूरत के अनुसार उपयुक्त हों।

जैसा कि पहले बताया गया है, फाइटोरेमिडिएशन में कई कमियाँ हैं, यह सभी हानिकारक अपव्ययों के निपटारे के लिए उपयुक्त नहीं है। इसके अलावा इस तकनीक को व्यापारिक रूप से उपलब्ध होने से पूर्व पूर्णतय: विकसित होना चाहिये। तथापि वर्तमान में हो रहे शोध कार्य साफ तौर पर इंगित करते हैं कि यह उपयुक्त और आदर्श तकनीक है और भविष्य में सफलता की आशा रखती है।

पादप ऊतक संवर्धन

गिरिराज सिंह पंवार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पौधों को पादप अंगों या बीजों से जीवाणुरहित कृत्रिम पोषक माध्यम में नियंत्रित ताप, प्रकाश एवं आर्द्रता पर उगाने की प्रक्रिया को पादप ऊत्तक संवर्धन तकनीक कहते हैं। इस तकनीक का उद्‌भव सन् 1938 ई. में स्लाइडेन एवं स्वान के टोटीपोटेन्सी सिद्धान्त से हुआ था। तत्पश्चात् 1902 में जी हैवरटलैण्ड ने सर्वप्रथम पादप कोशिका को कृत्रिम पोषक माध्यम में उगाने का प्रयास किया और इन्हीं को पादप ऊतक संवर्धन तकनीक का जनक भी कहा जाता है।

20 वीं शताब्दी में पादप ऊत्तक संवर्धन तकनीक ने उल्लेखनीय प्रगति की और आज पादप विज्ञान के हर क्षेत्र में प्रयोग लाई जा रही है, जैसे :

1. पादप जैव विविधता के संरक्षण में, 2. पादप जैव प्रोद्यौगिकी में,
3. उन्नत कृषि जातियों के विकास में, 4. ट्रांसजनिक फसल के उत्पादन में,
5. कृत्रिम बीजों के उत्पादन में, 6. संकटापन्न जातियों के जर्मप्लाज्म संरक्षण में,
7. पौधों में कायिक उत्परिवर्तन के विकास में, 8. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पौधों के आदान-प्रदान में,
9. पेड़ पौधों से प्राप्त औषधीय रसायनों के उत्पादन में।

सर्पगन्धा (*रॉल्फिया सर्पेन्टाइना*) का सूक्ष्म प्रवर्धन

एपोसाईनेसी कुल का सदस्य सर्पगन्धा औषधीय गुणों के कारण जाना जाता है। सर्पगन्धा का सम्पूर्ण पौधा औषधीय रसायनों से परिपूर्ण है किन्तु इसकी जड़ों में यह रसायन बहुतायत में मिलते है। इसकी जड़ें लगभग 150 ऐसे रसायनों का स्रोत है जो आधुनिक समय में कई प्रकार के रोगों के निदान में प्रयुक्त किये जाते हैं। अपने इन औषधीय गुणों एवं दिन प्रतिदिन बढते औद्योगिकरण एवं शहरीकरण ने इस पौधे के जीवन को संकट में डाल दिया है। सर्पगन्धा के पौधे पर बढ़ते संकट के कारण आइ.यू.सी.एन. (अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण एवं प्राकृतिक

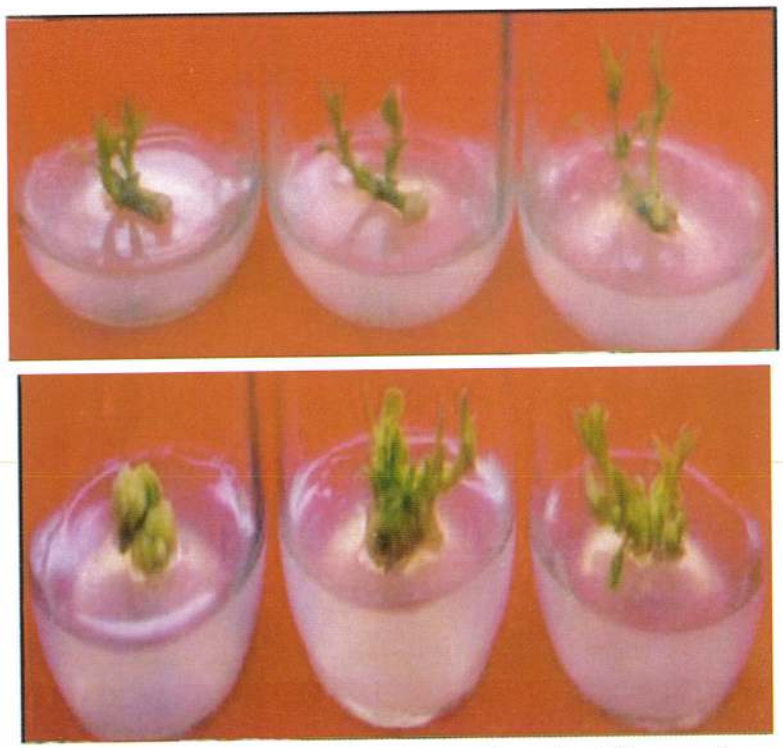

चित्र 1 प्रत्यक्ष ऊतक संवर्धन तकनीक द्वारा सर्पगन्धा के पौधों का प्रवर्धन

संसाधन संरक्षण संघ) ने इसके संरक्षण हेतु इसको संकटापन्न सूची में शामिल किया है। सर्पगन्धा के संरक्षण हेतु साइटिस (कन्वेंशन ऑन इण्टरनेशनल ट्रेड इन इन्डेनजर्ड स्पिसीज ऑफ वाइल्ड फौना एण्ड फ्लोरा) ने इसे अपने परिशिष्ट-II में शामिल किया है और इसके किसी भी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय आयात-निर्यात पर रोक लगाई है।

सर्पगन्धा के संरक्षण हेतु इसका पादप ऊतक संर्वधन तकनीक के तहत निम्नलिखित विधियों से इसका बहुगुणीय प्रर्वधन किया गया है।

1. **प्रत्यक्ष प्रर्वधन :** इस विधि में पौधे के तनों को छोटे-छोटे भागों में काटकर उन्हें विभिन्न रसायनों द्वारा जीवाणुरहित करके पादप वृद्धि नियंत्रक साइटोकाइनिन एवं ऑक्जिन के 2 और 1 के अनुपात युक्त एम. एस. पोषक माध्यम में प्रतिस्थापित कर देते हैं। कुछ समय पश्चात् तने में उपस्थित कलिकायें विकसित होने लगती हैं और तत्पश्चात् पूर्ण विकसित तने प्राप्त होते हैं। इन तनों को जड़ों के विकास हेतु पादप वृद्धि नियंत्रक ऑक्जिन एवं साइटोकाइनिन के 2 और 1 के अनुपात युक्त मूल प्रेरक एम. एस. पोषक माध्यम में प्रतिस्थापित करते हैं और अन्ततः पूर्ण विकसित पौधे प्राप्त होते हैं।

2. **अप्रत्यक्ष प्रर्वधन :** इस विधि में सर्पगन्धा की नव-कलिकायें, पत्तियां तथा अन्य विभाजीय ऊत्तक को लैमनार फलो में जीवाणुरहित करके पादप वृद्धि नियंत्रक ऑक्सीजन एवं साइटोकाइनिन के 2 और 1 के अनुपात उपयुक्त एम. एस. पोषक माध्यम में प्रतिस्थापित करते है। प्रतिस्थापन के कुछ समय पश्चात् इसमें कैलस ऊतक विकसित होने लगता है जो कि एक अविकसित ऊतक का समूह है और इससे ऊतक संर्वधन तकनीक के तहत पौधे के किसी भी अंग को विकसित किया जा सकता है।

एक बार कैलस विकसित होने के पश्चात कैलस के छोटे - छोटे टुकड़ों को पादप वृद्धि नियंत्रक साइटोकाइनिन एवं ऑक्जिन के 2 और 1 के अनुपात युक्त प्ररोह-प्रेरक एम. एस, पोषक माध्यम में प्रतिस्थापित किया जाता है। कुछ समय पश्चात् कैलस से छोटी-छोटी कलिकायें विकसित होने लगती हैं और बड़ी होकर पूर्ण प्ररोह का रूप ले लेती हैं। इन प्ररोह को जड़ों के विकास हेतु पादप वृद्धि नियंत्रक ऑक्जिन एवं साइटोकाइनिन के 2 और 1 के अनुपात युक्त मूल प्रेरक एम. एस. पोषक माध्यम में प्रतिस्थापित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप पूर्ण पौधों का निर्माण होता है।

पादप ऊत्तक संवर्धन द्वारा विकसित पूर्ण पौधों को एम. एस. पोषक माध्यम से निकाल कर हरित गृह में गमलों में स्थानान्तरित किया जाता है। धीरे-धीरे यह पौधे हरित गृह के वातावरण में अपने आप को ढाल लेते हैं। इन पौधों को नर्सरी या वनस्पति उद्यान में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

चित्र 2. अप्रत्यक्ष ऊतक संर्वधन तकनीक द्वारा सर्पगन्धा के पौधों का प्रवर्धन

जीवित वट मूल (जड़) सेतु

हुसैन अहमद बरभूईया एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

प्राकृतिक संपदाओं का सदुपयोग किन किन रूपों मे किया जा सकता है तथा इनकी उपयोगिता कहाँ कहाँ हो सकती है, यह एक रोचक तथा उपयोगी विषय है। प्रकृति की इन्हीं उपयोगिताओं में से एक है : *जीवित वट मूल सेतु* (Living Root Bridge)। यह जीवित वट मूल सेतु पिछले कुछ वर्षों से चर्चा में रहा है तथा मेघालय राज्य में प्रमुख पर्यटन स्थलों में तेजी से स्थान बना रहा है। जीवित वट मूल सेतुओं का निमाण रबर वृक्ष *(Ficus elastica)* नामक मोरेशी कुल की एक प्रजाति की जड़ों का उपयोग करके किया जाता है। इस वृक्ष की विशेषता है कि इसकी जड़ें अन्य वृक्षों की तुलना में काफी विस्तारित होती है। इस वृक्ष के तने से कई द्वितीयक जड़ें निकलती हैं जोकि मिट्टी क्षरण को राकने मे सहायक है। जिसकी वजह से तेजी से बहने वाली धाराओं के कारण मिट्टी का कटाव के बावजूद ये रबर वृक्ष अपने को बहुत अच्छी तरह से विकसित करते हैं। शायद इस वृक्ष के इन्ही गुणों को देखकर खासी जनजाति के लोगों ने उनकी क्षेत्रीय नदियों और तेज पर्वत-धाराओं को पार करने के लिए इस वृक्ष की जड़ों का उपयोग करके इन जीवित वट मूल सेतुओं का निर्माण किया।

इन वट मूल सेतुओं के निमाण के लिए खासी समुदाय के लोग, बांस या सुपारी का खोखला किया हुआ तना पुल की आवश्यकता के अनुसार बिछाकर, उसपर रबर वृक्ष के पतली और लंबी जड़ों को एक सीधी रेखा में विकसित करते हैं। इस तरह रबर वृक्ष की जड़ें एक किनारे से बढते हुए दूसरे किनारे तक पहुँचकर मिट्टी के भीतर आसानी से विकसित होती हैं तथा धीरे-धीरे बढते हुए एक मजबुत सेतु का रूप लेती है तथा आवागमन हेतु उपयोग में लायी जाती है। इन सेतुओं में आम तौर पर दो से अधिक बेस-बीम और दो सुरक्षा रेलिंग होती है। सेतु के किसी भी छिद्र को भरने के लिए पत्थर का उपयोग करते हैं जो कि समय के साथ साथ पुल के फर्श में अंत:स्थापित हो जाते हैं। इन पुलों को पूरी तरह कार्यात्मक होने में 10-15 साल लगता है। दिन प्रतिदिन इनके वहन-क्षमता में वृद्धि होती है। ये जड़ें इतनी मजबूत होती है कि इसमे 50 से भी अधिक लोग एक साथ पार हो सक्ते हैं। ये वट मूल सेतु 53-100 फुट तक लंबे होते हैं। अच्छी तरह से बन जाने के बाद इन पुलों का जीवन काल 500 से 600 साल होता है। इन सेतुओं की मुख्य विशेषता यह है कि ये वर्षा के तेज बहाव मे भी नहीं टूटते है और समय के साथ साथ मजबूत होते जाते हैं। आज भी चेरापूंजी के पास इन गांवों में रहने वाले लोग इन पुलों का दैनिक इस्तेमाल करते हैं।

वट वृक्ष सेतुओं की खोज : चेरापुंजी रिजॉर्ट के आयोजक श्री डेनिस पी. रायेन रिजॉर्ट के निर्माण के समय इन पहाड़ियों के आसपास ट्रैकिंग मार्गों की खोज कर रहे थे। ऐसे ही एक ट्रैकिंग यात्रा में वह गांव के कुछ लोगों के साथ टीनरोंग गांव में प्रार्थना सभा के लिये गये थे। अगले दिन लौटते समय वे 200 फुट लंबे एक स्टील रस्सी के पुल से पार हुए। उसके बाद वे एक छोटी सी पहाड़ी नदी को, जड़ों और जंगली लताओं से बनाये गये एक पुल जो कि लगभग 30 फुट लंबा था पार किया। उसी समय श्री रायेन पुल से प्रभावित हो कर पुल की कुछ तस्वीर ले लिए थे। बाद में जब रिजॉर्ट पर्यटकों के लिए खोला गया तब इन जड़-पुल छाया चित्रों को फोटो कैप्सन ''यह टार्जन भूमि-पुल जड़ों और जंगली लताओं से बना हुआ'' के साथ फोटो-एलबम में रखा गया। शुरुआती दौर में पर्यटकों ने इसमें बहुत अधिक रुचि नही ली लेकिन लगभग छह महीने के बाद महाराष्ट्र के एक नवविवाहित दंपति जब यहाँ भ्रमण के लिए आए तो रसोईघर के एक सहायक ने उन लोगों को इस पुल को दिखाने के लिए प्रस्ताव किया जो उनकी बहुत पसंद आया और इसे देखने की उत्सुकता हुई। इस जीवित वट मूल सेतु को देख कर ये लोग बहुत रोमांचित हुए और भूरि भूरि प्रशंसा की। इस सब से उत्साहित होकर अगले दिन श्री रायेन ने उस वट मूल पर जाकर बड़े पैमान पर विभिन्न कोणों से सेतु का छाया चित्र लिया और उसके बारे में जानकारी एकत्रित की। उन तस्वीरों को ''लीविंग रूट ब्रिज'' नाम से एक विशेष एलबम में रखा गया। यह सेतु सीज ग्राम के क्षेत्र में पड़ता है, जो उममोनोई पहाड़ी धारा के किनारे स्थित है। श्री स्नाटोन छयन ने इस पुल का निर्माण किया था तभी से जब भी कोई पर्यटक भोजन या रहने के लिए आते थे उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए श्री रायेन द्वारा लिए गए छाया चित्रों का एलबम दिखाया जाता था। धीरे धीरे यह लीविंग रूट ब्रिज के नामसे विख्यात हो गया और हजारों पर्यटकों का इस पुल को देखने के लिये आगमन होने लगा।

मेघालय में इस तरह के कई वट वृक्ष सेतु हैं जिनमें से प्रमुख तीन का विवरण निम्नवत है।

उमशिंग द्वि मंजिल (Double decker) वट मूल सेतु : यह मेघालय के पूर्वी खासी हिल्स जिले के नोंगरियट गांव में स्थित है। यह उमशिंग धारा के ऊपर स्थित होने के कारण इसी के नाम से नामित है। इस पुल की खोज श्री डेनिस पी. रायेन ने 15 अगस्त, 2001 में की थी जब वे पोलैंड की रहनेवाली श्रीमती करोलीना सोबोलेव्स्का के साथ घाटी के तल पर तस्वीर लेने गये। तबसे यूरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया जैसे कई देशों से पर्यटक इस सेतु का भ्रमण कर चुके हैं। एक साथ दो जीवित जड़ पुल होने के कारण यह सबसे अनोखा एवं धरती पर अद्वितीय है। इस उमशिंग डबल डेकर रूट ब्रिज जाने के रास्ते में तीन से अधिक रूट ब्रिज हैं। जिनमें से दो है लडर रूट ब्रिज एवं कुलवेर्ट रूट ब्रिज। नोंगरियट से थोड़ा आगे मव्सव में और एक सुंदर रूट ब्रिज है। नोंगरियट के लोग उस जगह में और एक नया रूट ब्रिज बना रहे हैं।

उममोनोई वट मूल सेतु : यह मेघालय के पूर्वी खासी हिल्स जिले के लाइट्कीन्सेव गांव में स्थित है। यह चेरापूंजी से लगभग 15 किमी तथा शिलांग से 70 किमी दक्षिण - पश्चिम में है. यह सेतु 53 फुट लंबा व 100 से अधिक वर्ष पुराना है।

मावलीनोंग वट मूल सेतु : यह सेतु शिलांग से 90 कि.मि. दूर शिलांग-डावकी रोड के मावलीनोंग गांव में स्थित है, यह लगभग 70 फुट लंबा है। इसी गांव को भारत का सबसे स्वच्छ गांव होने का गौरव प्राप्त है।

जैव-इंजीनियरिंग का यह चमत्कार प्रकृति पर मानव की निर्भरता तथा इसकी उपोयोगिता के जीते जागते उदाहरणों में से एक है। वर्तमान मे यहाँ के निवासियों को अपनी इस अनोखी कला के मूल्यों का एहसास हो चला है जिनको कंक्रीट और स्टील रस्सी के पुलों के आगमन के साथ भुलाया जा रहा था। यह प्रतीत होता है कि चेरापुंजी की तरह एक दिन ये वट मूल सेतु भी मेघालय को विश्व के पर्यटन मानचित्र में दर्शित कराएंगे।

राभा जनजाति का पारंपरिक पेय 'यविरा' या 'हरि'

एन. एन. राभा, सचिन शर्मा एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

आसाम के आदिवासी समुदायों द्वारा चावल से निर्मित यविरा (राइस बीयर) का सेवन एक सामान्य पारंपरिक प्रथा है, इसे अलग अलग आदिम समुदायों द्वारा विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे 'बोड़ो' - 'जुमाइ'; 'देओरी' - 'सूजेन'; 'मिकीर' - 'मोर्फो'; 'दिमासा'- 'जूं' तथा 'मिशिंग' के द्वारा 'अपोंग' नाम से जाना जाता है। अन्य जनजातीय क्षेत्रों मे इसे 'लाओपानी', 'जाजपानी' एवं 'मोड़' नामों से भी जाना जाता है। यविरा आसाम के अनेक जनजातीय समूहों एवं जातीय समुदायों के जीवन का अभिन्न अंग है और उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जनसंख्या के आधार पर राभा समुदाय आसाम के जनजातीय समूहों में बोड़ो कछारी समूह के बाद आता है, जो कि आसाम की सभी निचले एवं मध्यवर्ती क्षेत्रों मे फैले हुए हैं। आसाम के चार प्रमुख जिलों : ग्वालपाड़ा, कामरूप, दरांग एवं उदालगुडी में ये मुख्यत: निवास करते हैं। उदालगुडी जिला बोड़ोलैंड क्षेत्रीय स्वायत्त जिलों में से एक है और ग्वालपाड़ा, कामरूप, जिलों के बाद यह राभा आबादी वाला प्रमुख क्षेत्र है। चावल इस जनजाति का प्रमुख भोजन है। आसाम के अन्य आदिम समुदायों की तरह राभा समुदाय भी सूखी मछली, सूअर के गोश्त और चावल निर्मित यविरा के हमेशा से शौकीन रहे हैं।

वनस्पतिविज्ञान में प्रकाशित अनेक शोधपत्रों में इसे तैयार करने और पौधे के प्रयोग को वर्णित किया गया है, लेकिन आसाम के उदालगुडी के राभा क्षेत्रों से बहुत ही सीमित जानकारी उपलब्ध है। इस क्षेत्र में अधिकांशत: राभा, कोछ, सरानिया कछारी, बोड़ो, गारो, नेपाली और चाय समुदाय के लोग निवास करते हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र उत्तर में भूटान और अरूणाचल प्रदेश, दक्षिण में बक्सा, पूर्व में सोनितपुर और पश्चिम में दरांग जिलों द्वारा घिरा है जो कि 26° 46' से 26° 77' उत्तर अक्षांश और 92°08' से 95°15' देशांतर के मध्य स्थित है। समुद्र तल से इसकी ऊंचाई लगभग 345 मी. है। यहाँ की उत्कृष्ट जैव विविधता एवं बहुरंगी जातीय समुदायों के साथ रंगबिरंगे भूदृश्य की मौजूदगी इस स्थान को एक अलग पहचान देती है। इस क्षेत्र की उत्कृष्ट जैव विविधता यहां के निवासियों को वनस्पति और जीव जंतुओं का अवलोकन एवं छानबीन कर अपने पारंपरिक ज्ञान को बढ़ाने के लिए प्राथमिक उपलब्धि मुहैया कराती है। यहाँ के विभिन्न जनजातीय समुदाय के लोगों को पारंपरिक औषधीय पौधों के उपयोग के बारे में गूढ़ ज्ञान है, इसलिए इन जनजातीय समूहों द्वारा प्रयोग मे लाई जाने वाली पादप प्रजातियों के बारे मे जानकारी जुटाना आवश्यक हो जाता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आसाम के राभा क्षेत्रों मे सर्वेक्षण किया गया। प्रस्तुत लेख चावल निर्मित यविरा को बनाने के पारंपरिक तरीके और उसके सेवन की पद्धति पर केन्द्रित है।

भेताई - तीता (*क्लिरोडेंड्रम विस्कोसम*)

'सुराची' - एक प्रारम्भिक टिकिया

आसाम के राभा क्षेत्रों मे सर्वेक्षण के दौरान 'सुराची' - एक प्रारंभिक वानस्पतिक टिकिया एवं स्थानीय चावल से निर्मित *'यविरा'* जिसे *'हरी'* या *मेरा* नाम से भी जाना जाता है, के बारे में इसे प्रयोग एवं निर्मित करने वाले क्षेत्रों के लोगों से जानकारी संग्रहित की गई। अधिकांश महिलाएं इस प्रक्रिया में सम्मिलित रहती हैं। उनसे 'हरि' के निर्माण, पौधे के प्रयोग, खमीरीकरण की प्रक्रिया एवं यविरा के उपयोगों के बारे मे सूचनाएं एकत्रित की गई। पौधे को अध्ययन क्षेत्र से एकत्रित कर उसे पादपालय में जमा किया गया और साहित्य की सहायता से उसकी पहचान की गई, तथा यह पाया गया कि राभा समुदाय केवल एक ही पौधे

भेताई-तीता (*क्लिरोडेंड्रम विस्कोसम*) का इस्तेमाल करते हैं जो कि द्विबीजपत्री पादप समूह के वर्बिनेसी कुल का सदस्य है।

'सुराची' की निर्माण विधि :

सर्वप्रथम चावल को साफ करके मुलायम होने के लिए 45 घंटों के लिए पानी में भिगो दिया जाता है। मुलायम होने पर इन चावलों में धोकर साफ की हुई 'भेताई तीता' की परिपक्व हरी पत्तियों को मिश्रित कर उराल (लकड़ी से बने ऊखल और मूसल) की सहायता से कूटा जाता है। इस कुटे हुए मिश्रण में पानी मिला कर उसे लेप में परिवर्तित कर इसे लगभग 2-3 से. मी. गोलाई तथा 0.5 से. मी. मोटाई की टिकिया बना कर 2-3 दिन धूप में या हवा में सूखने के लिये रख दिया जाता है। इस सूखी हुई टिकिया (सुराची) का लगभग एक साल या अधिक तक भंडारण कर सकते हैं।

'हरी' या 'मेरा' बनाने की विधि :

'हरी' बनाने के लिए चावल को उबाल कर पका लिया जाता है तथा ठंडा होने एवं सूखने के लिये रख दिया जाता है। इन चावलों में एक सुराची प्रति किलोग्राम चावल के हिसाब से मिला कर इस मिश्रण को एक बर्तन में बंद करके एक रात के लिये रख दिया जाता है, अगले दिन इसमें पर्याप्त पानी मिला के इसे हारी (मटका) में भर कर चावल के भूसे में 2-3 दिन तक वायुरहित करके खमीरीकरण के लिए रखा जाता है। खमीरीकृत मिश्रण में फिर से पानी मिला कर पतला कर छान लिया जाता है। छाना हुआ तरल पदार्थ ही 'हरी' कहलता है।

सुराची एवं हरी बनाने की प्रक्रिया दिखाता प्रवाहचित्र :

चावल→4-5 घंटे के लिए भिगोना→क्लिरोडेंड्रम विस्कोसम की हरी पत्ती डालना→अच्छे से मिश्रण करना→लेप बनाना और उससे टिकिया बनाना→2-3 दिन सूखना और सुराची तैयार→चावल पकाना, ठंडा करना और सुखाना→सुराची डालना→अच्छे से मिश्रण करना→मिश्रण को एक रात के लिए रखना→पानी मिलाना एवं वायुरहित मटके में 2-3 दिन खमीरीकरण के लिए रखना→पानी मिलाना एवं छानना→ 'हरी' (यविरा) तैयार।

यह पाया गया कि 'हरी' को राभा समुदाय के लोग एक स्फूर्तिदायक पेय के रूप में इस्तेमाल करते हैं तथा बहुत से रिवाजों, त्योहारों, विवाह, और सामुदायिक समारोह के अवसर पर इसका विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त यह बहुत से गरीब परिवारों के आय का साधन भी है।

अत: इस पौधे (*क्लिरोडेंड्रम विस्कोसम*) का पादप-रसायन संबंधी अध्ययन अति आवश्यक है जिससे इस पारंपरिक पेय की अन्य महत्वपूर्ण खूबियों, लाभकारी प्रभावों के बारे में तथा दवा के रूप में इसकी उपयोगिता को जांचा जा सके। इसलिए जनजातीय समूहों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले पारंपरिक औषधीय पौधों को इस उपयोगी पारंपरिक ज्ञान के अंत से पहले खोजना तथा उनका प्रलेखन करना और

'हारी' (मटका) जिसे चावल के भूसे से वायु रहित कर हरी बनाई जाती है

पेमाश्री यात्रा वृतांत

मिथिलेश कुमार पाठक एवं गोपाल कृष्ण
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

सुन्दर रमणीक वनों से परिपूर्ण अरूणाचल प्रदेश के उपरी सियांग जिला के हिमानी वन बाहरी दुनिया के लिए अज्ञात प्राय है। समुद्र तल से 4000 मी. की ऊँचाई पर स्थित पेमाश्री एक ऐसा ही स्थल है। टूटिंग (उपरी सियांग जिले का उपमुख्यालय) से 150-200 किमी की दूरी पर स्थित यह समस्त क्षेत्र पूर्ण रूप से निर्जन है। पेमाश्री बौध-धर्म के अनुयायियों का एक तीर्थ स्थल है। सियांग के मेम्बा एवं खम्बा आदि समुदाय के लोग यहाँ अगस्त-सितम्बर में भगवान दर्शन करने के लिए आते हैं। उस समय यहाँ की बर्फ पिघल चुकी होती है। यहाँ पहाड़ों की ढलान काफी तेज है, इसलिए मंदिर के आस-पास पीने के पानी की काफी कमी है। बर्षा के पानी को एकत्रित कर उसका व्यवहार किया जाता है।

उपरी सियांग जिले में इस तरह की लम्बी यात्रा करके पहुँचने वाले तीन तीर्थस्थल है। तीतापुरी, रूईतला या एकोडुमबीग एवं पेमाश्री। इस स्थान की यात्रा की तुलना बिहार में होने वैद्यनाथ धाम की यात्रा से कुछ हद तक कर सकते हैं, पर इन तीनों स्थल की परिस्थितयाँ काफी अलग है। ये तीनों सुदूर, निर्जन प्रदेशों में हैं, जहाँ पहुँचने के लिए केवल पैदल जाने का ही रास्ता है।

वनस्पति सर्वेक्षण के सिलसिले में 2009 में तीतापुरी एवं 2010 में में रूईतला यात्रा के समय इस स्थान तथा यहाँ के पौधों की जानकारी देते हुए स्थानीय लोगों ने भरपूर सहयोग के बाद भी किये थे। इससे हमे उत्साह मिला एवं हमें इस स्थान के वनस्पति सर्वेक्षण हेतु प्रेरित हुए। 24 अगस्त 2011 से 24 सितम्बर 2011 के लिए हमनें यात्रा का प्रस्ताव किया एवं अनुमति पाकर यात्रा के लिए रवाना हुए। कोलकाता से डिब्रूगढ़ तक का रेल सफर काफी सुखद था। डिब्रूगढ़ से पासीघाट पहुँचने के दो रास्ते हैं, पहला धोबीघाट (डिब्रूगढ़) से ओरियाम घाट एवं दूसरा धोबीघाट (डिब्रूगढ़)से माजुरीबाड़ी घाट। पहला सफर ब्रह्मपुत्र नदी में लगभग 7 घंटे का है, दूसरा 3-4 घंटे का है एवं बाद में 100 किमी. सड़क का सफर है। बरसात का समय होने के कारण हमनें नदी में कम सफर करने का फैसला लिया। धोबीघाट, डिब्रूगढ से माजुरबारी एवं वहां से पासीघाट के बीच में शुरू में ही नदी ने तीन-चार स्थानों पर सड़क को बहा दिया था। सामान को उठाते-चढ़ाते उतारते हमें पासीघाट पहुंचने में शाम हो गई। खैरियत थी वहाँ सियाम हाउस में रहने की जगह मिल गई। अगले दिन हम पासीघाट से इंगकियांग पहुँचे। इंगकियोंग सियांग जिला का मुख्यालय है। सियांग नदी के किनारे का रात भर का सफर बहुत थका देने वाला था। रास्ता बहुत स्थान पर टूटा हुआ था और बहुत सारे स्थानों पर डराता था। इंकियोंग से टुटिंग लगभग 200 किमी, का सफर है। इंककियोंग से टुटिंग जाने के लिए गाड़ी सियांग नदी के दुसरे छोर से मिलती है। इंगकियोंग से सियांग नदी पर दोलन पुल की दूरी लगभग 6 किमी. है। हमारे दिन की शुरूआत अच्छी नही रही। सामान को दोलन पुल से पार कराने लिए व्यक्ति नहीं मिल पाने के कारण हमारी यात्रा का सारा सामान हमें खुद ही पार कराना पड़ा। दो घंटे में तीन चक्कर लगाने के पश्चात हमारी सांसें बुरी तरह से फूलने लगी थी। गाड़ी से टुटिंग तक का सफर ठीक था। थकान एवं गर्मी की बजह से गाड़ी में एक दो बार झपकी लेने का मौका मिलता रहा। पूरा रास्ता सियांग नदी के किनारे-किनारे होकर गुजरता है, पहाडों की हरियाली अपने चरम पर थी, नदी भी पूरे उफान पर थी एवं भयंकर शोर उतपन्न कर रही थी। इन रास्तों में अरूणाचल प्रदेश का प्राकृतिक सौन्दर्य कल्पना से परे था। रास्ते में एक दो स्थान पर होटल थे, जिसमें उपलब्ध भोजन हम लोगों के लिये उपयुक्त नही लगा किन्तु भूख के आगे हम विवश थे।

टुटिंग के अंचलाधिकारी नें हमें महत्वपूर्ण सहयोग दिया। सारी व्यवस्थाएँ करने के पश्चात हमने 7 लोगो ने यात्रा का शुभारम्भ किया। पहले दिन तड़के सुबह करीब 4 बजे टुटिंग से कुर्गीग के लिए प्रस्थान किए। टुटिंग से कुर्गीग की दूरी लगभग 25 किमी होगी। टुटिंग का दोलन पुल कम से कम 1000 फीट लम्बा होना चाहिए। यहाँ से सड़क की समाप्ति होती है, आगे पूरा पैदल का रास्ता है। कुर्गीग से पहले दो तीन छोटे-छोटे गाँव नार्मीग, नरेंग, आदि आते है। पूरा रास्ता निगोंग नदी के आस-पास से होकर चलता है, बीच में कई एक स्थानों पर जंगल को काट कर खेती की गई है। नार्मीग के एक स्थान पर हमनें नदी किनारे खाना खाया। पूरे दिन धूप खिली रही। सर का पसीना पैर तक पहुँच रहा था। शुरू में चढाई ज्यादा नहीं थी पर लगातार उँचाई की तरफ उठने का कारण और सफर का पहला दिन होने से थकान ज्यादा महसूस हो रही थी। सफर के अंत में एक बड़ी चढाई है जो आपकी इच्छा शक्ति का एक कड़ा इम्तिहान लेती है। शाम को साढे पाँच बजे के आस पास हम अपने गंतब्य पर पहुँच गये। दिन में रास्ता चलते-चलते पौधों के नाम पर नियमित चर्चा होती रही। कुछ पौधे ऐसे थे जिन्होनें

ध्यान आकर्षित किया उनमें *बिटनेरा ग्रान्डिफ्लोरा, वाइबरनस कोलेब्रोकियेनम, पाइपर* की कई प्रजातियाँ *साउराइया आर्माटा* आदि शामिल थे।

दूसरा दिन :

तड़के साढ़े पाँच बजे कुर्गीग से ताँसीमाँव के लिए यात्रा शुरू की। पिछले दिन की पैदल यात्रा से माँसपेशियों में थोड़ा खिंचाव हो रहा था, शुरूआती कुछ घंटों के बाद हमने फिर से लय प्राप्त कर लिया। पूरा रास्ता जंगल के अंदर से जाता है पर रास्ता अपेक्षाकृत सरल है। रास्ता प्राय: सूनसान ही रहता है, कभी-कभी सिंगा के तरफ से आने-जाने वाले एक दो यात्री मिल जाते हैं। पूरा रास्ता 900-1800 मी के मध्य घटता बढ़ता रहता है। टुटिंग से निकलने के कुछ घंटों के भीतर ही फोन सुविधा खत्म हो जाती है। टुटिंग पिछले एक साल से फोन सुविधा से वंचित है, क्योकि यहाँ का फोन का टावर खराब है। फोन सुविधा से वंचित जिला उपमुख्यालय यहाँ की असुविधाओं का आभास कराता है। शाम होते हम लोग ताँसीगाँव पहुँच गये। आज के दिन ३० के लगभग पौधों का संकलन हुआ जो विशेष उल्लेखनीय है, उनमें *एम्बिलिएन्थस ग्लैन्डुलोएस* शामिल है। *टक्का इन्टेग्रीफोलिया* भी देखने को मिला *बासियोपसिस ग्रिफिथाई* एवं *ग्लोमेरूलाटा* में फल लगे हुए थे। *ओफियोराइजा* की कुछ जातियाँ में सादे और गुलाबी फूल आए हुए थे। तासीगाँव में जिस घर में हमलोग रूके हुए थे, उसके मालिक को औषधीय पोधे की काफी जानकारी है, वो मुझसे पौधों की वैज्ञानिक प्रमाणिकता के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहते थे, उन्होनें मुझे जंगल के दो नमूने दिखाए, एक था *पेरिस पोलीफाइला* एवं दूसरा *इलिसियम ग्रिफिथी*। *पेरीस पालीफाइला* कों *पोडोफाइलम हेक्सेन्ड्रम* के गलत पहचान के कारण लाये था। इसका प्रमाण आगे के रास्ते में देखने को मिला। *पेरिस पोलिफाइला* 2000 मी. तक की उँचाई पर बहुतायत में पाया जाने वाला पौधा है। पिछले एक साल में इसकी संख्या में तेजी से गिरावट आई। बड़ी कोशिश के बाद में हमें इसके कुछ नमूने प्राप्त हुए। उसी प्रकार *मिसमी तीता* को प्राय: सभी लोग पहचानते हैं और जरूरत हो न हो तब भी संग्रह कर लेते हैं।

तीसरा दिन

तासीगाँव से सिंगा का रास्ता दो दिन की तुलना में काफी कठिन है। दो बड़ी पहाड़ियों की खड़ी चढाई पार करनी होती है। पीली मिट्टी और वर्षा ने रास्ते को फिसलन भरा और खतरनाक बना दिया था। शुरूआती चार घंटे हमें काफी संभल कर चलना पड़ा। यहाँ काले चितकबरे साँप प्राय: दिखते रहते हैं। एक भय वो भी रहता है। रास्ते में एक गाँव है 'सिमोगे', वहाँ के एक घर में हमनें विश्राम किया, अगली सुबह चाय पिया और सिंगा के लिए प्रस्थान किया। पहाड़ पर चढाई करने की वजह से पसीना भी काफी मात्रा में निकलता रहता, पर यहाँ का पानी एवं स्वच्छ वायु की वजह से कुछ देर में थकान कम सी होने लगने लगता है या यो कहिए कि जब कभी महानगर में हमलोग थक कर घर पहुंचकर ठंडे पानी से अपनी तन-मन की शान्ति पाने जैसा था। काफी उतार-चढ़ाव के बाद हमलोग 'सिंगा' पहुँचे। रास्ते में आर्किड और *हैडिकियम* ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया। बहुत कम दिखने वाला कुकुरबिट *हेम्सलोया ग्रेसिलिए* भी मिला। सिंगा इस क्षेत्र में आखिरी मुख्य बस्ती है। इसके पास ही एक, एक परिवार वाला भी गाँव है सिमुली। सिंगा की आबादी लगभग 15-16 घरों तक सीमित है। सिंगा में मिशमी, आदि एवं खम्बा (बौद्ध धर्म के अनुयायी) तीनों समुदाय के लोग हैं। पर सभी के तीन या चार परिवार ही रहते हैं। अधिकांश घरों में ताले पड़े हुए हैं। यहाँ से टुटिंग प्राय: 100 किमी का पैदल का रास्ता है। सिंगा में एक स्कूल है, एक अंचल अधिकारी कार्यालय एवं उसी में एक छोटा पोस्ट आँफिस है। कहते है, सिंगा एक समय बहुत भरा-पूरा था जिस समय यहाँ पर बहुत ही कम कीमत पर हेलिकाप्टर के फेरे हुआ करते थे। सिंगा की घाटी पूरब से पश्चिम तरफ से काफी चौड़ी एवं खुली है। ठंडी हवा रात या दिन में जब चलती है एक तूफान की तरह चलती है। पूरी घाटी उत्तर एवं दक्षिण में ऊँचे पहाड़ों से घिरी हुई है। घाटी सचमुच बहुत सुन्दर दिखती है।

सिंगा में व्यापक तैयारी के पश्चात हमारा मुख्य अभियान पेमाश्री के लिए शुरू हुआ। सिंगा में खुली हुई घाटी होने के कारण बहुत तेज हवा चलती है। अक्सर तड़के सुबह बारिश हो जाती है। सिंगा से प्रस्थान के समय तेज धूप खिली हुई थी। पिछली रात बारिश होने के कारण पीली मिट्टी में पैर जमाना मुश्किल होता था, दो घंटे में सिमुली पहुँचे, सिंगा से सिमुली खड़ी चढाई है, थोड़े विश्राम के पश्चात वहाँ से हमारा सफर फिर शुरु हुआ। आगे पेमाश्री तक कोई बस्ती नहीं है। नदी के पड़ाव तक पहुँचने का रास्ता घने जंगल से होकर गुजरता है और ठीक नदी के उपर से होकर निकलता है, अत: कई स्थानों पर रास्ता बिना मदद के पार करना मुश्किल है। 1500-2000 मी के बीच इस जंगल का स्वरूप देखने लायक है। कीचड़ से सने हुए जंगल के फर्श पर घुटने तक पैर धस जाते हैं। पत्तों की सडांध पूरे जंगल में फैल रही होती हैं। हरे और काले रंग के जोक यहाँ भरे पड़े है, यहाँ पतले धागे की तरह का एक साँप मिलता है। इसका रंग और आकार ऐसा है जो खुली आँख से बड़ी ही कठिनाई से दिखता है। हमनें थोड़ा वक्त निकालकर इस साँप का फोटो लिया और एक विडियो फिल्म बनाई। मैनें पहले अरूणाचल प्रदेश में ऐसा साँप कभी नही देखा। रास्ते में कई उल्लेखनीय संकलन मिले। *कारपेसियम सरनुअम* की प्रजाति ग्रिफिथी

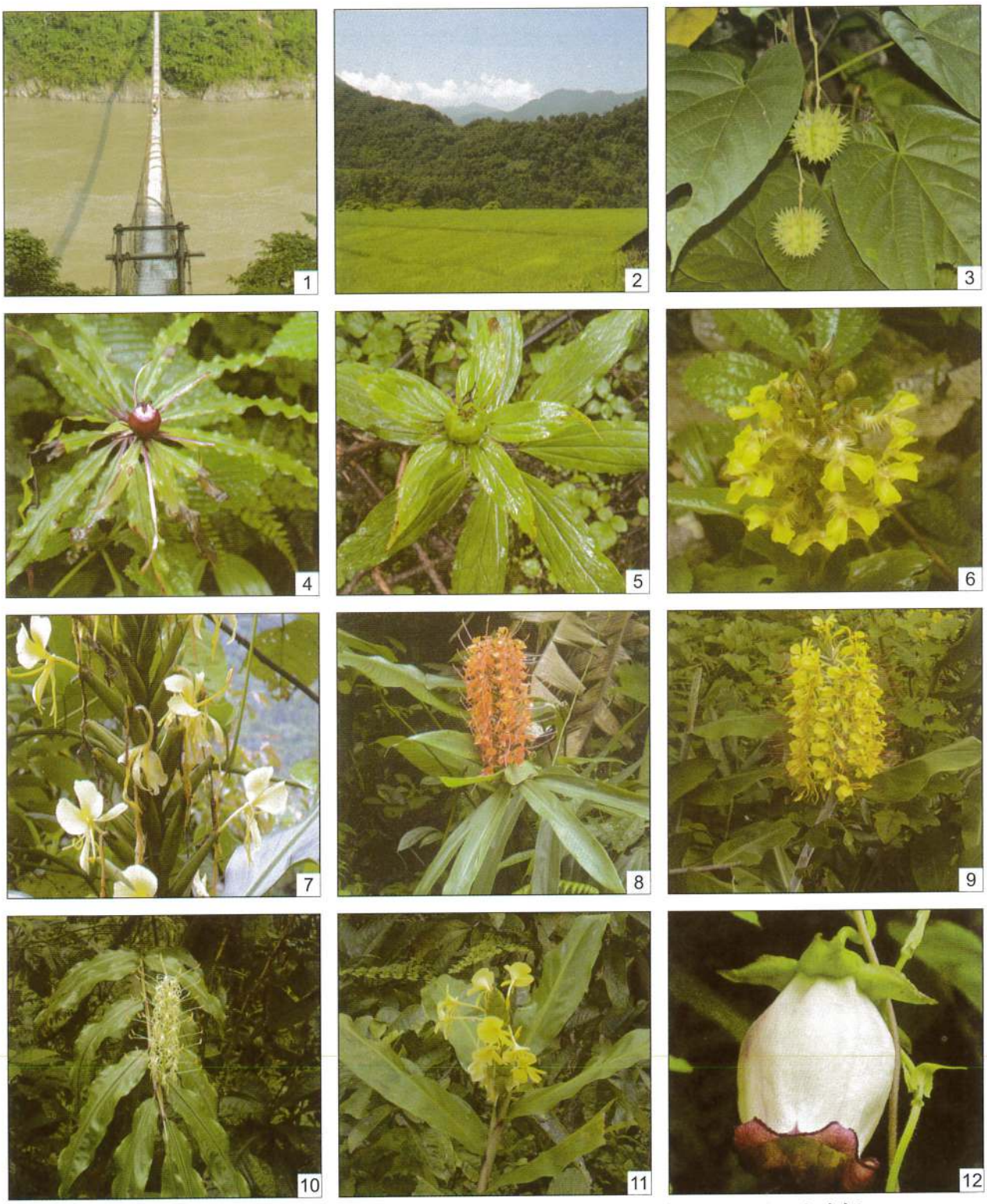

1. इनकियोंग का दोलन पुल, 2. नार्मीग के पास पहाडों में धान खेती, 3. *बिटनेरिया* 4. *पारिस वियोलेसिया*
5. *पारिस पोलिफायला,* 6.*आडोन्टोचुलस लेन्सियोलेट्स* 7. *हेडिकियम एकुमिनेटम,* 8. *हेडिकियम काक्सिनियम,*
9. *हेडिकियम गार्डेनेरियेनम* 10. *हेडिकियम ग्रेसाइल,* 11. *हेडिकियम वार्डियाई* 12. *कोडोनॉप्सिस विरिडिस*

13. *आइरिस क्लार्कियाई,* 14. सिंगा घाटी, 15. *एनिमोन विटिफोलिया,* 16. *डिस्पेकस एट्रेटस,* 17. *लिसेसट्रिया फाँर्मोसा,* 18. *कोटाईलेन्थेरा सेरूलिया,* 19. *एबीज स्पेक्टाबिलिस,* 20. *इलिसियम ग्रिफिथी,* 21. *काल्था पालुस्ट्रिस,* 22. *साइनोटिस अलाटा,* 23. बाँस वन का एक अन्य दृश्य, 24. पेमाश्री मन्दिर का एक विहंगम दृश्य

जो कि अरूणाचल प्रदेश की स्थानिक जाति है को देखा और संकलित किया। *स्ट्रबिलैथिस पार्विफ्लोरा* लगभग आठ दशक की खोज के बाद दुबारा पाया जा सका। *एनीमोन विटफोलिया* एवं *डिप्सेकस इर्नमिस* एक साथ उगते मिले। *लिसेसटेरिया फार्मोसा* के झूलते हुए फूलों के गुच्छे बडे ही लुभावने लगे।

अगले दिन नदी पड़ाव से आलोकोरांग की यात्रा मे साँपों की भरमार थी। साँप भी ऐसे जिनका मनुष्य से कभी नाता नहीं पड़ा। छोटे बड़े कितने ही रंग-बिरंगे साँप देखने को मिले। लिहाजा हमलोग उन्हें ही रास्ता देते हुए आगे बढते रहे। कुछ एक बार उनके उपर पैर रखने के बाद उछल कर भागना पड़ा। यह दिन काफी तनावपूर्ण था। ओलोकोरांग पहुँचते हम 2500 मी से अधिक की उँचाई पर पहुँच चुके थे। उमस भरी गर्मी से राहत थी। जोंक कम होने लगे थे। हमें बताया गया कि अगले दो दिनों का रास्ता खड़ी चढाई है। साँप भी उपर में कम हो जाएंगे, अगली सुबह हम काफी जल्दी निकले। निकलते ही *कोटाईलैन्थेरा सेरूलिया* (एक दुर्लभ सैप्रोफाइट) के दो पौधे मिले। आगे शीत-वन में *सुगा डुमोसा* के अनेक महाकाय पेड़ देखने को मिले। रास्ते में बांसों के वन भी मिले। बांसों के वनों का आकार अब छोटा होने लगा था। सिटोमा कैंप तक पहुँचते हमलोग 3000 मी. तक की उँचाई तक पहुँच गये थे। कैंप बहुत ही खस्ता हाल था, ठंड काफी बढ गई थी। हमें अगली सुबह का बेसब्री से इंतजार था। सुबह की शुरूआत रिमझिम बरसात से हुई जो रुक-रुक कर सारा दिन चलती रही। कैंप से आगे निकलते ही बड़े पेड़ों वाले *रोडोडेन्ड्रान* दिखने लगे। *इलिसियम ग्रिफिथी* (इसके फल एवं बीज बहुत उँचे दर्जे के मसाले के रूप में व्यवहार में आते हैं) को पहली बार इतनी बहुतायत में देखा। यहाँ के वनों का स्वरूप किसी कवि की कल्पना से भी सुन्दर है। बिना किसी मानव हस्तपेक्ष के यहाँ के *रोडोडेन्ड्रॉन* के वन में हल्की वारिश से जो शोर हो रहा था वह मन को मुग्ध करता था। *रोडोडेन्ड्रोन* के तनों से कागज की तरह निकलने वाले लाल छिलके इसकी शोभा को और बढ़े रहे थे। *रोडोडेन्ड्रोन* के अलावे कुछ और जातियाँ के पेड़ उग रहे थे। उनकी पहचान अभी बाकी है। वन उपर की तरफ से देखने में जितना खूबसूरत था उतना ही नीचे की तरफ भी *लिगुलेरिया, साइनोटिस एलाटा, काल्था पालुस्ट्रिस* एवं *पेडिकुलेरिस* की कई जातियाँ इन्हे बहुरंगी बना रही थी। चलने से पसीना आता था और खड़े होकर सांस लेने से ढंड सी लगने लगती थी। रास्ता चलने की शक्ति नही बची थी। बारिश और आँधी रूकने का नाम नहीं ले रही थी। मैने अपने गाइड से पूछा और कितना चलना है, कैंप के लिए। गाइड ने कहा *रोडोडेन्ड्रोन* के वन का रास्ता खत्म होने वाला है, इसके बाद के बांस के वन हैं और उसके बाद उससे छोटे बाँस का वन है, फिर जंगल पूरी तरह से खुला हो जाएगा, वही हमारा कैंप है। मैने पूछा और कितना समय लगेगा, गाइड ने कहा सामने है, मुझे एक घंटा लगेगा, आप कितनी देर में चलेंगे यह आप पर है।

अब तक हम पहाड़ की एक पतली पगडंडी पर आ चुके थे। दोनों तरफ दूर-दूर तक बाँस बन ढलानों में पसरे हुए था। हवा इतनी तेज हो गई थी कि लगता था कि उड़ा कर ले जाएगी। सांस भी फूल रही थी और जंगल का यह स्वरूप डरावना भी लग रहा था। हम दोनों (मैं और गोपाल) एक दूसरे को हिम्मत देते हुए २ घंटे बाद कैम्प तक पहुँच ही गए। हमारे पोर्टरों ने हमारे हिम्मत के लिए बधाई दी और कहा यह रास्ता हमारे लिए भी काफी कठिन था, आप अरूणाचल के बाहर से आने वाले गिने चुने लोगों में से हैं। हम 4000 मी. की उँचाई पर पहुँच चुके थे। यहाँ की ठंढ असहनीय थी। चाय के पश्चात हमनें दिन भर के पौधों के संग्रह को छांट कर उसका बंडल बांधा ताकि अगली सुबह पूरी ऊर्जा के साथ अपने मुख्य मिशन को अंजाम दे सकें। अगली सुबह हल्की बारिश हुई फिर कुछ वक्त बाद मौसम खुला। पूरा पहाड़ एक असीम विस्तार लिए हुए खुले मैदान की तरह है, जिसे कुदरत ने दुनिया के सबसे खुबसूरत रंग बिरंगे फूलों से सजा रखा है। यहां पर हमने एक सौ से अधिक प्रजातियों के फूलों को एक साथ खिलते हुए देखा, ऐसा लगता था कि यहाँ फूलों की असीम चादर बिछी हुई है। हमनें उन्हें आँख भर-भर कर देखा एवं उनका संकलन भी किया। अपनी सफलता पर अपनी पीठ खुद ही थपथपा ली। दोपहर होते होते जोर का तूफान आ गया पर तब तक हमने झोली भर ली थी। पूरी यात्रा काफी सावधानी से कर, आठ दिन का वापसी का सफर पौधों को सहेजते और रास्ता चलते बीत गया। ऐसे क्षेत्रों का सर्वेक्षण हर वनस्पतिज्ञ का एक सपना होता है, जिसे हमें साकार करने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ पर पाई जानेवाली जिन जातियों को पहचान सके उनमे *एकोनिटम* की दो जातियाँ, *एलियम वालिची, एरिसीमा हुकेरी, सासुरिया* की दो जातियाँ, *पेडिकुलेरिस* की तीन जातियाँ, *क्रिमेन्थोडियम रेनीफार्मी, ओफियोपोगोन एंटरमिडियस*, आदि बहुत महत्वपूर्ण औषधीय पौधा *मैड्रोगोरा काउलेसेन्स* भी यहाँ पाया गया।

प्रकृति की अनुपम धरोहर - मेघालय की गुफायें

ब्रहमदेव राम तिवारी एवं सुशील कुमार सिंह
संयुक्त सचिव मेघालय सरकार, शिलांग
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र, शिलांग

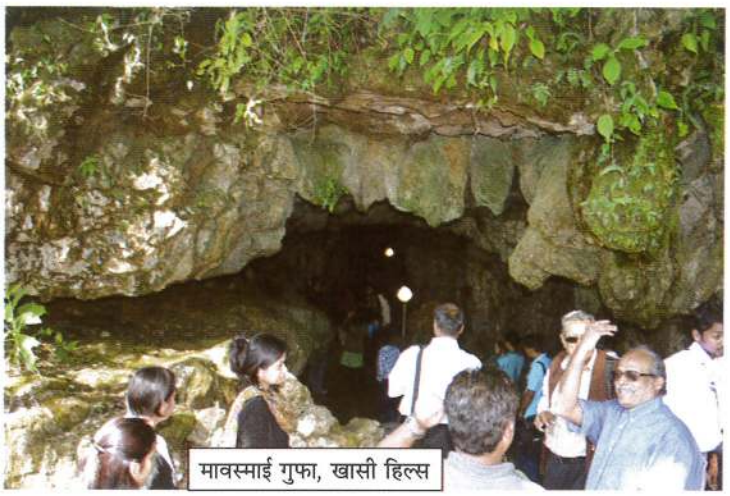
मावस्माई गुफा, खासी हिल्स

सभ्यता के आरंभ से ही गुफायें आदिमानव के आकर्षण का केंद्र रही हैं। उसने सर्दी, गर्मी और बरसात से रक्षा और वन्य जीवों तथा शत्रुओं से अपनी सुरक्षा के लिए गुफाओं का आश्रय लिया और शायद यहीं से उसके मन में आवास निर्माण का पहला विचार जन्म लिया। भीमबेटका जैसी इन्ही गुफाओं में ही उसने आरंभिक चित्रकारी की। प्रारम्भिक जनजातीय सभ्यताओं में गुफायें एक ओर देवी-देवताओं तो दूसरी ओर भूतों-प्रेतों और बुरी आत्माओं के आवास के रूप में आस्था तथा भय दोनों का केंद्र रहीं और सदैव मानव ने इनको एक रहस्य के रूप में लिया। ये गुफायें कालक्रम में तपस्या और साधना का केन्द्र भी बनी और धर्म तथा चिंतन के विकास में इनकी अहम भूमिका रही। आधुनिक युग में तो अन्वेषकों, खोजियों और साहसिक पर्यटकों के लिए अंधेरे, सीलन, गर्त, खोह, दलदल और अति दुर्गम रास्तों से युक्त और सर्पो तथा चमगादडों आदि से भरी ये गुफायें किसी जन्नत से कम नहीं हैं। इन गुफाओं के समीपस्थ क्षेत्रों में पायी जाने वाली वनस्पतियां विशिष्ट तथा रोचक हैं।

गुफायें मुख्य रूप से चूना पत्थर और कुछ हद तक बलुआ पत्थर की चट्टानों में जल और बरसात के माध्यम से निर्मित होती हैं। ये प्रकृति की व्यापक व अनोखी चित्रकारी तथा शिल्पकारी की अन्यतम उदाहरण कही जा सकती हैं। गुफाओं का निर्माण मुख्य रूप से आर्द्र स्थानों पर एक लंबे काल में जल तथा चट्टानों के चूना पत्थरों में पाये जाने वाले कैल्सियम कार्बोनेट की अभिक्रिया का परिणाम होता है क्योकि भीतर रिसता जल अपने लिए रास्ता बनाने के क्रम में इन चट्टानों को काटकर गुफाओं का निर्माण करता है। ये गुफायें प्रकृति रूपी शिल्पी के अद्भुत चित्र व शिल्प कर्म हैं जिसको उसने अद्भुत दक्षता और असीम धैर्य के साथ धरती के भीतर सुरंगों, खड्डों, रिक्त स्थानों के कक्षों के रूप में एक रंगीन, आकर्षक और अद्भुत संसार रचा है जो उसकी महिमा का एक महनीय प्रमाण है। प्रकृति से प्रेरित होकर मानव ने पहाड़ों को काटकर अपने धार्मिक स्थलों जैसे मंदिरों, विहारों चेत्यों, मठों आदि के रूप में अनेकों गुफाओं का निर्माण किया। आज भी अजंता, एलोरा, बाघ, कार्ले, एलिफेंटा, कन्हेरी आदि की गुफाओं में निर्मित चित्र, मन्दिर, विहार इत्यादि मानव जाति के शिल्प की महान धरोहर हैं।

भारत का मेघालय राज्य विश्व में सर्वाधिक वर्षा वाला स्थल है जिसे बादलों के घर के रूप में भी जाना जाता है। बंगाल की खाड़ी से आने वाला मानसून इन खड़ी और शंक्वाकार पहाड़ियों से सर्वप्रथम टकराकर राज्य के दक्षिणी भाग में घनघोर वृष्टि करता है। यह राज्य गारो, खासी, और जैंतिया नामक तीन पहाड़ियों पर विस्तारित है जो इसी नाम के तीन आदिवासियों की निवासस्थली भी है। इयोसिन युगीन चूनापत्थर की इन पहाड़ियों की लगभग 300 किमी लंबी दक्षिणी पट्टी असंख्य गुफाओं को अपने अंदर समेटे हुए है। ये गुफायें जैंतिया, खासी और गारो तीनों भागों में फैली हैं किन्तु जैन्तिया पहाड़ियों का सिंडाइ-लकड़ोंग-लुमसंग क्षेत्र विश्व की कुछ सबसे लंबी, बृहद और अद्भुत गुफाओं के लिये विख्यात है। इनमें से कुछ गुफायें तो कई किमी लंबी हैं और एक जटिल गुफा प्रणाली का निर्माण करती हैं। किन्तु खासी पहाड़ों मे स्थित मावस्माई (Mawsmai) गुफा राज्य की अकेली प्रकाश युक्त तथा सर्वाधिक पर्यटन गुफा है तो गारो पहाड़ियों मे स्थित सीजू-दोबाकोल गुफा अनुसंधान की दृष्टि से भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम स्थान पर है। एक अनुमान के अनुसार इस क्षेत्र में 1000

से भी अधिक गुफायें हैं। गुफाओं की इतनी बड़ी संख्या और उनके आकार इत्यादि के कारण हम इस राज्य को 'बादलों के घर' के साथ ही 'गुफाओं का देश' भी कह सकते हैं। भारत की सबसे लंबी 20 गुफाओं में से 19 यहीं पर हैं (कृपया तालिका 1 देखें) स्थानीय खासी और जैंतिया (प्नार) भाषाओं में इन गुफाओं को 'क्रेम' (krem) तो गारो भाषा में इन्हे 'कोल' (kol) कहा जाता है।

तालिका - 1 भारत की 20 की सबसे लंबी गुफायें

क्रमांक	गुफा का नाम	राज्य/अवस्थिति	लंबाई (मीटर में)
1	क्रेम लियट प्राह-उम इम लाबित गुफा प्रणाली	जैंतिया हिल्स, मेघालय	22,203
2	क्रेम कोटसाई - उमलवान गुफा प्रणाली	जैंतिया हिल्स, मेघालय	21,530
3	सिनरंग पामियांग	जैंतिया हिल्स, मेघालय	14,157
4	क्रेम उमथ्लू	जैंतिया हिल्स, मेघालय	13,413
5	क्रेम चिंपे (पील ख्लीएह पौक)	जैंतिया हिल्स, मेघालय	10,482
6	क्रेम श्रृएह(तंगनुब)	जैंतिया हिल्स, मेघालय	8,671
7	क्रेम त्यइघेंग	जैंतिया हिल्स, मेघालय	7,752
8	क्रेम मावख्यडोप (मावम्लुह)	ईस्ट खासी हिल्स, मेघालय	7,194
9	क्रेम ल्यंपुट	ईस्ट खासी हिल्स, मेघालय	6,641
10	रोगडांगाइ मोंदिलकोल	वेस्ट खासी हिल्स, मेघालय	5,831
11	क्रेम स्यनरंग लाबित (श्रियएन ख्लीएह)	जैंतिया हिल्स, मेघालय	5,715
12	तेतेंकोल बल्वाकोल	साउथ गारो हिल्स, मेघालय	5,681
13	क्रेम उमसिनरंग	जैंतिया हिल्स, मेघालय	5,612
14	सीजू दोबाक्कोल	साउथ गारो हिल्स, मेघालय	4,772
15	क्रेम रिसंग	जैंतिया हिल्स, मेघालय	4,565
16	क्रेम सिनरंग इगाप	जैंतिया हिल्स, मेघालय	4,172
17	क्रेम सिनरंग लाबित	जैंतिया हिल्स, मेघालय	3,933
18	बेलुम गुहालु	आंध्र प्रदेश	3,577
19	क्रेम वाह र्रम्नको - खोंगरंग	जैंतिया हिल्स, मेघालय	3,416
20	क्रेम इयावे	खासी हिल्स, मेघालय	3,398

वानस्पतिक विविधता :

गुफाओं में उपलब्ध पानी से समीपस्थ क्षेत्रों में हमेशा नमी बनी रहती है जिसके कारण यहाँ का वातावरण अपुष्पी पौधों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं और यहाँ शैवालों, हरितोद्भिदों, तथा पर्णांगों की अनेकों विरल तथा रोचक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इन अपुष्पी प्रजातियों के साथ-साथ यहाँ अनेको पुष्पी प्रजातियां भी पायी जाती हैं। *सायथोडियम अरिओनिटेन्स, मार्केसिया पैलिसिया, डुमार्टियरा हिर्सुटा, फिओसेरास कैरोलिनियानस, जुंजेरमानिया* आदि हरितोद्भिद प्रजातियाँ जो कि मुख्य रूप से चूना व बलुआ पत्थर की चट्टानों वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं, यहाँ मिलती हैं। यहाँ आस पास के क्षेत्रों में अनेकों अधिपादपीय हरितोद्भिद जैसे फ्रुलानिएसी, पोरिलेसी, प्लाजिओचीलेसी, लेजुनिएसी कुल तथा अन्य जैसे पेलिया, एंथोसेरोस, स्फैग्नम, ब्रायम आदि वंश के सदस्य बहुतायत में मिलते हैं। पर्णोद्भिदों में *टेरिस विटाटा, नेओचिरोप्टेरिस एंसाटा, माइकेनिया माइक्रेंथा, पोथास स्कैंडेंस, प्रेटिया बेगोनिफोलिआ, कैरेसिया, ट्राइफोलिया पैराबीना सेजीटाटा, ग्लाइकोस्मिस पेंटाफाइला, एलेंजियम साइनेन्सिस, फ्लोगोकैंथस थिर्सिफ्लोरस सार्कोक्लेमिस पल्चेरिमा, पोटेंटिला इंडिका, एलोकेसिया फोर्निकुलाटा डिओस्कोरेया हिस्पिडा तथा स्पिलेंथस, पाइपर, मेलोस्टोमा, कुरकुमा, स्टेमोना, साइप्रस, यूट्रीकुलेरिया* आदि वंशों की अनेकों प्रजातियां अनुकूल वातावरण के कारण इनके पौधे प्रचुरता से मिलते हैं।

प्रकृति की यह अनुपम धरोहर अपने अन्वेषणों की प्रतीक्षा में है। अतएव यह आशा की जा सकती है कि इन गुफाओं के आस पास के क्षेत्रों का, जो कि विशिष्ट वातावरण धारण करते हैं, की जैव विवधता अनोखी है और इनके अन्वेषण से कुछ रोचक वनस्पतियों तथा जीवों के बारे में जानकारी मिल सकती है। ऐसे मे यह अपेक्षित है कि प्रकृति की इस अनुपम कृति पर अन्वेषण कार्य को गंभीरता से शुरु किया जाय। उपरोक्त लेख इन्ही तथ्यों को उद्धृत करने का एक प्रयास है।

वनस्पति जगत से जुड़ी कुछ रोचक जानकारियां

प्रशान्त केशव पुसालकर एवं **संजय उनियाल**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

* अंटार्कटिक द्वीप में पुष्पीय पौधे की मात्र, सिर्फ दो जातियां पायी जाती हैं, जिनके नाम है *कालोबेन्थस क्विटेन्सिस* (Caryophyllaceae) एवं *डेस्चाम्सिया अंटार्कटिका* (Poaceae)। साथ ही *कोलोबेन्थस* यहां पायी जाने वाली एकमात्र द्वीबीजपत्री वनस्पति है, तो *डेसचाम्सिया* को इस द्वीप पर संग्रहित एकमेव एकबीजपत्री (Monocot) वनस्पति होने का सम्मान प्राप्त है।
* पृथ्वी के दक्षिण में सबसे निचले हिस्से से संग्रहित की जाने वाली पुष्पी जाति होने का कीर्तिमान *डेस्चाम्सिया अंटार्कटिका,* (Poaceae) के नाम है (the most southernly known flowering plant) जो कि 68°21' दक्षिण रेखांश पर स्थित रेफ्यूजी द्वीप से जमा की गई है।
* दक्षिण अफ्रिका में पाई जाने वाली *अनसिस्ट्रोक्लेडस कोरूपेन्सिस* (Ancistrocladaceae) नामक वनस्पति मिचेल अमाईन-बी नामक नेप्थेलिन आइसोक्विनोलीन अल्कलाइड का एकमात्र नैसर्गिक स्त्रोत है, जो कि एच. आइ. वी. विषाणु के खिलाफ कुछ मात्रा में सक्रिय साबित हुआ है।
* एनोनेसी कुल का गण कनानगा (Annonaceae) जिसकी जातियां विषववृत्तीय एशिया एवं अफ्रीका में पायी जाती हैं, पुष्पी जातियां का ऐसा एकमेव गण है जिसके बीज में तीन आवरण /कवच पाए जाते हैं।
* *अगेव अमेरिकाना* (Agacaceae) जिसको ''सेन्चुरी प्लान्ट'' कहने के पीछे यह गलत धारणा थी की यह वनस्पति एक शतक के बाद पुष्प धारण करती है। शोध से पता चला है कि इस जाति में 10-20 साल बाद पुष्प धारण करती है।
* दक्षिण पूर्व एशिया में पायी जाने वाली *बाम्बुसा अरून्डीनेसिया* (Poaceae) नामक बांस जाति एक दिन में 91 से.मी. तक बढ सकती है। विषुववृत्तीय वनों मे पाई जाने वाली बांस की जातियों में एक दिन में 3 मीटर तक बढ़ने के प्रमाण मौजूद हैं।
* केलीट्राईकेसी कुल के *केलिट्राइका* (Callitriche) गण की जातियां एक साथ जल तथा वायु-परागण करने में सक्षम होती हैं।
* दक्षिण एशिया में वितरित ऑर्किड ट्री - *एमहरस्टीया नोबिलिस* (Leguminosae) पलाश - *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (Leguminosae) *केशिया* स्पिसीज (Leguminosae) एवं गुलमोहर - *डेलोनिक्स रिजिया* (Leguminosae) की गिनती दुनियाँ के सबसे खुबसूरत पुष्पी वृक्ष जातियों में होती है।
* दक्षिण पूर्व आस्ट्रेलिया के हिमोढों में पाई जाने वाली *केल्था इन्ट्रोलोबा* (Ranunculaceae) नामक वनस्पति में बर्फ के नीचे ही पुष्प धारण करने की क्षमता होती है।
* दक्षिण-पश्चिम अमेरिका में पाई जाने वाली ''जायंट कैक्टस'' नामक *कार्नेजिया जाइगेन्टिका* (Cactaceae) कैक्टस समूह की सबसे बड़ी जाति है, जो 20 मी. ऊंची होती है तथा इसके तने की चौड़ाई 60 से.मी. तक हो सकती है।
* नारियल कुल (एरेकेसी) के सदस्यों में सिर्फ *केरिओटा* गण की जातियों मे ही द्वीपिच्छाकार पत्तियां होती है।
* माउण्ट कीनाबालु में पाई जाने वाली *नेपेन्थेस राजाह* (Nepenthaceae) नामक कीटभक्षी वनस्पति छोटे चूहों को पकड़ने में सक्षम होती हैं।
* कोलम्बिया तथा इक्वेडोर में 4,000 मी. तक पाई जाने वाली *सेरोजाईलॉन युटाइल* (Arecaceae) नामक वनस्पति को सबसे ऊंचाई पर मिलने वाली नारियल समूह की वनस्पति होने का दर्जा हासिल है।
* चीन तथा जापान में पाई जाने वाली *चिम्नोबाम्बुसा क्वाड्रेन्गुलेरीस* (Poaceae) ऐसी एकमात्र बांस जाति जिसका तना चतुष्कोणीय होता है।
* मध्य अमेरिका, वेनेजुएला एवं पेरू में पाई जाने वाली *कोडोनान्थे केसिफोलिया* (Gesneriaceae) मलेशिया में पाई जाने वाली *पेचिसेन्ट्रिया ग्लाउका* (Melastomataceae) एवं बोर्निओ में वितरित *पेचिसेन्ट्रिया कॉन्स्ट्रीक्टा* नामक पुष्पी वनस्पतियों के बीजों को स्थानीय चीटियों द्वारा 'चींटी उद्यान' में लगाया जाता है। यह पौधे बड़े होने पर चीटिंयों को मधु एवं फल देते हैं।

* मटर कुल की अनेक वनस्पतियों में जहां संयुक्त पत्तियां शाम एवं रात में बंद होती हैं वहीं विषुववृत्तीय दक्षिण अफ्रिका में पाई पाने वाली *कोक्लोस्पर्मम मोपाने* (Cochlospermaceae) दोपहर में धूप से बचने के लिए अपनी पत्तियों का एक दूसरे पर मोड़कर बंद कर लेती है।
* ग्वाटेमाला में पाई जाने वाली *कुचुमाटानिया एरमार्की* (Asteraceae) सूरजमुखी कुल की सबसे छोटी वनस्पति है। इसकी ऊंचाई 1 सेमी से भी कम होती है।
* दक्षिण अरेबिया के सोकाट्रा प्रभाग में पाई जाने वाली *डेन्ड्रोसिसाइओस सोकोट्राना* (Cucurbitaceae) कद्दू कुल की एकमेव वृक्ष जाति है।
* बर्मा एवं युनान में पाई जाने वाली *डेन्ड्रोकेलेमस जाइगेन्टीकस* (Poaceae) एवं दक्षिण पूर्व एशिया की *बाम्बुसा अरूंडिनेडिया* (Poaceae) की ऊंचाई 35-37 मी. तक होती है तथा यह दुनियां में बांस की सबसे बड़ी जातियां है।
* मेडागास्कर में पाई जाने वाली *डाइप्सिस टेनुइसिमा* (Arecaceae) एवं *साइप्सिस हील्डब्रॅन्डथी* को नारियल कुल में दुनियां की सबसे छोटी जातियां होने का दर्जा हासिल है (Smallest Palm)। यह जातियां 15-45 से. मी. तक ऊंची होती हैं।
* मादागास्कर में पायी जाने वाली *डाइप्सिस स्केन्डेन्स* (Areceaceae) नारियल समूह की एकमात्र आरोही जाति है।
* पाइरिन मे पाई जाने वाली *डायोस्कोरिया पाइरेनाइका* (Dioscoreaceae) सबसे लंबे समय तक (305 साल) जीवित रहने वाली शाकीय जाति है।
* दक्षिण अफ्रिका में पाई जाने वाली *डायोस्कोरिया इलेफेन्टीपस* (Dioscoreaceae) के कन्द 2 मी. लंबे तथा 300 कि.ग्रा. वजन तक के होते हैं, जो एक कीर्तिमान है।
* न्यू केलेडोनिया में पाई जाने वाली *पेरासिटेक्सस युस्टा* (Paraxitaxaceae) दुनिया की एकमात्र परजीवी अनावृतबीजी जाति है, जो *फाल्केटीफोलियम टेक्सॉइडेस* (Podocarpaceae) नामक दूसरी अनावृतबीजी जाति के तने पर पाई जाती है।
* दक्षिण-पश्चिम एवं उत्तरी ब्राजील में पाई जाने वाली *हैस्पेरोयुक्का व्हिप्लेई* (Agavaceae) नामक वनस्पति में पुष्पक्रम 14 दिनों में 3.65 मी. तक लंबा हो जाता है, जो कि एक विश्व कीर्तिमान है।
* हिमालय में *पाइनस वालिचियाना* के तने पर पाई जाने *आर्स्युथोबियम माइन्यूटिसिमम* (Loranthaceae) दुनियां की सबसे छोटी (5.6 मी.मी.) परजीबी पुष्पी जाति है। इस वनस्पति को हिमालय की सबसे छोटी पुष्पी जाति होने का सम्मान हासिल है।
* जलकुम्भी *आईकानिया क्रेसिपिस* (Pontederiaceae) दुनियां की सबसे खतरनाक तरीके से फैलने वाली जलीय खरपतवार है।
* पेनसिल्वानिया में पाए जाने वाली *केलुसासिआ ब्रेसिसेरा* (Ericaceae) दुनियां के पुष्पी वनस्पतियों में सबसे बड़ा कृन्तक है जो 40 हेक्टर में फैला है।
* विषुववृतीय अमेरिका में पाई जाने वाली *गाइनेरियम सेजिटेटम* (Poaceae) 'रीड समूह' की सबसे बड़ी जाति है। 'जायन्ट रीड' के नाम से प्रख्यात इस वनस्पति की ऊंचाई 10 मीटर तक होती है।
* पोएसी कुल की वनस्पतियों में सबसे बड़ा पत्ता *न्यूरोलेपिस* गण की जातियों में होता है। विषुववृतीय अमेरिका में पाई जाने वाली इसकी जातियों में पत्ते की लंबाई 5 मीटर तथा चौड़ाई 30 से.मी. तक होती है।
* दक्षिण अमेरिका की एंडीज पहाडियों पर 4,500 मी. की तुंगता तक पाई जाने वाली *न्यूरोलेपिस एरिस्टाटा* (Poaceae) नामक जाति को दुनियां की उच्चतम तुंगता पर पाई जाने वाली बांस जाति का सम्मान हासिल है।
* पश्चिमी हिमालय में पाई जाने वाली *मेगाकार्पाइया पोलिएन्ड्रा* (Brassicaceae) संपूर्ण ब्रैसिकेसी कुल की एकमात्र जाति जिसमें 16 पुंकेसर पाए जाते हैं। इस कुल की बाकी सभी जातियों मे 6 पुंकेसर होते हैं। इस कुल में इसके फल सबसे चौड़े होते हैं, तथा इसका फलक्रम (Fruitescence) मनुष्य से भी ऊँचा हो जाता है।
* उत्तर पश्चिम अमेरिका में पाई जाने वाली *थूजा प्लाइकाटा* क्युप्रेसेसी कुल की सबसे बड़ी वनस्पति है। 71 मी. तक ऊँची यह जाति '*वेस्टर्न रेड सेडर*' का नाम से प्रख्यात है।
* इथियोपिया एवं दक्षिण अफ्रिका में पाई जाने वाली *स्टेगानोटेनिया अरालिएसिया* (Apiaceae) नामक वनस्पति धनियां कुल में अकेली

वृक्ष जाति है।

* *विस्कम अल्बम* पर-पराजीवी जीवन में सक्षम वनस्पति है, तथा यह ओक वृक्ष पर पाई जाने वाली *लोरेन्थस युरोपिअस* नामक परजीवी जाति पर पर-परजीवी होकर रह सकती है।
* दुनियां में सबसे कम ऊंचाई पर पाई जाने वाली पुष्पी जाति होने का सम्मान जलीय (समुद्री) कुल जोस्टेरेसी को हासिल है जिसकी जातियां समुद्र तल के नीचे 40 मीटर तक पाई जाती है।
* फिलीपीन्स मे पाई जाने वाली *रेफ्लेशिया मनिलाना* (Rafflеciaceae) नामक परजीवी वनस्पति के पुष्प कली को विकसित होने के लिये 1 साल का समय लग जाता है।
* पेरू में पायी जाने वाली *लैक्कोपेटालम जाइगोन्टिकम* (Ranunculaceae) के पुष्प में सबसे ज्यादा (लगभग 10,000 तक) स्त्रीकेसर होते है।
* भारत के राष्ट्रीय पुष्प कमल (Nelumbonaceae) की मूलाभासीय जड़ एक साल में 20 मी. तक बढ सकती है।
* उत्तर अमेरिका, उत्तर-पश्चिम यूरोप तथा साइबेरिया में पाई जाने वाली *माइरिका गेल* (Myricaceae) नामक जाति में लिंग परिवर्तन की क्षमता होती है।
* *राइझान्थेला गार्डनेरी* (Orchidaceae) नामक जाति अपने पुष्प को छोड़ कर पूर्णत: अन्तर्भूमिक होती है।
* परजीवी वनस्पतियों सबसे बड़े बीज अफ्रिका के जंगलों में पाई जाने वाली *ओकोबाका* (Santalaceae) वंश में होते हैं। दुनिया के इस सबसे बड़े परजीवी वनस्पति के बीज 40-50 ग्राम के होते हैं।
* द्वीनारीयल / *लोडोसिया माल्दीविका* (Arecaceae) के बीज को पूर्ण विकसित होने के लिये 6 साल का समय लगता है जो कि एक कीर्तिमान है। अनावृतबीजी वनस्पति समूह के पाइनस जातियों में (Pinaceae) यह समय 3 साल तक का होता है।
* विषुववृतीय अमेरिका में पाई जाने वाली मटर कुल की *मोरा मेजीस्टेस्पर्मा* (Leguminosae) का बीज द्वीबीजपत्री वनस्पतियों में सबसे बड़ा होता है। वनस्पति जगत में सबसे बड़े बीज का कीर्तिमान *लोडोशिया माल्दीविका* के नाम है, जिसके बीज लगभग 50 से.मी. तक लम्बे होते है।
* लोरेन्थेसी कुल की *मोक्विनिएला रूब्रा* (Loranthaceae) नामक पुष्पी वनस्पति में सबसे बड़ी (48 मि.मी.) बीजाणुधानी पायी जाती है।
* ''एंडीज पहाड़ों की रानी'' के नाम से मशहूर *पूया रेमोन्डी* (Bromeliaceae) नामक अतिदुर्लभ एवं संकटग्रस्त जाति पुष्पधारण के लिए 80-150 वर्ष का समय लेती है। विषुववृतीय वनों में पाई जाने वाली बांस जाति को छोड़ दें तो यह समय अन्य वनस्पति की अपेक्षा बहुत अधिक है।
* अलास्का में वितरित *प्लाटान्थेरा ऑब्टुसाटा* (Orchidaceae) नामक जाति में परागण मच्छरों द्वारा किया जाता है।
* यूरेशिया में पाई जाने वाली *पॉलिपोडियम बलगेअर* (Polypodiaceae) नामक पर्णांग जाति में पाये जाने वाले ओस्टेडिन नामक रासायनिक पदार्थ की गिनती दुनियां के सबसे मीठे नैसर्गिक पदार्थ में की जाती है। यह चीनी से 3000 गुना अधिक मीठा होता है।
* *पालिगोनम एविक्युलेर* (Polygonaceae), *केप्सेला बर्सा-पेस्टीरिस* (Brassicaceae), *लेन्टाना कमारा* (Verbenaceae), *पोर्च्युलाका ओलेराशिया* (Portulaceaceae) एवं *आइकोर्निया क्रासिपिज* (Pontederiaceae) की गणना दुनियां की सबसे खतरनाक खरपतवारों में की जाती है।
* *लेपिडोप्टेरिस विल्केसियाना* (Osmundaceae) नामक ट्री फर्न (वृक्ष पर्णांग) की उम्र 133 साल तक होती है।
* दक्षिण प्रशान्त क्षेत्र में पाई जाने वाली *एस्प्लेनिअम बल्बिफेरम* (Aspleniaceae) एक जरायुजक पर्णांग है।
* मटर कुल की जातियों को छोड़ दे तो भांग कुल के *पेरास्पोनिया* (Cannabaceae) एवं *कोरियारिया* (Coriariaceae) गण की जातियां ही ऐसी वनस्पतियां हैं जिनकी जड़ें नाइट्रोजन संग्रहित करने में सक्षम हैं।

विश्व के दस अति विलक्षण पौधे

अच्युता नन्द शुक्ला, संजय उनियाल एवं विनीत कुमार रावत*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूना

1. **रेगिस्तान का प्याज** *(वेल्विस्चिया मिराबिलिस)*: विश्व का सबसे सहनशील पौधा : *वेल्विस्चिया मिराबिलिस* में सिर्फ दो पत्तियां होती है और एक मजबूत तना होता है, जो जड़ से लगा रहता है। इस पौधे का तना लम्बा न होकर मोटा होता हैं परन्तु कभी कभी यह दो मीटर तक ऊँचा तथा आठ मीटर तक चौड़ा भी हो जाता है। इस पौधे का जीवन काल लगभग 400 से 1500 वर्ष तक का होता है, और यह पाँच साल तक बिना पानी के भी जीवित रह सकता है। यह पौधा खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। इसलिये इस पौधे को 'अनीए जी' भी कहते हैं जिसका मतलब 'रेगिस्तान की प्याज' होता है।

2. **कीटभक्षी पौधे** *(डायोनिया म्युसिपुला)* : वीनस फ्लाई ट्रेप : यह पौधा सभी कीटभक्षी पौधों में अपने अति विलक्षण कार्य कुशलता, सक्रिय स्वभाव से कीटों को फंसाने के कारण सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। यह अति महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध होने के साथ-साथ संकटापन्न पौधों की श्रेणी में आता है। इस पौधे की पत्तियों में दो कब्जे होते हैं, जो कि अति संवेदनशील बालों से ढके होते हैं, इनकी पत्तियों पर पाये जोने वाले रोम खतरे की सूचना पौधे को तुरन्त देते हैं, जैसे ही रोम में संवेदना होती है इनका फन्दा आधे सेकेण्ड से भी कम समय में बन्द हो जाता है।

3. **दुर्गंध वाला फूल** *(रेफ्लेशिया अरनोल्डी)* : विश्व का सबसे बड़ा फूल है तथा अति संकटापन्न की श्रेणी में रखा गया है इस पौधे का रंग मोर्चा (जंग) की तरह होता है इसलिये इसका नाम 'रेफ्लेशिया' पड़ा। इस पौधे के फूल का व्यास लगभग तीन फिट तक का होता है इसका वजन लगभग 15-24 पाउण्ड तक होता है। इसके फूल की गन्ध अति आक्रामक तथा सड़े हुये मांस की तरह होती है।

4. **नर्तक पौधा** *(डेसमोडियम गाइरेन्स)* : सर्वप्रथम महान वैज्ञानिक डार्विन ने इस पौधे को *'हेडीसेरम'* नाम दिया परन्तु बाद में वनस्पतिज्ञों ने इसका नाम *'डेसमोडियम गाइरेन्स'* रखा। इस पौधे को सामान्य बोल-चाल की भाषा में 'नृत्य करता हुआ पौधा', 'तारयंब पौधा' या 'संकेत यंत्र पौधा' कहा जाता है। ये सारे नाम इसकी पत्तियों की चाल, जो कि संकेत यंत्र की तरह होती है, के कारण पड़ा।

5. **बेसबाल पौधा** *(यूफोर्बिया ओबेसा)* : *'यूफोर्बिया ओबेसा'* को 'बेसबाल पौधे' के नाम से भी जाना जाता है। यह पौधा दक्षिणी अफ्रिका के कारू क्षेत्र का विशेष क्षेत्रीय पौधा है। गैर परम्परागत तरीके से इस पौधे को जंगल से इकट्ठा करने की प्रवृति के कारण यह जंगल से लगभग विलुप्त हो गया है।

6. **शव पुष्प** *(एमारफोफेलस टिटेनम)* : इस पौधे का एक पुष्पक्रम आदमी से भी बड़ा होता है। इस पौधे का पुष्पक्रम विश्व में सबसे बड़ा होता है। इसका फूल दुर्गन्धयुक्त होता है। इसकी बदबू सड़ी हुयी मछली की तरह होती है। इस फूल की बदबू के कारण इसको 'शवपुष्प', 'सड़ा गला मांस पुष्प' या 'शव पौधा' भी कहा जाता है।

7. **बाओबाब** : *(एडेनसोनिया डिजिटेटा)* : बाओबाब, *एडनसोनिया* वंश के पौधों का सामान्य नाम है। यह वंश बाम्बेकेसी कुल से सम्बन्ध रखता हैं। इसका मूल निवास मेडागास्कर, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया है। इसको बोतल वृक्ष के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि यह बोतल की तरह दिखता है, और लगभग 300 लीटर पानी अपने में इकट्ठा करके रखता है और 300 वर्ष से भी ज्यादा समय तक जीवित रहता है।

8. **परदार सांप रक्त वृक्ष** (*ड्रेसिना सिनेबारी*) : *ड्रेसिना सिनेबारी* एक परदार सांप वृक्ष है, जिसका मूल निवास स्कोट्रा आर्चीपिलागो है। इस वृक्ष को स्कोट्रा परदार वृक्ष भी कहा जाता है क्योंकि यह एक विलक्षण रूप वाला तथा छाते के रूप का होता है। इसे सर्वप्रथम बैले बालफोर द्वारा 1882 में खोजा गया। इसका लाल स्राव ड्रेगन के रक्त की तरह होता है। इसका उपयोग औषधि तथा रंजक के रूप में किया जाता है।

9. **लजालू पौधा** *(माइमोसा प्युडिका)* : यह अतिसंवेदनशील पौधा है जिसके कारण इसे अति कौतूहल या जिज्ञासु महत्व का माना जाता है। इसकी संयुक्त पत्तियों को छूने से पत्तियां अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं, और एक मिनट के अन्दर ही पुन: खुल जाती है।

10. **पुनर्जीवित होने वाला पौधा** *(सिलेजिनेला लेपिडोकाइला)* : यह शुष्क क्षेत्रीय पौधा बिना पानी के पूर्णत: सूखने के बाद भी जीवित हो जाता हैं। शुष्क मौसम में इसके तने मुड़कर गेंद की तरह हो जाते हैं, जैसे ही नमी मिलती है खुल जाते हैं।

फेबेसी कुल के कुछ अल्पज्ञात नृवनस्पतिक विवरण

ए. के. साहू
आइ. एस. आइ. एम, कोलकाता

भारत की वनस्पति में पोएसी के बाद फेबेसी दूसरा वृहत्तम पादप कुल है। इस कुल में छोटे-बड़े पौधे, लता, झाड़ी आदि होते हैं। इनमें दलहन एवं अन्य खाद्योपयागी पौधे शामिल हैं। कुछ पौधों के औषधीय उपयोग भी हैं। इस लेख में देश के विभिन्न राज्यों से प्राप्त 13 पौधों के औषधीय उपयोग एवं अन्य विवरण दिए गए हैं। विवरण का आधार नृवनस्पतिक अनुसंधान है।

1. शोलो, सोला (*एस्चिनोमेन इंडिका*) झील एवं दलदल में मिलने वाले 1 मी. तक लम्बे पौधों में पीले फूल होते हैं। हिमाचल प्रदेश की कांगड़ा घाटी में टूटी हुई हड्डी को जोड़ने के लिए इसका फल पीसकर लगाते हैं। ओडिशा में पेट दर्द होने पर सूखी जड़ का चूर्ण खाते हैं।
2. लता पलाश (*ब्यूटिया सुपर्बा*) : वन के किनारे उगने वाली इस सख्त लता में नारंगी रंग के फूल होते हैं। पश्चिम बंगाल के पुरूलिया में घाव सुखाने के लिए छाल का लस्सा लगाते हैं। ओडिशा में पेट का दर्द ठीक करने के लिए लस्सा से मालिश करते हैं।
3. अपराजिता (*क्लिटोरिआ टर्नेसिया*) : बाग-बगीचों के किनारे एवं बाड़ों मे उगने वाली लताओं में अधिकतर नीले और कही-कही सफेद फूल होते हैं। महाराष्ट्र के चंदरपुर इलाके में पेट साफ रखने के लिए इसकी जड़ खाते हैं। ओडिशा में आखों में संक्रमण होने पर इसके पत्तों का रस डालते हैं।
4. झुनझुनिया, वन मेथी (*क्रोटेलेरिआ एल्बिडा*) : भारत के विभिन्न राज्यों में उगने वाले 60 से० मी० तक ऊँचे पौधों में पीले फूल होते हैं। ओडिशा में रीढ़ की हड्डी में दर्द होने पर जड़ के लस्से से मालिश करते हैं। उत्तराखंड के अल्मोड़ा इलाके में पेट साफ रखने के लिए इसकी जड़ खाते हैं।
5. काला शिरीष पासी (*डलबर्जिआ पेनिकुलेटा*) : देश के अधिकतर वनों में मिलने वाले इस पेड़ की छाल काली और गुलाबी सफेद फूल होते हैं। मेघालय में पाचन विकार में पत्ते का रस, ओडिशा में मलेरिया में छाल का रस लेते हैं।
6. सालपर्णी (*डेस्मोडियम गंजेटिकम*) : वनों मे व्याप्त 1 मी० तक ऊँचे इस पौधे में बैंगनी फूल होते हैं। आंध्रप्रदेश के पूर्वी गोदावरी इलाके में दमा के उपचार हेतु जड़ का रस पीते हैं। ओडिशा में पित्ताशय पत्थर होने पर पत्ते का रस पीते हैं।
7. *डेस्मोडियम उजेनेंसिस* (बांधन, पानान) : वनों में कम मिलने वाले इस बड़े पेड़ की छाल मोटी और फूल सफेद होते हैं। ओडिशा मे गठिया (वात) के रोगी छाल को पीसकर लेप लगाते है। झारखंड के संताल परगना में फल का दंतमंजन के रूप में उपयोग होता है।
8. कुरडिया, कुदालिया (*डेस्मोडियम ट्राइफ्लोरम*) : रास्तों के किनारे उगने वाले, 15 से 45 से० मी० तक ऊँचे पौधे में गुलाबी रंग के फूल लगते हैं। राजस्थान में इसके पत्तों से अतिसार का उपचार होता है। ओडिशा मे मवेशी के हड्डी को जोड़ने के लिए इसे पीस कर लेप लगाते हैं।
9. रनिकाठी, सलपन (*फ्लेमिंजिआ चप्पर*) : वनों में बहुतायत से उगने वाले, 2 मी० तक लम्बे पौधे में श्वेत पुष्प खिलते हैं। झारखंड के हजारीबाग में नेत्र रोग में बीज को पीसकर लेप लगाते हैं। ओडिशा में यह लेप फोड़े में लगाते हैं।
10. झीली, गिरीडी, सकोना (*इंडिगोफेरा कैस्सिआइडिस*) : वनों के किनारे उगने वाले, 3 मी० तक ऊँचे पौधे में गुलाबी फूल खिलते हैं। झारखंड के संताल परगना में महिलाएँ गर्भ धारण करने के लिए इसकी जड़ का उपयोग करती हैं। ओडिशा में खून की उल्टी होने पर इसकी जड़ को पीसकर खाते हैं।
11. पाताल कुम्हड़ा, वनकुम्हड़ा (*प्युरेरिआ फेसिओलोडिस*) : वनों में नदियों के किनारे उगने उगने वाले लता जैसे पौधे में नीले फूल खिलते हैं। मेघालय में दाँत दर्द होने पर पत्तों को पीसकर दन्त मंजन करते हैं। ओडिशा में प्रकंद को पीसकर वात दर्द (गठिया) में मालिश किया जाता है।
12. अगस्त्य, अगति (*सेस्बानिआ ग्रैंडिफ्लोरा*) : सड़कों के किनारे तथा बगीचे में उगने वाला 4 मी० तक ऊँचे वृक्ष में बड़े-बड़े सफेद फूल खिलते हैं। पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी में पत्ते को पीसकर कंठमाला (mumps) का इलाज होता है। ओडिशा में बालो में जूँ होने पर पत्ते का रस लगाते हैं।
13. कृष्णपर्णी, पीठरान (*यूरेरिआ लेगोप्वाइडिस*) : कहीं कहीं वनों के किनारे मिलने वाले, 35 से० मी० तक ऊँचे पौधे में गुलाबी फूल खिलते हैं। पश्चिम बंगाल के पुरूलिया में शरीर में दर्द होने पर जड़ को पीस कर मालिश करते हैं। ओडिशा में पेचिश रोगी को पत्ते का रस पिलाया जाता है।

भारत की ऑर्किड विविधता

जीवन सिंह जलाल एवं जे. जयंती
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

प्रकृति ने असंख्य पुष्पीय एवं अपुष्पीय पौधों को जन्म दिया है। पुष्पीय पौधों में एकबीजपत्री तथा द्विबीजपत्रीय पौधे अलग-अलग संरचनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। एकबीजपत्री पौधों मे ऑर्किडेसी एक ऐसा कुल है जो अपने विशिष्ट एवं रंग-बिरंगे फूलों के लिये संसार भर में प्रसिद्ध है। पौधों की दुनियाँ के इस कुल का स्थान सबसे बड़े कुल के रूप में आता है। संसार भर में इस कुल के लगभग 800 वंश एवं 24,000 प्रजातियां पायी जाती जाती हैं और 10,000 से ज्यादा संकर जातियां हैं। वर्तमान में जिस दर पर नई जातियों की खोज की जा रही हैं। अनुमान है कि इनकी संख्या कुछ साल में 30,000 तक पहुँच सकती है। ये एकबीजपत्रीय पौधों में सबसे विकसित परिवार का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। आर्किड्स अंटार्टिका को छोड़कर हर महाद्वीप में पाए जाते हैं, लेकिन अधिकांश जातियां उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में मिलती हैं।

थियोफ्रेस्टस जो कि वनस्पति विज्ञान के पिता कहलाते हैं (372-371 बी. सी.) उन्होने इस वर्ग को 'ऑर्किड' नाम दिया। इस नाम की उत्पत्ति मूलत: यूनानी शब्द (orkhis) opxis से हुई है, जिसका वास्तविक अर्थ ''अंडकोष'' होता है। यूनानी पद्धति में इस तरह के पौधे जिनके भूमिगत भाग कन्द नुमा। संरचना वाले होते है वे मानव के लिये शक्तिवर्धक माने जाते हैं। भारतीय साहित्य में इनका उल्लेख 'वांदा' के नाम से किया गया है।

आर्किड सामान्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं, स्थलीय, अधिपादपीय और मृतोपजीवी। स्थलीय ऑर्किड जमीन पर उगते हैं, अधिपादपीय जिसका अर्थ है 'जमीन के ऊपर' ये आमतौर पर वृक्षों की शाखाओं में उगते हैं। ये सिर्फ सहारे के लिये वृक्षों में उगते हैं तथा किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते हैं। इनमें विशेष प्रकार की हवा में लटकने वाली वायुवीय जड़ होती हैं, जिनमें विशेष प्रकार का ऊतक होता है जिसे वेलामेन कहते हैं जो वायुमण्डल की नमी को अवशोषित करते हैं। मृतोपजीवी ऑर्किड में हरित रंग नहीं होता है और ये अपना खाना खुद नहीं बना सकते, इसलिये ये मृत कार्बनिक यौगिकों पर उगते हैं।

एकबीजपत्रीय पौधों की तरह आमतौर पर ऑर्किड में समांतर शिराविन्यास वाली सरल पत्तियाँ होती है। स्थलीय ऑर्किड में, पत्ते विभिन्न आकृति और आकार के हैं, लेकिन आम तौर पर ये अण्डाकार - आयताकार और भाले के आकार के होते हैं। कुछ स्थलीय ऑर्किड (गुड्येरा, एनीक्टोंकाइलस) की पत्तियों पर हल्के हरे रंग की पृष्ठभूमि पर चाँदी जैसा उज्ज्वल रंग होता है। इन आर्किड को ''ज्वेल ऑर्किड'' भी कहा जाता है। ।

पहचान

ऑर्किड सामन्यत: अपने फूलों की विशेष संरचनाओं से पहचाने जाते हैं। इनके फूल विभिन्न आकार, प्रकार व रंग के होते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता ये होती हैं कि, ये सब द्विपक्षीय आकार (जायगोमोर्फिक) होते हैं। इनके फूल की संरचना बहुत जटिल प्रतीत होती हैं लेकिन वास्तविकता में ये एक बहुत ही सरल संरचना वाले होते हैं। अन्य फूलों के तरह इनमें भी दल और परिदल होते हैं। इनके फूलों में छ: पंखुड़ियाँ होती हैं, जिनमें तीन बाहरी चक्र में और तीन भीतरी चक्र में होती हैं। बाहर के चक्र वाली पंखुड़ियाँ लगभग एक समान होती हैं तथा अंदर के चक्र वाली दो पंखुड़ियाँ एक समान होती हैं परन्तु बीच वाली एक पंखुड़ी दोनों से भिन्न होती है और अद्वितीय संरचना वाली होती है जिसे 'लिप या लेबेलम' कहते हैं।

सामान्यत: लेबलम फूल के विकास के समय ऊपर की स्थिति में होता है लेकिन बाद में जैसे फूल विकसित होता जाता है यह अपनी स्थिति बदल देता है। इस स्थिति में फूल 180 अंश पर घूम जाता है तथा लेबलम की स्थिति नीचे हो जाती है। यह ऑर्किड में एक सामान्य प्रक्रिया है जिसे विपर्यय कहते हैं। ऑर्किड के फूलों की संरचना देखने से पता चलता हैं कि ये विकास-क्रम की उच्चतम पराकाष्ठा को छू गये हैं। निषेचन की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने हेतु बनी पंखुड़ियाँ तथा प्रजनन भागों की सूक्ष्म बनावट अत्यंत रोचक होती है। ऑर्किड के फूल में प्रजनन की एक अलग विधि होती है जो कि अन्य पौधों से भिन्न होती हैं। पुमंग और जायांग अलग-अलग होने के बजाय एक ही फूल पर होते हैं जो मिलकर एक संरचना बनाते हैं जिसे 'स्तंभ (कॉलम)' कहते हैं। स्तंभ के शीर्ष पर पराग थैलियां

एकत्रित होती हैं जो एक ढक्कन के द्वारा ढकी रहती हैं। स्तंभ की शीर्ष पर पराग थैलियां एकत्रित होती हैं, जो एक ढक्कन से ढकी रहती हैं, इन पराग थैलियों में ठोस रूपी पराग स्थित होता है जिसे पॉलिनिया कहते हैं। पॉलिनिया एक चिपचिपे पदाथ से चिपके रहते हैं जिसे विसिडियम कहते हैं।

परागण विशिष्टता

आर्किड परिवार अपने अति विशिष्ट परागण तंत्र के लिए प्रसिद्ध हैं। परागण को सुनिश्चित करने के लिए फूलों को अपने आप में अत्यधिक विकसित किया है। परागणकर्ता को आकर्षित करने के लिये ऑकिडों ने एक अद्वितीय संरचना वाली पंखुड़ी विकसित की है जो की लिप या लेवेलम है। ऑर्किड के फूल आमतौर पर बहुत लंबे समय के लिए ग्रहणशील रहते हैं। ऑर्किड्स में परागण मक्खियों, पतिंगे, तितलियों, पक्षियों और कीटकों द्वारा होता है। कई ऑर्किड्स परागणकर्ता की एक विशेष जाति के द्वारा ही परागण के लिए अनुकूलित होते हैं। ऑर्किड में परागण हवा द्वारा कभी नहीं होता है, न ही स्व-परागण होता है।

फल और बीज

फल कैप्सूलनुमा व तीन या छः अनुदैर्घ्य वाला होता है। फल को पकने में दो से अट्ठारह महिने लगते हैं। ऑर्किड के बीज बहुत सूक्ष्म होते हैं तथा एक फल में इनकी संख्या अनगिनत होती हैं। कुछ जातियों के एक कैप्सूल मे एक लाख से अधिक तक बीजों की संख्या होती है। बीजों की अति सूक्ष्म बनावट के कारण ये हवा की धाराओं के साथ सैकड़ों किलोमीटर तक उड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंच जाते हैं। ऑर्किड के बीज के भ्रूण में इसके उगने के लिए भोजन एकत्रित नहीं होता है इसी कारण ये बहुत हल्के होते हैं। बीज को उगने का लिए एक विशेष प्रकार के कवक (माइकोराइजा) की जरूरत होती है जो भ्रूण को उगने के लिए पोषण उपलब्ध करता है और बाद में यह कवक एक स्वस्थ सहजीवी के रूप में साथ रहता है।

भारत की ऑर्किड् विविधता

भारत में ऑर्किडस की कुल 184 वंश और 1,300 जातियां मिलती हैं जो कि कुल वनस्पति सम्पदा का 9% भाग है। भारत के विभिन्न राज्यों से उपलब्ध जातियों का विवरण तालिका 01 में दिया गया हैं। भारत में ऑर्किड्स के प्रमुख वंश *डेंड्रोंबियम, बल्बोफिलम, हेबेनेरिया, इरिया, ओबेरोनिया, लिपेरिस, कोइलोगायनी, यूलोफिया, पेरिस्टाइलस, केलेंथी, सिम्बिडियम और गुड्येरा* हैं। डेंड्रोबियम वंश जिसमें 104 जातियाँ हैं, भारत में सबसे बड़ा वंश है। इसके बाद बल्बोफिलम आता है जिसमें 100 जातियाँ हैं। भारत में पाये जाने वाले ऑर्किड्स की प्रमुख वंश तालिका 02 में दिये गये हैं। ऑर्किडस् की 60 प्रतिशत जातियां भारत में अधिपादपीय तथा बाकी स्थलीय हैं। स्थलीय में से भी कुछ वंश जैसे *एफिलॉर्किस,* कोरेलोर्जिया, सिर्टोसिया, डिडिमोप्लेक्सिस, इपिपोगियम, गेलिओला आदि मृतोपजीवी हैं।

तालिका 01 - भारत के राज्य और उनमें ऑर्किड्स की विविधता

राज्य	वंश	जातियां	मिजोरम	75	244
जम्मू एवं कश्मीर	27	51	ओडिशा	48	130
हिमाचल प्रदेश	30	76	छत्तीसगढ	27	68
उत्तराखंड	71	237	मध्य प्रदेश	34	89
पंजाब	12	21	राजस्थान	6	10
हरियाणा	3	3	गुजरात	10	26
उत्तर प्रदेश	19	30	महाराष्ट्र	34	110
बिहार तथा झारखंड	36	100	गोआ, दमन और दीव	18	29
सिक्किम	137	525	कर्नाटक	51	173
अरुणाचल प्रदेश	126	600	आंध्र प्रदेश	33	67
असम	81	191	केरल	77	230
मेघालय	98	352	तमिलनाडु	67	206
नागालैन्ड	63	241	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	59	117
त्रिपुरा	36	58			
मणिपुर	66	251			

भारत में ऑर्किड्स का वितरण

भारत देश 329 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है। जिसका ऊपरी आधा हिस्सा एक सम्पूर्ण भूखंड तथा निचला आधा हिस्सा प्रायद्वीप है। भारतीय वनस्पतियां किसी भी अन्य देश की तुलना में सर्वाधिक विविध हैं। भारत में ऑर्किड समुद्र स्तर के तटीय भागों से लेकर अल्पाइन क्षेत्रों तक पाए जाते हैं लेकिन इनकी बहुतायत विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु पर निर्भर करती है। ये मुख्य रूप से पूर्वी हिमालय, पश्चिमी हिमालय, प्रायद्वीपीय क्षेत्र, पश्चिमी घाट और अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में वितरित है। इनकी अधिकतम बहुतायत पूर्वी भारत में मिलती है। अधिपादपीय ऑर्किड 1,800 मीटर की ऊँचाई तक पूर्वी हिमालय में प्रचुर मात्रा में हैं। स्थलीय ऑर्किड अधिकांश पश्चिम हिमालय और पूर्वी हिमालय के ऊचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। भौगोलिक दृष्टि से मोटे तौर पर भारतीय उपमहाद्वीप को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है (१) हिमालय क्षेत्र, (२) प्रायद्वीपीय क्षेत्र, (३) अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह।

1. **हिमालय क्षेत्र :** भारतीय हिमालय क्षेत्र दस राज्यों तक फैला है जिसमें जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड, मणीपुर, मिजोरम और त्रिपुरा आते हैं। इनके अलावा दो राज्यों (असम और पश्चिम बंगाल) के पहाड़ी क्षेत्र भी आते हैं। यह क्षेत्र 1,500 किलोमीटर में फैला है। असंख्य चोटियों व ऊँचाई में बदलाव के कारण इस क्षेत्र की जलवायु अत्यंत महत्वपूर्ण है, हिमालय की निचली घाटियों जो 600 मीटर से नीचे हैं उन क्षेत्रों में जलवायु गर्म और नम उष्णकटिबंधीय जलवायु हैं तथा 2,000 मीटर के ऊपर समशीतोष्ण जलवायु है, इससे अधिक 3,000 मीटर के ऊपर अत्यधिक ठंडी जलवायु है। वनस्पतीय भूगोल के अनुसार हिमालयी क्षेत्र कई देशों और उनके वनस्पतियो का मिलान बिंदु है। *एक्सोसेंट्रम, केलेंथी, डेंड्रोबियम, इरिया, हेबेनेरिया, ओबेरोनिया* और वांडा की तरह कई ऑर्किड वंश उष्णकटिबंधीय जंगलों में मिलते हैं। उप-उष्णकटिबंधीय जंगलों में *एनोक्टोकाइलस, यूलोफिया और गेलिओला* वंश के ऑर्किड मिलते हैं जबकि अल्पाइन क्षेत्र में ऑर्किस, *सेफेलेंथेरा, साइप्रिपिडिअम, डिडिसिआ, इपिपेक्टिस, हर्मिनिअम* और *स्पिरेंथेस* वंश के ऑर्किड मिलते हैं। इस क्षेत्र में लगभग 1,000 जातियाँ तथा 167 वंश अभी तक खोजे जा चुके हैं, जिनमें 868 जातियां तथा 79 वंश केवल इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं।

2. प्रायद्वीपीय क्षेत्र : प्रायद्वीपीय क्षेत्र एक विशाल पठारीय भू-भाग है जो कि ओडिशा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु तक फैला है। यह उत्तर में विंध्य पर्वत, पश्चिम में अरब सागर, दक्षिण में हिंद महासागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से घिरा है। इस क्षेत्र का भूगोल तीन अर्थात् डेक्कन पठार, पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट में बटा हुआ है। प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग में एक वर्ष में 3000 मिमी से लेकर 5000 मिमी तक वर्षा होती है। यहां की वनस्पति जलवायु और अक्षांश में बड़े बदलाव के कारण विविध है। पश्चिमी घाट गुजरात में दाप्ती घाटी से लेकर तमिलनाडु में कन्याकुमारी तक 1600 किमी की एक अटूट पर्वत शृंखला बनाती है जो कि इसकी सबसे बड़ी भौगोलिक विशेषता है। इसके उष्णकटिबंधीय आर्द्र सदाबहार जंगल, नम और शुष्क पर्णपाती वन, शोला वनों, झाड़दार जंगल और पर्वतीय घास के मैदानों में विविध प्रकार की पादप सम्पदा है। पूर्वी तट पर पूर्वी घाट अलग-अलग पहाड़ियो के समूह तथा टूटी हुई पर्वत शृंखला है। पश्चिमी तट से पूर्वी तटीय क्षेत्र बहुत फैले हुये हैं। यहाँ की वनस्पति भी पश्चिमी घाट की तुलना में कम समृद्ध और विविध है। यहाँ ऑर्किड कम नमी वाले क्षेत्र में जीवित रहने के लिए अनुकूलित हैं। इस क्षेत्र में लगभग 371 जातियां तथा 86 वंश अभी तक खोज गए हैं, जिनमें से 228 जातियां तथा 11 वंश केवल इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं, जो कि *एनहेनरिया, कॉटोनिया, डिप्लेसेंड्रस, डिस्पेरिस, इप्सिया, सिडेंफेडेनिया, स्मिथसेनिया* और *जेनिकोफाइटन* हैं। ये सभी वंश विशिष्ट वास और समुद्र स्तर से 2,300 मीटर की ऊँचाई में वास करते हैं। प्रायद्वीप के आर्किड्स की विशिष्टता ये है कि ये अधिकतर स्थानिक हैं जिनकी समानता श्रीलंका के ऑर्किडस के साथ हैं।

3. **अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह :** अंडमान और निकोबार दो द्वीप समूहों से मिलकर बना है तथा बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में स्थित है। अडमान में 300 से अधिक द्वीप शामिल हैं जो उत्तर, मध्य, और दक्षिण अंडमान के रूप में जाना जाता है। लिटिल अंडमान दक्षिण में निकोबार द्वीप समूह से अलग है, जो कि दस डिग्री चैनल लगभग 90 मील (145 किमी) चौड़ा है। निकोबार 19 द्वीपों को मिलकर बना है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की जलवायु उष्णकटिबंधीय है। इस क्षेत्र में सालाना 120 इंच (3000 मि.मी.) बर्षा होती है जो मुख्य रूप से दक्षिण पश्चिम मानसून आधारित है। इन द्वीपों की वनस्पति मलेशिया, म्यांमार, इंडोनेशिया और थाईलैंड से समानताएं दिखाती हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप के ऑर्किड्स का आकलन अभी तक ठीक से नहीं हुआ है। इस क्षेत्र में लगभग 121 जातियां तथा 60 वंश अभी तक खोजे गए हैं जिनमें से 67 जातियां तथा 5 वंश केवल इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं। *ग्रोसॉरड्या, मैक्रोपोडेथस, मेलिओला, प्लोकोग्लॉट्टिस* और *एपेंडिकुला* वंश केवल इन्ही द्वीपों में मिलते हैं जो भारत की मुख्य भूमि में नहीं पाए जाते हैं।

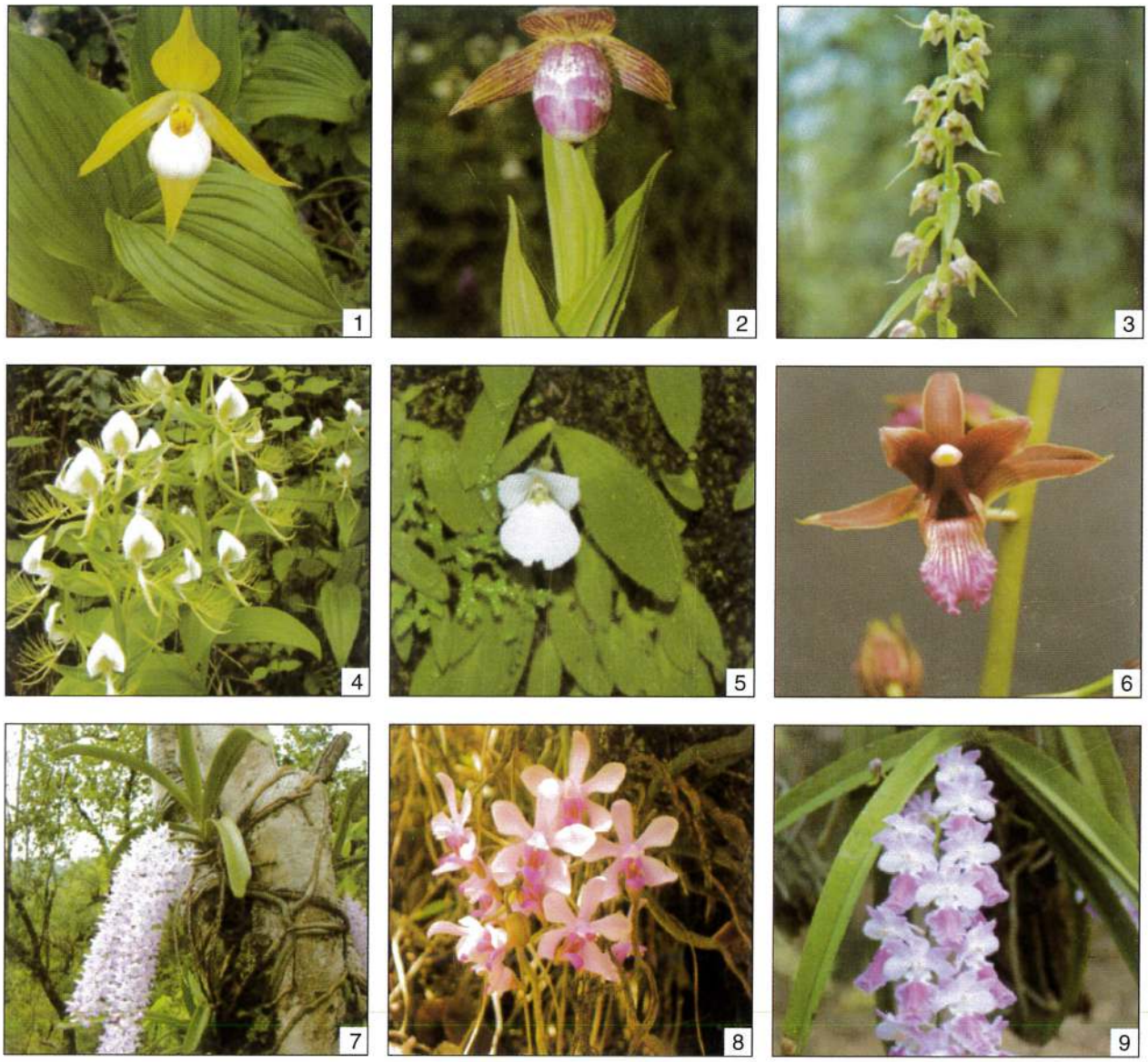

1. *साइप्रिपेडियम कॉर्डिजेरम* 2. *साइप्रिपेडियम हिमालेकम* 3. *इपीपेक्टीस हेलिबोरायनी* 4. *हेबेनेरिया इनटर्मिडिया*
5. *डिप्लोमेरिस हिरसुटा* 6. *युलोफिया स्पेक्टाबेलिस* 7. *रेंकोएस्टालिस रिट्युसा* 8. *फेलेनोप्सिस टेनियेल*
9. *एरिड्स मैक्यूलोसा*

ऑर्किड्स का महत्व

ऑर्किडस अपने औषधीय गुणों के लिए दुनियाँ के विभिन्न भागों में प्राचीन काल से ही जाने जाते हैं। प्राचीन चीन में 2800 ई. पू. के दौरान, वहाँ ऑर्किड की कुछ प्रजातियों के औषधीय प्रयोग के अभिलेख भी हैं। भारत में भी ऑर्किड्स का इस्तेमाल वैदिक काल से ही स्वदेशी दवाओं को बनाने में किया जाता है। अष्टवर्ग जो कि आठ दवाओं का मिश्रण है और आयुर्वेदिक प्रणाली में च्यवनप्राश बनाने में जिसका प्रयोग किया जाता है उसमें भी चार ऑर्किड जातियों का प्रयोग किया जाता है जो जीवक (Malaxis muscifera), रिशिभक, रिधि (Habenaria intermedia) और विर्धि (Habenaria edgeworthii) के नाम से जानी जाती हैं।

ऑर्किड जातियों की एक अच्छी संख्या चिकित्सा के पारंपरिक प्रणालियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिनमें प्रचुर मात्रा में एल्कलोयड्स, ग्लाइकोसाइड और फाईटोकैमिकल्स पाये जाते हैं। देश के विभिन्न भागों में विभिन्न पारंपरिक औषधीय के रूप में आज भी उपयोग किया जा रहे हैं। किन्तु इनके औषधीय गुणों पर आवश्यक वैज्ञानिक अध्ययन नगण्य है।

ऑर्किड के फूलों की बनावट, आकार, रंग, खुशबू तथा लंबे समय तक यथायथ रहने की क्षमता, वर्तमान में अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में अधिक कीमत का पर्याय बन चुकी है। आर्किड के सबसे बड़े निर्यातकों में ताइवान, चीन, जापान, थाईलैंड, हॉलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली और ब्राजील शामिल हैं।

खतरे और संरक्षण

ऑर्किड्स की आबादी दुनियां भर में बहुत तेजी से घट रही है जिनमें से कुछ विलुप्त होने के कगार पर हैं। यह भारत जैसे विकासशील देशों में अधिक स्पष्ट हैं। देश में ऑर्किड की विविधता के बाबजूद कई प्रजातियाँ आज विभिन्न कारणों से दुर्लभ व खतरे के कगार पर हैं तेजी से हो रहे वनों का दोहन, वास नुकसान, अतिचारण, वास विखंडन, औद्योगिक विकास के कारण आर्किडस खतरे में हैं। अभी तक भारत में 250 से भी ज्यादा प्रजातियों का अस्तित्व खतरे में है। ऑर्किड के फूल अत्यधिक आकर्षक होने के कारण इनकी बढती मांग से आज जंगली जातियों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। बड़े और आकर्षक फूलों वाली जातियों को अधिक खतरा है। भारत में ऑर्किड की कुछ जातियां, जो पहले बहुतायत में थी लेकिन आज वे अपने मूल निवास से गायब हो गयी हैं। भारतीय जंगल तेजी से बढते शहरीकरण, औद्योगीकरण और बढती जनसंख्या की वजह से जबरदस्त दबाव में हैं। भारत में संरक्षण की प्रमुखता विशेषरूप से बाघ, हाथी जैसे बड़े जानवरों तक ही सीमित है। दुख की बात यह है कि आज भी पौधों के संरक्षण के लिए कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है। ऑर्किडस की संख्या में तेजी से आयी कमी का कारण जलवायु परिवर्तन भी एक मुख्य कारक है। विलुप्त होने की प्रक्रिया एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। अधिकांश जातियां जो कभी पायी जाती थी, आज विलुप्त हो चुकी हैं। लेकिन चिंता का विषय यह है कि आज प्रजातियाँ अप्राकृतिक दर से विलुप्त होती जा रही हैं।

सामान्य पौधों का संरक्षण और विशेष रूप से ऑर्किड का संरक्षण एक बहुत बड़ा मुद्दा है, क्योंकि भारत में इनका व्यापक वितरण संरक्षण के लिये एक चुनौति है। ऑर्किड को अलग से संरक्षित नहीं किया जा सकता है बल्कि उनके प्राकृतिक निवास में ही लुप्तप्राय और संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण के लिए अच्छे तरीके अपनाये जाने चाहिए और पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को उनके प्राकृतिक स्थायीकरण के लिए संरक्षित किया जाना चाहिए. देश में सभी भागों में ऑर्किड समुद्र क्षेत्रों की पहचान की जानी चाहिये तथा उन क्षेत्रों को ऑर्किड संरक्षित क्षेत्र घोषित किया जाना चाहिए। भारत सरकार ने पहले से ही देश के कुछ संपन्न क्षेत्रों को जहां ऑर्किड प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं ऑर्किड संरक्षित क्षेत्र घोषित किये हैं। उदाहरण के तौर पर अरूणाचल प्रदेश के पश्चिम कामेंग जिले में शीशा ऑर्किड अभयारण्य, लोलेगाअ और तक्धा पश्चिम बंगाल में, देऊरालि और सिंगताम सिक्किम में नागोपा, सरीप मिजोराम में तथा किर्दमकुलाई मेघालय में। ऐसे ऑर्किड अभयारण्य और संरक्षित क्षेत्रों में सभी विशिष्ट उपाय, जो कि ऑर्किड के विकास और उत्थान के लिए अनुकूल हो किये जाने चाहिए। इसके अलावा ऑर्किड के बीजों और जीन बैंकों की स्थापना करके विभिन्न जातियों को बचाना एक और सबसे कारगर साधन है। इस दिशा में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा बड़ी संख्या में ऑर्किड की दुर्लभ और विलुप्त होने के कगार वाली जातियों को राष्ट्रीय ऑर्किडेरियम हावड़ा, शिलांग और येरकार्ड (तमिलनाडु) में संरक्षित किया जा रहा हैं। इन ऑर्किडेरियम का मुख्य उद्देश्य सभी भारतीय ऑर्किड जाति के कम से कम एक प्रतिनिधि का संग्रह और उनके वर्गीकरण, फीनोलौजिकल और पोषण संबंधी अध्ययन करना भी है। लेकिन आज भारत में ऑर्किडस के लिए एक अच्छी रणनीति की आवश्यकता है, जो हमारे देश में राजस्व पैदा करने में भी मददगार साबित हो सके। आज आर्किडोलोजी केवल पादप विज्ञान की एक महत्वपूर्ण और आकर्षक शाखा ही नहीं बल्कि फूलों के व्यापार जगत में भी अपना उच्च प्रतिनिधित्व करता है।

वनाग्नि : कारण, दुष्परिणाम एवं बचाव के उपाय

कुमार अम्बरीष
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

वनों में लगने वाली आग, वनाग्नि (फारेस्ट फायर) वर्तमान परिप्रेक्ष में पर्यावरण के दृष्टिकोण से एक गंभीर समस्या बन चुकी है। भारतवर्ष में हिमालयी वनों को देश के आक्सीजन कारखाने के रूप में जाना जाता है, लेकिन दुर्भाग्यवश पिछले दशक में उत्तराखण्ड के लगभग 30,000 हेक्टयर वन, वनाग्नि की भेंट चढ चुके हैं। इस वर्ष मई, एवं जून में हिमाचल प्रदेश से लेकर उत्तराखण्ड के कई हजार हेक्टेयर वन भीषण वनाग्नि की चपेट में पुन: ध्वस्त हो चुके हैं। वन विभाग के आंकड़ों के अनुसार इस वर्ष अकेले उत्तराखण्ड में लगभग 2000 हेक्टेयर जंगल वनाग्नि से प्रभावित हुये हैं। वनाग्नि से केवल वन एवं धन की ही हानि नहीं होती बल्कि प्रभावित क्षेत्रों में वनस्पति एवं प्राणी विविधता, पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण पर भी अत्याधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दो दशक में यहां पर वनाग्नि से लगभग 93000 हेक्टेयर वन एवं वनस्पतियां क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। यहां के निवासियों को विभि न्न समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। जिसमें चारा, जलावन की लकड़ी एवं पीने के पानी आदि की समस्यायें प्रमुख हैं।

वनाग्नि के कारण

वर्तमान परिप्रेक्ष में इसका कारण मनुष्य को ही माना जा रहा है, जो अपनी लापरवाही अथवा आवश्यकताओं हेतु अपने पैरों पर कुठाराघात कर लेता है, जिसके फलस्वरूप ''वनाग्नि'' जैसी भीषण समस्या उत्पन्न होती है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो इसके मुख्य दो कारण हैं।

१. **प्राकृतिक कारण :**

- आकाशीय बिजली गिरने से जंगलों में अग्नि का प्रवाह।
- शुष्क एवं गर्म मौसम में पर्वतीय पत्थरों से उत्पन्न चिंगारियों द्वारा।
- बांस मिश्रित वनों में तनों के घर्षण के द्वारा।
- कई स्थानों में ज्वालामुखी फटने से।

२. **मनुष्य द्वारा उत्पन्न कारण :**

- लापरवाही में फेंकी गयी सिगरेट, बीड़ी एवं माचिस के अवशेषों द्वारा।
- फसलों की कटाई के उपरान्त असावधानीपूर्वक लगाई गयी आग।
- चारे हेतु अच्छी घास उगाने के लिये लगाई गयी अनियंत्रित आग।
- उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में ''झूम खेती'' हेतु लगायी गयी अनियंत्रित आग।
- पर्वतीय रास्तों को साफ करने हेतु ग्रमीणों द्वारा लगायी गयी आग।
- जंगली जानवरों को डराने एवं भगाने हेतु लगयी गयी आग।

वनाग्नि के प्रकार :

सतही अग्नि : इस प्रकार की अग्नि प्रमुखत: वृक्षों के नीचे उगी घास, मॉस, शैवाक, झाड़ियों, खरपतवारोंएवं गिरी हुयी पत्तियों में लग जाती है, जो कभी-कभी वृहद रूप ले लेती है।

क्राउन अग्नि : यह अग्नि वृहद रूप में वृक्षों एवं बड़ी झाड़ियों में लगती है, जिससे वनों को अत्यधिक हानि होती है, कभी-कभी यह द्रुत गति से वनों के एक बड़े भाग को अपनी चपेट में ले लेती है।

दुष्परिणाम :

प्राय: देखा गया है कि पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में ''वनाग्नि'' पूर्वी हिमालयी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक निरन्तर एवं घातक होती है जिसका सीधा कारण यहां के शुष्क पर्णपाती वन, जलवायु एवं निम्न एवं मध्य हिमालयी क्षेत्रों में चीड़ के घने जंगल आदि हैं। उत्तराखण्ड में लगभग 1800 मीटर की उंचाई तक पाये जानेवाले चीड़ के जंगल में ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक मात्रा में पत्तियां (पिरूल) गिर जाती हैं जो अपनी जलाऊ प्रवृत्ति के कारण शीघ्र आग पकड़ लेती हैं। तत्पश्चात् निम्नलिखित दु:ष्परिणामों को जन्म दे देती है।

प्राकृतिक वनस्पतियों एवं वन क्षेत्र की हानि : क्षेत्र में बहुमूल्य वनस्पतियां एवं वन क्षेत्र नष्ट होने से वन विभाग एवं ग्रामीणों को काफी आर्थिक नुकसान होता है।

जीव-जन्तुओं के वास स्थल की हानि : वनाग्नि से जीव-जन्तुओं के वास स्थल की ही हानि नही होती बल्कि जीवों में विभिन्न कीट पतंगों, उभयचरी जन्तुओं जैसे मेंढक व टोड, सर्प, छिपकलियों एवं विभिन्न स्तनधारी जन्तुओं जैसे हिरन, बाघ, एवं लोमड़ी आदि, जो पर्यावरण एवं पारस्थिकी के अभिन्न अंग है, की भी हानि होती है। जीव जन्तुओं की कई दुर्लभ प्रजातियां वनाग्नि के प्रभाव से संकटग्रस्त भी हो सकती है।

बहुमूल्य इमारती लकड़ी की हानि : वनों में पायी जाने वाली बहुमूल्य इमारती वृक्षों की प्रजातियां जैसे शीशम, साल, टीक, सांदन, देवदार आदि भी वनाग्नि से अत्याधिक प्रभावित होती है। जिससे वन विभाग की आय को हानि होती है।

जल स्रोत की हानि : पर्वतीय क्षेत्रों में वनाग्नि के प्रभाव से गांवो में पीने के पानी के जलस्रोत सूख जाते हैं, जिससे ग्रामीणों को जीवन यापन की कठिनाई ऊत्पन्न हो जाती है।

जनजातियों के हितों की हानि : वे जनजातियां जो मूलरूप से वनों एवं उनके उत्पादों पर निर्भर करती हैं उनके सामने जीवन यापन एवं भरण पोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

पर्यावरण संतुलन की हानि : वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड गैस की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाने से श्वसन इत्यादि रोगों की समस्या ऊत्पन्न हो जाती है, वातावरण में तापक्रम एवं प्रदूषण बढ़ने से ओजोन परिमण्डल के लिये भी खतरा बढ़ जाता है। क्षतिग्रस्त स्थानों पर *लैंटाना, पार्थिनियम, एजिरेटम* आदि खरपतवार पैदा हो जाती है।

बचाव के उपाय :

- जंगलों में ''अग्नि रेखा'' (फायर लाइन) द्वारा आग एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नही फैलती है।
- जनसाधारण को वनाग्नि से होने वाले दुष्परिणामों के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है।
- वनाग्नि से निपटने के लिये ग्रामीणों को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता।
- ग्रीष्म ऋतु के आने से पहले राष्ट्रीय स्तर पर ''वनाग्नि'' से बचने के लिये जागरूकता अभियान में वन विभाग के कर्मिकों, गैरसरकारी संगठनों, स्कूलो बच्चों, शिक्षकों आदि को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। जिन क्षेत्रों में वनाग्नि बार-बार होती है उन्हें ''वनाग्नि संवेदित क्षेत्र'' घोषित कर प्रत्येक गांव में सुरक्षा पुख्ता इंतजाम करने चाहिये, जिसमे इसे रोका जा सके। इन क्षेत्रों में ''अग्नि रोधक पौधों'' का वनीकरण होना चाहिये।
- जिन क्षेत्रों में पिरूल अथवा अन्य पत्तियां अधिक गिरती हैं, उनको ग्रामिणों की मदद से उठाकर वनों को सुरक्षित रखना चाहिये।
- जंगलों के भीतर बीड़ी, सिगरेट तथा ज्वलनशील सामग्री जैसे कैरासिन, पेट्रोल, जलती लकड़ियां, प्लास्टिक बैग आदि नहीं ले जाना चाहिये।

वनाग्नि की रोकथाम करना केवल सरकार व वन विभाग की ही जिम्मदारी नहीं बल्कि हम सबकी भी है जो इस परिवेश में रहते हैं। वन विभाग एवं राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन कोश अपने तौर तरीकों से आवश्यक कार्य कर रहे हैं और उत्तराखण्ड में 1151 फायर कू स्टेशन से बचाव के हर संभव प्रयास होते हैं। लेकिन कहावत है कि ''समाधान से बचाव उत्तम होता है''। दुर्लभ वन संपदा को भविष्य हेतु सुरक्षित रखना आवश्यक है।

1. गढ़वाल हिमालय के वनों में लगी आग; 2. वनाग्नि से जलते चीड़ के जंगल; 3. अरूणाचल प्रदेश में झूम खेती हेतु लगाई गई आग के पश्चात का दृश्य।

वनस्पति वाणी अंक 21 : 133-135(2012)

सौन्दर्य प्रसाधनी पौधे

सौम्याश्री पाठक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

महर्षि चरक रचित 'चरक संहिता' पौधों के औषधीय गुणों को व्यक्त करने वाला एक अद्‌भुत संग्रह ग्रंथ है। चरक संहिता आयुर्वेद का आधार ग्रंथ है, जिसमें लगभग 700 पौधों के औषधीय गुणों का विस्तार पूर्वक वर्णन है। कहा जाता है कि भगवान धन्वन्तरि ने अपने शिष्य को पौधों से उपचार विधि का ज्ञान दिया जो बाद में आयुर्वेद के रूप में विख्यात हुआ। आज हम आयुर्वेद की मदद से विभिन्न प्रकार के रोगों का प्राकृतिक उपचार सफलता पूर्वक करते हैं। आयुर्वेद में वर्णित अनेक पौधे ऐसे हैं जिनका उपयोग सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में किया जाता है। बाजार में ऐसे हजारों उत्पाद हैं जो आयुर्वेद के सिद्धांत पर बनाए गए हैं और ऐसे उत्पाद सफल भी हैं। प्राकृतिक उत्पादों का दुष्प्रभाव भी नहीं के बराबर होता है।

कुछ महत्वपूर्ण पौधों और उनका सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में उपयोग निम्नवत है।-

1. **घृतकुमारी** (हिन्दी) *एलो वीरा* (वैज्ञानिक नाम), घृतकुमारी (बंगला), पादप-कुल : लिलिएसी

पत्तियों का मांसल भाग सौंदर्य प्रसाधन के रूप में उपयोग किया जाता है। इसे चेहरे पर लगाकर हलकी मालिश करने पर चेहरा साफ और कांतिमय हो जाता है। पत्तियों से प्राप्त रस का उपयोग चर्म रोग, जलने से बने घाव, तथा त्वचा पर असामान्य गाँठ के उपचार में किया जाता है। औद्योगिक जगत में इसका उपयोग सौन्दर्य क्रीम, मलहम, जेल, तेल और साबुन बनाने में किया जाता है।

''कुमारी गृहकन्या च कन्या घृतकुमारिका।'' (भा. प्र.)

2. **कालमेघ** (हिन्दी, बंगला), *एन्ड्रोग्राफिस पेनिकुलाटा* (वैज्ञानिक नाम), पादप-कुल : एकेन्थिऐसी

कालमेघ के पौधों का उपयोग रक्त के शुद्धिकरण में होता है। यह स्वाद में अत्यन्त तीता है। पौधों को पत्तियों सहित पानी में 5-6 घंटे तक भिगा दिया जाता है तथा प्राप्त जल का सेवन करने से चेहरे पर होने वाले कील मुहांसे से कम हो जाते है तथा त्वचा में चिकनाई आती है। इससे प्राप्त तेल का उपयोग बालों को लम्बा तथा मजबूत करने में किया जाता है।

''किराततिक्त: कैरात: कटुतिक्त: किरातक:।
काण्डतिक्तो नार्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनक:।।'' (भा. प्र.)

3. **मूँगफली** (हिन्दी), *एरैकिस हाइपोजिया* (वैज्ञानिक नाम), चीना बादाम (बंगला), पादप-कुल : फेबेसी।

मूँगफली से प्राप्त तेल का उपयोग सौन्दर्य क्रीम, साबुन इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसे सीधे तौर पर शरीर पर मालिश भी किया जाता है जिससे हड्डियाँ मजबूत होती है। यह त्वचा की नमी को नष्ट होने से बचाता है जिससे त्वचा की शुष्कता कम होती है। ठंडे प्रदेशों में रहने वाले लोगों के लिए यह लाभकारी होता है।

''द्वित्रिबीजो भूचणक: स्नेहाद्‌यो रक्तबीजक:।
भूवाचि शब्दपूर्वो ऽयं चणक: सितसूपक:।।(स्व.)

4. **नींबू** (हिन्दी), *सीट्रस लीमोन* (वैज्ञानिक नाम), पाती लेबू (बंगला), पादप-कुल : रूटेसी।

नींबू का रस स्वाद में खट्‌टा तथा पाचन में सहायक होता है। इसका रस प्राकृतिक विरंजक के रूप में उपयोग किया जाता है। इसे चेहरे पर लगाने से चेहरा साफ होता है तथा मुहांसे तथा काले निशान भी कम हो जाते हैं। सौंदर्य उद्योग में बड़े पैमाने पर इसका उपयोग किया जाता है। इससे बनने वाले तेल का उपयोग बालों को घना तथा मुलायम करने में किया जाता है। गरम पानी के साथ प्रतिदिन इसके रस के सेवन से मोटापा कम हो जाता है।

''दन्तशठं जम्बीर जम्भीरं जम्भलं तथा जम्भम्।
मुखशोधि रोचनाख्यं निगद्यते दन्तहर्षीति।।'' (अ.म.)

5. **संतरा** (हिन्दी), *सीट्रस रेटिकुलाटा* (वैज्ञानिक नाम), कमला लेबू (बंगला), पादप-कुल : रूटेसी।

इसके छिलके को सुखा कर चूर्ण बनाया जाता है, जिसका उपयोग चेहरे तथा त्वचा में उबटन के रूप में किया जाता है। चेहरे पर होने वाले मुहांसों तथा काले निशान को खत्म करने में अति उपयोगी औषधि के तौर पर यह क्रीम और विरंजक बनाने में उपयोग किया जाता है।

''तृष्णाशूलकफोत्क्लेशछर्दिश्वासनिवारणम्।
मधुरं तर्पणं वृष्यं मुखवैशद्यकारकम्।।'' (स्व.)

6. **नारियल** (हिन्दी), *कोकस न्युसीफेरा* (वैज्ञानिक नाम), नारीकेल (बंगला), पादप-कुल : एरीकेसी।

इससे प्राप्त तेल का उपयोग बालों को घना तथा मुलायम करने में होता है। सौंदर्य प्रसाधन तथा साबुन उद्योग में इसका उपयोग बड़े पैमाने में होता है। यह एक उत्तम संकोचक है।

''नारिकेलोद्भवं तैलं बृहणं बलवर्धनम्।
केश्यं पित्तानिलहरं मधुरं रसपाकयो: ।। (भा. प्र. नि.)

7. **खीरा** (हिन्दी), *कुकुमिश सेटाइवस* (वैज्ञानिक नाम), शोसा (बंगला), पादप-कुल : कुकरबिटेसी।

फल को उत्तम संकोचक माना जाता है। सीधे तौर पर चेहरे को विरंजित करने में इसका उपयोग किया जाता है। फल को बीज सहित पीस कर शरीर पर लगाने से त्वचा का रंग साफ होता है, तथा इसका सूखापन भी खत्म हो जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में इसका उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन से जुड़े क्रीम, साबुन, फेसवॉश इत्यादि बनाने में होता है।

''त्रपुसं मूलफलाख्यं कटुकच्चुर्दापनी च गलपर्णी।
तिक्तफला च विपाण्डु: पर्यायै: कर्कारीलताह्वा स्यात्।।'' (अ.म.)

8. **हल्दी** (हिन्दी), *करकुमा लोन्गा* (वैज्ञानिक नाम), हलुद (बंगला), पादप-कुल : जिन्जीबरेसी।

इसके प्रकंद को पीसकर या पाउडर बनाकर त्वचा में उबटन के रूप में लगाया जाता है। यह रोगाणुरोधक होता है तथा त्वचा के रंग को निखारता है। इसका उपयोग अनेक प्रकार के सौन्दर्य क्रीम, मलहम तथा साबुन आदि बनाने में किया जाता है। भारत में इसका उपयोग प्राचीन काल से होता आया है। यहाँ विवाह के दौरान वर-वधू को उबटन लगाने का रिवाज है। यह कफ तथा दर्द नाशक भी होता है।

''गौरी हरिद्रा रजनी च पीता पिण्डा च् पिड्गेति च कांचनी च्।
स्त्रीवल्लभा वर्णवती कृमिघ्नी प्रोक्ता निशाख्यापि च रंजनीति।।'' (अ.म.)

9. **आँवला** (हिन्दी), *फायलेंथस एम्बलिका* (वैज्ञानिक नाम), आमलकी (बंगला), पादप-कुल : फायलेंथेसी।

इसके फल शीतप्रदायक होते हैं। फल को सुखा कर चूर्ण बनाया जाता है जिसका उपयोग केश रंजकके रूप में किया जाता है। प्रतिदिन इसका सेवन किया जाय, तो बाल असमय सफेद नहीं होते तथा उनका सूखापन भी खत्म हो जाता है। इसमें रोगाणुरोधक तथा संकोचक के गुण पाए जाते हैं। इससे प्राप्त तेल का उपयोग केस तेल, त्वचा के टॉनिक, टूथपेस्ट तथा अन्य सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है।

''वयश्थाऽऽमलकं वृष्य जातीफलरसं शिवम।
धात्रीफलं श्रीफलं च तथाऽमृतफलं स्मृतम।।'' (ध. नि.)

10. **राई** (हिन्दी), *ब्रेसिका नाएग्रा* (वैज्ञानिक नाम), सोकरसे (बंगला), पादप-कुल : ब्रेसिकेसी।

इसके बीज से प्राप्त तेल शीतलक, आर्द्रक तथा रोगाणुरोधक गुण वाले होते है। इसका तेल शरीर पर लगाया जाता है। छोटे बच्चों को इसके तेल से मालिश करने पर उनकी हड्डियाँ और मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं। चर्म रोग में भी यह लाभकारी होता है। इसे बालों में भी लगाया जाता है।

''राजी तु राजिका तीक्ष्णगन्धा क्षुज्जनकासुरी।
क्षव: क्षुधाभिजनक: कृष्णिका कृष्णसर्षप: ।।''
सर्षप कटुक: स्नेहस्तन्तुभवस्च कदंबक।
गौरस्तु सर्षप: प्राज्ञै: सिद्धार्थ इति कथ्यते।। (अ. म.)

11. **गुलाब** (हिन्दी), *रोजा साइमोजा* (वैज्ञानिक नाम), गोलाप (बंगला), पादप-कुल : राजेसी।

गुलाब का फूल एक सौंदर्य प्रदाता है। इससे तेल, गुलाब जल, गुलकंद तथा सुगंधित प्रसाधन बनाये जाते हैं। इससे प्राप्त तेल रोगाणुरोधक तथा संकोचक गुण के होते हैं। औद्योगिक रूप से इसका उपयोग सौन्दर्य क्रीम, मलहम, जेल, तेल, साबुन और गुलाब जल बनाने में किया जाता है। इसके तने से प्राप्त पाउडर का उपयोग त्वचा के जलने से बने घाव के दाग मिटाने में किया जाता है।

''महाकुमारी तरुणी शतपुष्पाऽतिकेसरा।
सुगन्धिनी कण्टकिनी प्रोच्यते शतपत्रिका.'' (अ.म.)

12. **वनमलिका जूही-चमेली** (हिन्दी, बंगला), *जेस्मिनम ऑगस्टीफोलियम* (वैज्ञानिक नाम), पादप-कुल : ओलिएसी।

पत्तियों और फूल से तेल निकाला जाता है। तेल सुगन्धित तथा शीत प्रदायी होता है। इसे कुष्ठ रोगी के बालों और त्वचा पर लगाया जाता है। इसे साबुन, इत्र, पाउडर, क्रीम इत्यादि में ओद्योगिक तौर पर प्रयुक्त किया जाता है।

''आस्टफोता पटुतिक्ता च चक्षुष्या मुखपाकहृत्।
कुष्ठविष्फोटकण्डूतिविषव्रणहरा परा।'' (रा.नि.)

13. **पुदीना** (हिन्दी), *मेंथा आरवेन्सिस* (वैज्ञानिक नाम), पुदीना पाता (बंगला), पादप-कुल : लेमीएसी।

पत्तियों से मिंट तेल प्राप्त किया जाता है, जिसे मेंथा तेल (Menthol oil) भी कहा जाता है, जो अत्यंत शीतप्रदायी होता है। इसमे रोगाणुरोधक तथा संकोचक गुण पाए जाते हैं। सामान्यत: इसका उपयोग त्वचा मे क्रीम, टोनर, दाढी बनाने के लोशन तथा कुछ दवाईयों में होता है।

''पोदीनक: सुगठधिसस्यात् कटुरुष्णश्व दीपन:।
रजोदोषहरो बल्यो मूत्रको रक्तशोधन:।।
कफवातज्वरश्वासकासशुलातिसारनुत।
कामिला पाण्डुहृद्रोगदुष्टव्रणविनाशन।।'' (स्व.)

14. **रेड़ी, एरण्ड** (हिन्दी), *रिसिनस कम्यूनिस* (वैज्ञानिक नाम), रेड़ी (बंगला), पादप-कुल : यूफॉरबिएसी।

इसके बीज से प्राप्त तेल का हेयर टॉनिक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह बालों को लम्बा तथा काला करता है। इसमे रोगाणुरोधक तथा संकोचक गुण पाए जाते हैं। बालों में प्रतिदिन मालिश से रूसी नष्ट हो जाती है,एवं बालों का झड़ना बंद हो जाता है।

''शुक्क एरण्स आमण्ऽश्चित्रो गन्धर्वहस्तक:।
पंचागुलों वर्धमानो दीर्घदण्डी व्यडम्बक।।'' (भा.प्र.)

15. **चन्दन** (हिन्दी, बंगला), *सेन्टालम एलबम* (वैज्ञानिक नाम), पादप-कुल : सेंटलेसी।

तने से प्राप्त चूर्ण बहुत उपयोगी होता है। सामान्यत: इससे चंदन पाउडर, क्रीम, साबुन, जले के दाग के लिए मलहम, चेहरे के पैक इत्यादि बनाए जाते हैं। इसके चूर्ण का हल्दी तथा गुलाब जल के साथ मिश्रण बनाकर उबटन के तौर पर उपयोग किया जाता है। यह त्वचा के लिए बहुत लाभकारी है। तने से चन्दन तेल भी प्राप्त किया जाता है। यह एक उत्तम संकोचक है।

''सर्व सतिक्तकटुक चन्दनं शिशिरं परम्।
वृष्य हृद्यं सुगन्धं च रक्तपित्तहरं शुभम्।'' (म.नि.)

16. **अश्वगंधा** (हिन्दी), *विथानिया सोमनीफेरा* (वैज्ञानिक नाम), अश्वगंधा (बंगला), पादप कुल : सोलेनेसी।

पत्तियों तथा जड़ से प्राप्त अर्क बालों को लम्बा, घना, तथा काला करता है। यह एक उत्तम शीतलक रूप में भी उपयोग किया जाता है। इसमें प्रतिजीव गुण पाया जाता है।

''अश्वगंधा जराव्याधिनाशकस्तुवर: स्मृत:
धातुवृद्धिकर: किंचित्कटुको बलद: स्मृत:।।'' (नि.र.)

17. **बेर** (हिन्दी), *जिजीफस मोरेसियाना* (वैज्ञानिक नाम), कुल (बंगला), पादप-कुल : रेमनेसी।

फल के मांसल भाग से प्राप्त जूस का उपयोग बालों के टॉनिक के रूप में किया जाता है। इससे प्राप्त तेल का उपयोग गंजापन को दूर करने में किया जाता है।

''फेनिलं कुवलं घोटा सौवीरं बदरं महत्।
अजप्रिया कुछा कोली विषमों भयकण्टका।।'' (भा. प्र.)

18. **अंगूर** (हन्दी), *वाइटिस विनीफेरा* (वैज्ञानिक नाम), आंगुर (बंगला), पादप-कुल : वायटेसी।

फलोंका उपयोग फेसवॉश, शैम्पू, केश तेल, इत्यादि में किया जाता है। इससे एन्टी-ऐजिंग टॉनिक भी बनाया जाता है। यह बालों को सफेद होने से बचाता है। इसमें रोगाणुरोधक एवं संकोचक गुण होते हैं।

''द्राक्षर स्वादुफला प्रोक्त तथा मधुरसापि च।
मृद्वीका हारहूरा च गोस्तानी चापि कीर्तिता

19. **अड़हुल** (हिन्दी), *हिबिस्कस रोजा-साइनेन्सिस* (वैज्ञानिक नाम), जोबा (बंगला), पादप-कुल : मालवेसी।

इसके पंखुड़ियों से तेल प्राप्त किया जाता है। जिसका उपयोग रोगाणुरोधक, संकोचक और सुगन्धित पदार्थ के रूप में किया जाता है। मुहांसों के निदान में यह काफी उपयोगी है।

''जपाख्या ओण्ड्रकाख्या च रक्तपुष्पी जवा च सा।
अर्कप्रिया रक्तपुष्पी प्रातिका हरिवल्लभा।'' (रा.नि.)

वनस्पति वाणी अंक 21 : 136-138(2012)

पादप वर्गीकरण अनुसंधान में उपयोगी संदर्भ पुस्तकें व सूचना संसाधन

हेमन्त कुमार दास एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

अमेरिकन लाइब्रेरी एसोशिएशन (ए. एल. ए.) पुस्तकालय और सूचना विज्ञान शब्दकोष की परिभाषा के अनुसार ''पुस्तकालय एक संगठित ग्रन्थसूची, शारीरिक और बौद्धिक उपयोग हेतु पुस्तकालय उपयोगकर्ताओं तथा एक लक्षित समूह के लिए सूचना सामग्री का एक संग्रह है।'' सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ अपने लक्ष्य उपयोगकर्ताओं के सूचना की जरूरत पूरा करने के लिए पुस्तकालय भी अपने संग्रह के विकास की नीति और सेवाओं को बदल रहा है।

पुस्तकालय पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, शोधपत्रों, शोध ग्रंथ (थीसिस), रिपोर्ट, माइक्रोफिल्म, माइक्रोफिश, समाचार पत्रों, ऑडियो टेप, वीडियो टेप, सीडी और डीवीडी के एक सुसज्जित संग्रह है जिनका उपयोग शोधों व अन्य अध्ययनों के लिए किया जाता है। वर्तमान में इन पुस्तकालयों का ई-वर्जन जैसे सी.डी.रोम और इंटरनेट पर इनकी सदस्यता डाटाबेस उपयोगकर्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी साबित हुई है।

वैज्ञानिक अनुसंधान साहित्य का विकास दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है लेकिन पुरानी बहुमूल्य अनेक पुस्तकें आज भी विभिन्न अनुसंधानों में महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में प्रयोग की जा रही हैं और अपनी उपयोगिता साबित कर रही हैं। इन पुरानी बहुमूल्य पुस्तकों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये इनके संरक्षण के लिए इनको वेब पोर्टलों (इंटरनेट आर्काइव) जैसे बायोडाइवर्सिटी हेरिटेज लाइब्रेरी, बोटनिक्स, प्लांटलिस्ट जैसे ऑनलाइन डाटाबेसों की स्थापना हुई है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुस्तकालय और इस तरह के अन्य पुस्तकालयों में उपलब्ध पुरानी महत्वपूर्ण पुस्तकें वनस्पति शास्त्र व पादप वर्गीकरण के क्षेत्र मे कार्यरत वैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ स्रोत का कार्य कर रही हैं।

अन्य विषयों की तरह वनस्पति वर्गीकरण विज्ञान के अनुसंधान में अपने पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन की महत्ता किसी से छुपी नही है। वनस्पति वर्गीकरण विज्ञान में नई परियोजना को विकसित करने के लिए या नए अनुसंधान कार्य के लिए प्रमाणीकृत प्रकाशित शोध पत्रों, पुस्तकों का अध्ययन न केवल महत्वपूर्ण है बल्कि पूर्व में हुये कार्यो के पुनरावृति को रोकता है तथा समय व परिश्रम की बचत करता है। प्रकाशित वनस्पति साहित्य के खोज के लिए पुस्तकालय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ओपेन एक्सेस ऑनलाइन संग्रह पुस्तकालय की उपयोगिता को और भी समृद्धि प्रदान करते हैं। प्रस्तुत लेख में वनस्पति वर्गीकरण विज्ञान के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया गया है :

1. **इंडेक्स किउएंसिस :** वनस्पति वर्गीकरण अनुसंधान में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सन 1885 से रॉयल बोटेनिक गार्डन, क्यू ने 1753 के बाद प्रकाशित सभी पुष्पीय को क्रमिक रूप से 20 संस्करणों में प्रकाशित किया है। इंडेक्स कीवेन्सिस का मूल कार्य, चार्ल्स डार्विन द्वारा उपहार में दिये पैसे से हुआ था। इसकी शुरुआत आर. बी. जी. में बी डी जैक्सन उनके सहायक लिपिक के द्वारा जेडी हुकर के निर्देशन में हुई। यह पहले दो संस्करणों में प्रकाशित किया गया था। इन दो मूल संस्करणों में लगभग 400,000 पौधों के नाम हैं। बाद के संस्करणों में लगभग 6000 नाम वार्षिक दर से जुड़े। शुरुआत में (1986-1989) इंडेक्स कीवेन्सिस वार्षिक प्रकाशित किया गया। लेकिन बाद के वर्षो में यह 5 वर्ष के अंतराल पर प्रकाशित हुआ। सबसे हाल में प्रकाशित इंडेक्स कीवेन्सिस का अंक 20 है जो 1996 में प्रकाशित हुआ है। इंडेक्स कीवेन्सिस पहले पुस्तक के रूप में और सीडी-रोम संस्करणों में उपलब्ध थी पर आइ पी एन आइ का शुभारंभ होने से इसकी उपयोगिता बढ़ी है।

2. **इंडेक्स फिलिकम :** यह फर्न अथवा टेरिडोफाइटों की विश्व में पायी जाने वाली समस्त जातियों की सूची है जो कि 2 खंडों तथा 7 सप्लीमेंटों मे प्रकाशित हुई है। किसी भी पादप वर्गीकरण अनुसंधान संबंधी पुस्तकालय में इसकी उपलब्धता इसकी उपयोगिता सिद्ध कर रही है।

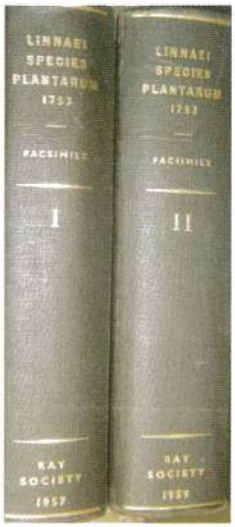

LINNAEI SPECIES PLANTARUM 1753
FACSIMILE
I
II
RAY SOCIETY

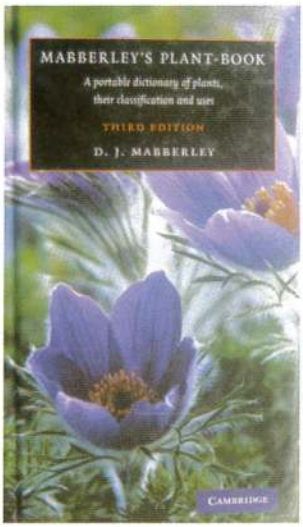

MABBERLEY'S PLANT-BOOK
A portable dictionary of plants, their classification and uses
THIRD EDITION
D. J. MABBERLEY
CAMBRIDGE

INDEX KEWENSIS
HOOKER & JACKSON
TOMUS II
K–Z
TOMUS I
A–J

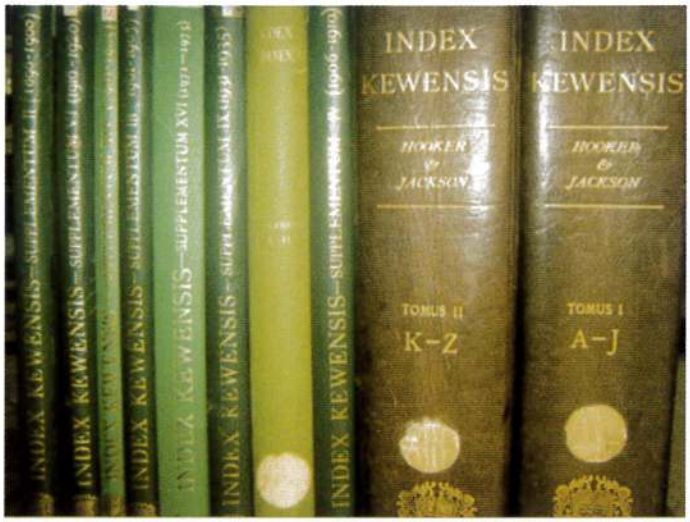

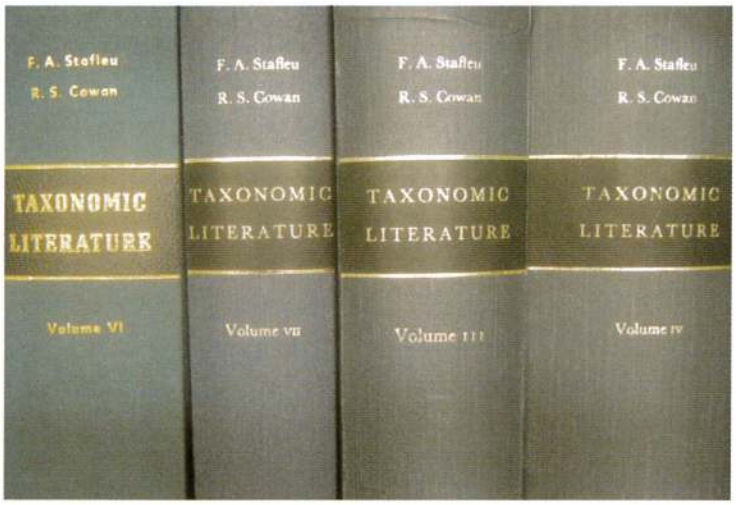

F. A. Stafleu
R. S. Cowan
TAXONOMIC LITERATURE
Volume VI
Volume VII
Volume III
Volume IV

BPH-2
Volume 1
A–M
Volume 2
N–Z
Hunt

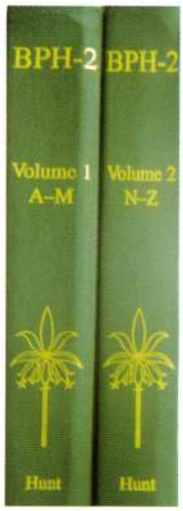

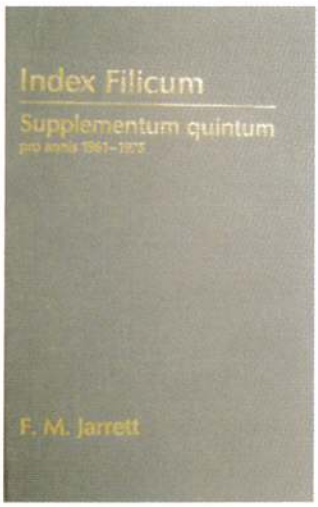

Index Filicum
Supplementum quintum
F. M. Jarrett

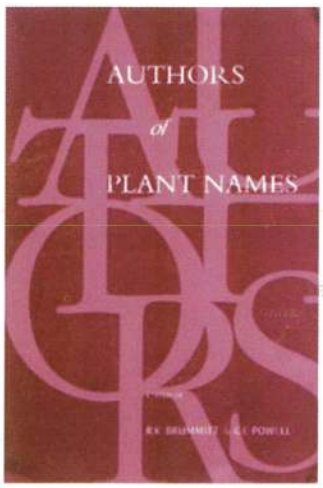

AUTHORS
of
PLANT NAMES

12
11
10
9
8
7
6
5
4
3
2
1
HORTUS MALABARICUS

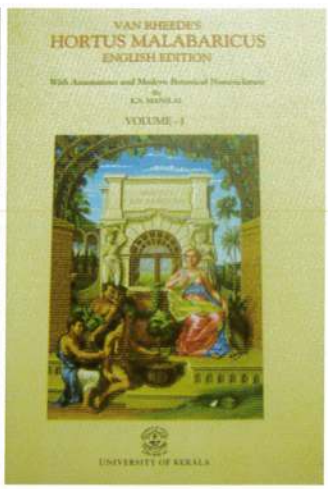

VAN RHEEDE'S
HORTUS MALABARICUS
ENGLISH EDITION
UNIVERSITY OF KERALA

3. **स्पेसीज प्लांटेरम :** यह स्वीडिश प्रकृतिवादी कार्ल लिनिअस द्वारा लिखित बहुचर्चित बहुपयोगी ग्रंथ है। स्पेसीज प्लांटेरम जो कि 2 खंडों मे 1753 में प्रकाशित हुई थी को पादप वर्गीकरण का आधार ग्रंथ माना जाता है तथा इसकी वैधानिकता स्वीकार की गई है। यहीं से द्विनाम नामकरण पद्धति का उदय हुआ जो आज सर्वमान्य है।

4. **मेबेरली प्लांट बुक :** मेबेरली प्लांट बुक अंतराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत एक आवश्यक संदर्भ पुस्तक हैं तथा लगभग 24,000 प्रविष्टियों के साथ अपनी उपयोगिता साबित कर रही है। इस पुस्तक में पादप वंशों के विश्व में वितरण स्थानीय भाषा के नामों के साथ उपयोग भी दिया हुआ है।

5. **टेक्सोनोमिक लिटरेचर (TL2) :** वनस्पति जगत के विभिन्न प्राचीन वैज्ञानिक प्रकाशनों के सही प्रकाशन दिनांक, उनके संक्षिप्तीकरण, टिप्पणियों आदि का संग्रह करने के लिये चयनात्मक गाइड है। इसकी कवरेज अंतराष्ट्रीय है यह जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच और लेटिन भाषाओं में प्रकाशित है। टेक्सोनोमिक लिटरेचर प्रिंट और ऑनलाइन दोनों संकरणों में उपलब्ध है। इसके सात संस्करण तथा आठ सप्लिमेंटस प्रकाशित हैं जो अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहे हैं। इन पुस्तकों में तथ्यों को लेखकों के अनुसार सुसज्जित किया गया है।

6. **बोटेनिकों पेरिओडिकम हंटीनम (बीपीएच) :** यह अत्यंत उपयोगी पुस्तकहै जिसका उपयोग जनरलों के नाम की एकरूपता बनाए रखने के लिये किया जाता है। इस मूल पुस्तक में जो कि 1967 में प्रकाशित हुई थी में लगभग 12,000 शोध पत्रिकाओं (जर्नलों) के शीर्षक शामिल किए गए थे। इस पुस्तक के 2004 के संस्करण में 33,000 शोध पत्रिकाओं के लिए मानक संक्षिप्तित शीर्षक सम्मिलित है। बीपीएच हर वनस्पति शोध पत्र पत्रिकाओं की संदर्भ सूची तैयार करने में पादप वैज्ञानिक, शिक्षकों, शोधार्थिओं, लाइब्रेरियन के अनुसंधान गतिविधियों में मददगार पुस्तक है।

7. **आथर्स ऑफ प्लांट नेम्स :** यह पौधे के वैज्ञानिक नाम के लेखकों का संग्रह है जिसमें पादप जगत के सभी वर्गो के लेखको के नामों का मानक नाम सम्मिलित है। यह अत्यंत उपयोगी पुस्तक है इसके उपयोग से किसी भी शोध पत्र या पुस्तक लेखन में पौधों के वैज्ञानिक नाम व लेखकों के नामों की एकरूपता बनी रहती है।

इन उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त अनेकों ऐसे संदर्भ ग्रंथ अथवा पुस्तकें जैसे वान रीड का *हार्टस मलबारीकस तथा इसका संशोधित रूप,* विलियम रॉक्सबर्ग की *फ्लोरा इंडिका,* विलियम ग्रिफिथ का *नोटूली प्लांटे एसियाटिकस,* हुकर का *फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया,* दथी का *फ्लोरा ओफ अपर गैंजेटिक प्लेन्स* तथा हेन्स की *दि बॉटनी ऑफ बिहार एंड उरीसा* आदि है जिनकी उपयोगिता किसी से छुपी नही है तथा आज भी ये भारत की वनस्पति के अध्ययन मे संदर्भ पुस्तकों के रूप मे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहे हैं।

अंतत: संदर्भ पुस्तकें और अन्य सूचना संसाधन वनस्पति विज्ञान अनुसंधान के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जब तक वनस्पति जगत पर शोध कार्य होते रहेंगे इनकी उपयोगिता बनी रहेगी।

वनस्पति जगत पर विहंगम दृष्टि

अन्वेषा गुह मजूमदार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

सदियों से वनस्पति जगत मानव के लिए रहस्य है। सारी धरती को हरा-भरा रखने वाला, सभी जीवों के लिए अनिवार्य इस महान संपदा को अच्छी तरह जानने-पहचानने की प्रबल इच्छा से कई मनीषी आजीवन अथक श्रम करते रहे। आज तक पूरे विश्वास से यह कहना कठिन है कि हमें वनस्पति जगत का सम्पूर्ण ज्ञान है।

वनस्पति जगत में विषाणु, शैवाल,कवक, शैवाक, हरितोद्भिद एवं पर्णांग (टेरिडोफाइट्स) सभी आते हैं। हमारे देश में पाये जाने वाले कवक जतियों की संख्या शैवाल जतियों की संख्या से कई गुनी है। जब कोई शैवाल जाति किसी कवक जाति से एकाकार हो जाती है तो उस नए स्वरूप को वैज्ञानिक शैवाक (Lichens) कहते हैं। हमारे देश में शैवाक जातियों की संख्या दो हजार से अधिक और विश्व में तेरह हजार से अधिक है। वैज्ञानिकों के आंकड़े बताते हैं कि विश्व में और भारत में सबसे अधिक संख्या आवृतबीजी जातियों की है। कवक जातियाँ दूसरे स्थान पर हैं।

वनस्पति जगत के रहस्य को जानने में तत्पर लोगों की श्रेणी में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिक भी हैं। इस विभाग के वैज्ञानिकों ने विगत 58 वर्षों में एक नये कुल, 34 नये वंश, 961 नयी जातियों, एवं प्रभेदों की खोज की है।

अलग-अलग श्रेणी के पौधों के जन्म की प्रणाली भी अलग-अलग है। अधिकतम पौधों का जन्म बीज से होता है। ये अन्य श्रेणी के पौधे से अधिक विकसित हैं। इन्हीं की दो श्रेणी है आवृतबीजी तथा अनावृतबीजी।

डार्विन की उक्ति 'योग्यतम की उत्तरजीविता' को चरितार्थ करते हैं पर्णांग (Fern)। जहां अन्य पौधे नहीं उगते वहां की धरती को पर्णांग ही हरियाली का आवरण देते हैं। हमारे देश में इनकी एक हजार से अधिक जातियाँ हैं। नयी जातियों की निरंतर खोज हो रही है।

अधिकांश पौधे मिट्टी में जन्म लेते हैं, कुछ पौधे पानी में जन्म लेते हैं। हरितोद्भिद के लिए जल और थल दोनों ही उपयुक्त होने से इन्हें उभयचर कहा जाता है। इनकी कुछ जातियाँ अंटार्कटिका में भी पाई गई हैं। भारत में अभी तक इनकी लगभग ढाइ हजार जातियाँ पाई गई हैं। इनकी अधिकतम व्याप्ति सिक्किम व अरूणाचल प्रदेश में हैं। इसलिए भी पूर्वोत्तर भारत की 'उत्तप्त स्थल' की मान्यता को बल मिलता है।

शैवाक ऐसी वनस्पति है जिसकी कई जातियाँ पर्यावरण प्रदूषण के प्रति संवेदनशील है और हमें पर्यावरण संरक्षण के लिए तत्पर होने का संदेश देती है। भारत में इनकी 2300 से अधिक जातियाँ हैं। अरूणाचल प्रदेश, कर्नाटक और उत्तराखंड में इनकी सर्वाधिक व्याप्ति है।

कवक में कार्बोनिक पदार्थों के विघटन की क्षमता है। यह पोषण-चक्र के लिए आवश्यक है। यह स्वयं खाद्य होने के अलावा अन्य खाद्य को भी सुरक्षित रखने में काफी मदद करता है। जीवाणुओं के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान में भी इनका उपयोग होने लगा है। अरूणाचल प्रदेश, कर्नाटक और उत्तराखंड में इसकी सर्वाधिक व्याप्ति है। शैवाल (algae) से ही संभवत: जीवों के उद्भव और विकास के रहस्य जुड़े हुए हैं। हमारे देश में इनकी 7000 से अधिक जातियाँ मुख्यत: कर्नाटक, तमिलनाडु एवं पश्चिम बंगाल में व्याप्त हैं। इनके सदुपयोग पर विभिन्न प्रयोगशालाओं में गहन शोध चल रहे हैं।

जीवाणु जैव विविधता एवं परितंत्र को प्रभावित करने वाली अदृश्य वन्य संपदा है। ये कार्बन डाइ ऑक्साइड को कार्बोनेट में बदल सकता है। निर्धारित प्रक्रिया से कार्बोनेट चूनापत्थर (लाईम स्टोन) बन जाता है।

मिट्टी में अम्ल की संतुलित मात्रा कौल्शियम, मैग्नेशियम एवं पोटाशियम की मात्रा पर निर्भर है। गहन खेती से इन खनिज पदार्थों की मात्रा कम हो जाती है, अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है। अम्ल की मात्रा बढ़ने से कैल्शियम की मात्रा घटती है। इन सबको संतुलित रखने की क्षमता सूक्ष्म जीवों में है। कैल्शियम पर अम्ल के प्रभाव को वे रोक देते हैं। मध्य प्रदेश, तमिलनाडु एवं उत्तर प्रदेश में इसकी सर्वाधिक व्याप्ति की जानकारी है।

वनस्पति वाणी अंक 21 : 140-141(2012)

सैनिकों के लिए वानस्पतिक औषधियां

संजीव कुमार एवं आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

विश्व ने बहुत बड़ी बड़ी लड़ाइयां देखी है। ग्रीकों का पर्शियन के विरूद्ध एथेन्स और स्पार्टा की लड़ाई, अरबों का स्पेन के विरूद्ध लड़ाई, बेथलहम की लड़ाई इत्यादि। इसी तरह भारतीय इतिहास को देखें तो सैंकड़ो लड़ाइयों की भरमार है। विदेशियों ने बार बार भारत पर आक्रमण किया और इसे रक्तरंजित किया। कलिंग का युद्ध, अरबों का भारत पर आक्रमण, हूणों का आक्रमण, पानीपत की तीन लड़ाइयां, हल्दीघाटी का लड़ाई, पाकिस्तान व चीन द्वारा भारत पर आक्रमण। इन लड़ाइयों में सैंकड़ो सैनिकों के साथ आम नागरिक भी मारे जाते हैं। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण विषय है कि इन लड़ाईयों के दौरान असंख्य सैनिक व नागरिक आहत भी हो जाते थे। 1854 में तुर्की और रूस के मध्य क्रिमिया का युद्ध चल रहा था। ब्रिटेन ने तुर्की का पक्ष लिया था। इस युद्ध में भी दवाईयों के अभाव के चलते बहुत सैनिकों की मृत्यु हुई थी। ईश्वर की कृपा से फ्लोरेन्स नाइटेंगल ने जिसे 'द लेडी विद द लैंप' कहा जाता है, सैनिकों की भरपूर सेवा की थी। फ्लोरेन्स ने सैनिक अस्पतालों में महिलाओं को नर्स के रूप में प्रवेश करवाया। ये नर्स आहत सैनिकों हेतु दवा से लेकर खान पान तक का ख्याल रखती थी। इटली के द्वितीय स्वतंत्रता युद्ध जो सोल्फेरिनो युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है, एक स्विस नागरिक हेनरी डुनान्ट, आहत सैनिकों के शोचनीय दुर्दशा और विभीषिका को देखकर भयभीत हो गए ओर रेड क्रॉस की स्थापना की। इस युद्ध में प्राय: चालीस हजार सैनिक मारे गये एवं जख्मी हो गए थे। उन्होंने जेनेवा सम्मेलन का रास्ता प्रशस्त किया। जो सैनिकों के कल्याण के बारे में सोचता है।

बहुत पहले अस्पतालों की स्थिति बिल्कुल अच्छी नहीं थी। सैनिक अस्पतालों की स्थिति तो और बदतर थी। घायल सैनिक संक्रमण के कारण मर जाते थे। अंग कट जाने या चोटग्रस्त होने की दशा में संक्रमण के कारण सैनिक मारे जाते थे। ऐसी स्थिति में वानस्पतिक औषधियों के सिवा कोई चारा नहीं था। एलोपेथी दवाईयों का प्रचलन बहुत बाद में हुआ। एलोपेथी की गलत दवा मनुष्य की जान ले सकती है। इसका साइड इफेक्ट होता है। अमेरिका के तीन राष्ट्रपति जॉर्ज वशिंगटन, हेरिसन व टेलर ऐलोपेथी की गलत दवा से मारे गए थे। सैनिकों को संक्रमण से बचाने के लिए चीनी का उपयोग किया जाता था। संक्रमित और दुर्गन्धयुक्त घाव के लिए चीनी को बहुत प्रभावकारी बताया जाता है क्योंकि चीनी विशाक्त नहीं होती है। सैनिकों के कटे स्थान के उपचार के लिए चीनी एवं शहद फायदेमंद है। शहद जीवाणु मुक्त गुणों के लिये जाना जाता है। मिश्र के लोग भी घाव के उपचार के लिए शहद लगाते थे। मिश्रवासी वानस्पतिक औषधि के उपयोग में काफी उन्नत थे। वे मरे व्यक्ति का 'ममी' बनाने के लिए उसके देह को कीटाणु रहित करने के लिए ताड़ की मदिरा से धोते थे। परन्तु रक्त निकलते समय जख्म में चीनी नही देना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि राजपूत सैनिकों को अफीम दिया जाता ता। अतिसार होने की स्थिति में सैनिकों को अफीम दिया जाता था। वे फलों पर अधिक जोर देते थे। पहले की लड़ाइयों के दौरान सैनिक चेचक व कन्फोड़ा से पीड़ित हो जाते थे। स्नेकरूट, पार्टरिजबेरी, चमेलिया, ट्यूलिप एवं ओक वृक्ष की छाल से सैनिकों का उपचार किया जाता था। कई मामलों में सिनकोना का भी उपयोग किया जाता था। सैनिकों को अतिसार होने पर 'ब्लू मास' उपचार हेतु दिया जाता था। प्राय: सभी संक्रामित रोगों के लिए सैनिकों को अंगूरशेफा, पोकवीड जैसी वानस्पतिक दवाईयां दी जाती थी। प्राचीन ग्रीकवासी अपने सैनिकों के उपचार के लिए सौंफ, तेज पत्ता, खीरा का मूल, श्वेत जीरा, लोबान, शहद, जैतून का तेल, अफीम का उपयोग करते थे। ग्रीक योद्धा हेनिबल ने इटली के आक्रमण के दौरान आल्पस पर्वत लांघते समय सिरका का उपयोग किया था। ग्रीक सैनिक अपने घावों के उपचार के लिए एक मलहम लगाते थे जो गन्धरस व जैतून के तेल से बनता था। सहस्त्रपानी नामक फूल सैनिकों के लिए काफी उपयोगी है। 3,000 वर्ष पूर्व भी प्राचीन ग्रीक वासी इसका उपयोग करते थे। ग्रीक सैनिक इस फूल को 'सोलजर फ्लावर' कहते थे। सैनिकों के बाहरी घावों को भरने में यह फूल काफी उपयोगी है। रक्त बहाव को रोकने में इसके फूल व पत्तों का सक्रियरूप से उपयोग किया जाता था। उदर संबंधी बीमारियों के लिए भी सैनिक इसका उपयोग करते थे। इसके फूल व पत्तों को सीधे-सीधे खाते थे या इसे उबाल कर चाय के रूप में भी सेवन करते थे। यह चर्म रोगों के लिए फायदेमंद है।

सैनिकों के उपचार में सिरका का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। यह मानवजाति के लिए उपहार है। यह प्राकृतिक उत्पाद है। यह सेब, अंगूर, खजूर, चावल व चीनी से बनाया जाता है। सिरका सैनिकों के दैनन्दिन के काम आता है। इसका सेवन सैनिकों को ताकतकर व

उर्जावान बनाये रखता है। रोम के सैनिक इस पेय को 'पोरका' कहते थे। सिरका रोगाणुरोधक होने के नाते घावों में प्रलेप किया जाता था जिससे सैनिकों का घाव संक्रमित न हो व साफ सुथरा रहे व घाव जल्द भर जाए। अमेरिका के गृह युद्ध व प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सेब के सिरके का उपयोग किया था। फ्रांन्स के लूइस XIII ने अपने गरम तोपों को ठंडा करने हेतु सिरका का सहारा लिया था।

बारूद से होने वाले घावों पर हर्बल औषधियों का ठोस योगदान है। अंडा, गुलाब का अर्क एवं तारपिन के तेल का मिश्रण बारूद से होने वाले घाव के उपचार के लिए किया जाता था। अमरीकी गृह युद्ध के दौरान कैलेन्डुला फूल का उपयोग रक्त बहाव को रोकने के लिए किया जाता था। रोमन सैनिक चमेली का फूल आहत स्थान में लगाने के लिए अपने साथ जाते थे।

आदिवासी लोग अपने तीर में तीलचट्टे के लार्वा से बने विष को लगाते थे। जार्वा आदिवासी तीर में विष के रूप में अपना थूक लगाते थे। राजेन्द्र चोल के समय में युद्ध के दौरान पैर कट जाने की स्थिति में कृत्रिम पैर का प्रबंध था। सम्राट अकबर ने भी शाकाहारी भोजनों पर जोर दिया। वे फलों पर जोर देते थे। राणा प्रताप ने भी कठिन समय में जंगलो में रहते समय जंगली फल व घास की रोटी खाकर बिताया। कई बार तो वह भी नसीब नहीं होता था। इसलिए आज भी राजपूत राणा प्रताप के सम्मान में सोते समय अपने बिस्तर के नीचे घास का टुकड़ा रखते हैं।

उंचे अक्षाशों में लड़ते समय प्रतिकूल मौसम का सामना करना पड़ता है। बर्फीली हवाओं के थपेड़ों से बचने के लिए घृत कुमारी से एक क्रीम तैयार किया गया है जो सैनिकों के शरीर को बर्फीली हवाओं के चलते होने वाले घावों से रक्षा करती है। भारतीय सैनिकों के लिए 15 जड़ी-बूटियों का समावेश कर एक 'हर्बल पेय' तैयार किया गया है जो ऊंचे अक्षांशों में तैनात सैनिकों को स्वस्थ रखने में कारगर साबित होगी। भारतीय सैन्य विज्ञान ने मिर्च (केप्सिकम) के जरिए एक गोला तैयार किया है जो भारतीय फौजों के लिए बहुत उपयोगी होगा। इसे अश्रु गैस के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। महिलाएं भी इसे अपनी आत्मरक्षा में रख सकती है. यह मिर्च पूर्वोत्तर में उगाया जाता है एवं उदर संबंधी समस्याओं में उपयोगी हैं। चिलचिलाती धूप से निरापद रहने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

हमारे वैज्ञानिकों ने परमाणु-विकिरण के उपचार के लिए तुलसी का सहारा लिया। तुलसी के पत्तों में एक प्रकार का औषधीय गुण होता है जो परमाणु-विकिरण से क्षत हुए कोशिकाओं की मरम्मत कर देते हैं। समुद्री झड़बेरी व पितपापड़ा में ऐसे औषधीय गुण होते है जिसे परमाणु-विकिरण से आहत सैनिकों का उपचार किया जा सकता है। मूलत: झड़बेरी त्वचा व पाचन प्रणाली के उपचार के लिये बहुत उपयोगी है। ग्रीक लोग इसके पत्तों को घोड़ों को खिलाते थे इसका वानस्पतिक नाम *'हिप्पोफ़ी'* जिसका अर्थ है 'चमकता घोड़ा'। परमाणु विकिरण के उपचार में 'पितपापड़ा' उपयोगी है। यह पैर या पैर के नीचे होने वाले त्वचा के रोग का उपचार कर सकता है। 'पोडोफाइलम हेक्सेंड्रम' परमाणु विकिरण का उपचार करता है। यह एक बहुपयोगी पौधा है। प्राचीन समय में इसे 'ईश्वरीय औषधि' कहा जाता था। क्योंकि इससे बहुत से रोगों का इलाज किया जा सकता है। सैनिक अपने तैनाती के दौरान खाने के अन्य पदार्थो के साथ-साथ सूर्यमुखी व लौकी का बीज साथ रखते है क्योंकि सूर्यमुखी के बीज में मैगनीशियम, पोटेशियम व भरपूर मात्रा में विटामिन-ई होता है। सूर्यमुखी का बीज हृदय के लिए भी गुणकारक है। लौकी व सीताफल के बीज भी अतिगुणकारी है इसलिए सैनिकों के 'फुड पैकेज' में इन्हें स्थान दिया गया है। फूड पैकेज में मकई को भी स्थान दिया गया है। स्थल और नौ सेना में योगासन को स्थान दिया गया है। योगसन सैनिकों के शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य को तदंरूस्त रखेगा। योग आयुर्वेदिक विज्ञान की शाखा है। इस प्रकार हमनें पाया कि वानस्पतिक औषधियां हमारे सैनिकों के लिए अति महत्वपूर्ण व उपयोगी है। एलोपेथिक के इस युग में भी हम इसको नकार नहीं सकते।

प्रोफेसर टी. वी. देसिकाचारी : प्रख्यात शैवालविद्

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

प्रोफेसर तामारपु वेदांत देसिकाचारी का जन्म 18 सितम्बर 1919 को तिरुपति में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा तिरुपति में हुई। इन्होंने सन 1940 में प्रेसीडेंसी कॉलेज, मद्रास से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। वे एम. ओ. पी. अयंगर के साथ वनस्पति विज्ञान प्रयोगशाला मद्रास से जुड़ गए। सन् 1944 तथा 1951 में उन्होंने क्रमश: स्नातकोत्तर एवं डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उन्होने डाक्टरेट प्रो. एम. ओ. पी. आयंगर के मार्गदर्शन में किया। उनका शोध कार्य नील-हरित शैवाल के वर्गीकरण पर आधारित है। विभिन्न पदों पर सुशोभित हो वे उसकी गरिमा को बढ़ाते रहे। पथियप्पा कॉलेज में सहायक प्रोफेसर, 1945-1947 में मद्रास में कनिष्ठ व्याख्याता तथा 1951-1957 में सौगार विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर आसीन रहे। इसी दौरान इन्होंने बर्कले विश्वविद्यालय कैलिफोर्निया में प्रो. जी. एफ. पेपेनफस के साथ लाल शैवाल पर अनुसंधान किया।

उन्होंने पेरिस स्थित अपुष्पीय संग्रहालय में काम करने के दौरान दो महीने तक डायटम पर शोध किया। साथ ही साथ इंडोनेशिया, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया का दौरा कर समुद्री शैवाल का संग्रह किया। 1957 में वे पुन: मद्रास विश्वविद्यालय में सम्मिलित हुए। वर्ष 1963 में उन्हें इस विश्वविद्यालय से डी. एससी की उपाधि मिली। जुलाई-अगस्त (1964) में वे एडिनबर्ग इंटरनेशनल बॉटनिकल कांग्रेस में नील-हरित शैवाल के वर्गीकरण संगोष्ठी के अध्यक्ष थे। इस दौरे ने उन्हें बुलंदियों पर पहुँचा दिया जिसके परिणामस्वरूप वे प्रोफेसर के पद पर 1975 तक बने रहे। ब्रिटिश काउंसिल, यू. जी. सी. मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रायोजित अनुसंधान कार्यक्रम में भाग लेने संयुक्त राष्ट्र का दौरा किया। 1969 से 1974 के दौरान उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी और प्रायोजित अनुसंधान में भाग लिया, जिसमें ब्रिटिश संग्रहालय और पेरिस भी संबद्ध थे। आई. एन. एस. ए./रॉयल सोसाइटी फेलो के रूप में अनुसंधान कार्य को पूरा करने के लिए दुबारा ब्रिटिश संग्रहालय का दौरा किया। उन्होंने एमेरिटस प्रोफेसर के रूप में भी मद्रास विश्वविद्यालय में काम किया। 1956 एवं 1966 ई. में वे क्रमश: भारतीय विज्ञान अकादमी और भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के फाइकोलॉजिकल सोसाइटी के भी फेलो रहे। वे जरनल के सम्पादक भी रहे। आगे भी संपादकीय सदस्य के रूप में उन्होंने अपना कार्य जारी रखा। वे फाइकोलाजिकल सोसाइटी के उपाध्यक्ष, फाइकोलॉजिया और हाइड्रोबॉयलोजिया के संपादकीय बोर्ड के सदस्य भी रहे। 1959 ई. में. उन्हें मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा सी. वी. रमन पदक, तथा प्रो. वी. पुरी स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया।

वे अनेक विश्वविद्यालयों से भी जुड़े हुए थे। 1969 और 1974 ई. में मद्रास विश्वविद्यालय में दो संगोष्ठियों का आयोजन कर उन्होंने शैवालविदों को जोड़ने का काम किया। उन्होंने अनेक शोधपत्रों और स्वयं संपादित पुस्तकों का प्रकाशन किया। एक मोनोग्राफ सायनोफाइट (1959 आई. सी. ए. आर.), नील-हरित शैवाल का वर्गीकरण (1972 मद्रास विश्वविद्यालय), समुद्री पौधे (1975 सी. ई. आर. टी.), वालवोकेल्स (1980 आई. सी. ए. आर. अयंगर संयुक्त रूप से), रोडोफाइटा (बालाकृष्णन एवं कृष्णमूर्ति के साथ), एटलस ऑफ इंडियन डायटम पाँच खंडों में अपने सहकर्मियों के साथ प्रकाशित किया।

अयंगर की बहुत बड़ी संख्या में अप्रकाशित सामग्री उनकी इच्छानुसार देसिकाचारी ने प्रकाशित किया। उसके पश्चात् उन्होंने 'साइफोनेल्स' पर विनिबंध प्रकाशित किया और समुद्री शैवाल पर लिखे जानेवाले विनिबंध के कार्यकारी अध्यक्ष बने।

1959 ई. में मान्ट्रियल वानस्पतिक कांग्रेस में एक संगोष्ठी का आयोजन किया। उनकी दिलचस्पी जीवित और जीवाश्म डायटम के अध्ययन में थी। उन्होंने सुंदरलिंगम के साथ फाइलोजेनी और कारोफाइट्स में अन्तर्संबंध की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने कई वर्ग और कुल के साथ ही साथ कई वंशों को भी स्थापित किया। *अयंगरियेला, मैसटिगोक्लेडोपसिस, अयंगरियोमोनास पेपेनफ्यूसियोमोनास, मैनटोनिएला, रोसिएला, नियोफ्रेजिलेरिया, क्वाडरीडिसकस, पिन्नुलेरियोसिगमा*।

उनकी मृत्यु 4 नवम्बर 2005 को मेलबॉर्न, आस्ट्रेलिया में हुई। आज भी उनके द्वारा संग्रह किए गए शैवाल, छायाचित्र, रेखाचित्र मद्रास विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग में सुरक्षित हैं। इस महान विभूति के योगदान शोधकर्ताओं, शिक्षकों और प्रकृतिविद् के लिए सदियों तक प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

वनस्पति वाणी अंक 21 : 143-145(2012)

वे वैज्ञानिक विभूतियां अमर रहें

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

वे वैज्ञानिक विभूतियां अमर रहें, जग लाभान्वित, देश, समाज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

आर्यभट्ट, पाणिनि, ब्रह्मगुप्त, भाष्कर, वैदिक युगीन गणितज्ञ महान रहे।
पाइथागोरस, श्रीधर, वाराहमिहिर, राधाकृष्णन्, रामानुजम् विद्वान रहे।।
बीजक, अंक, नक्षत्र, ज्यामितीय, ज्ञानी, वैज्ञानिक,ऋषिराज भी हैं।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

अरस्तु, शुश्रुत, चरक, पतंजलि, दर्शन, औषधि, योग का ज्ञान दिया।
वनस्पतिज्ञ लीनियस, रॉक्सबर्ग, लुई पाश्चर सूक्ष्मजीव विज्ञान दिया।।
डार्विन प्रकृति, प्राणी विज्ञानी, मेंण्डल की अनुवांशिकी आज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

आईन्स्टीन ने भौतिक विज्ञान दिया, न्यूटन ने गुरुत्व, बल, घर्षण है।
मैरी, क्यूरी की खोज रेडियम, *सी. वी. रमन* प्रभाव विलक्षण है।।
पदार्थो की बनावट, गुण, रंग, स्वाद, खोजों का अजब अन्दाज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

है वैज्ञानिक बन्धुओं की अजब खोज, आकाश में उड़ता वायुयान।
आर्विल, विल्वर राइट के शोध से, आकाशीय भ्रमण हुआ आसान।।
यों बिना प्राण उड़ रही मशीनें, जहां वायु मार्ग अविभाज्य भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

वे वैज्ञानिक थे *फ्रैंन्कलीन, फैराडे,* विद्युत प्रवाह का आविष्कार किया.
किया बल्ब का आविष्कार *एडिसन* ने चमत्कारों से दूर अन्धकार किया..
यों विज्ञान प्रगति की ज्योति जली, दुनियां को उन पर नाज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

मार्कोनी ने रेडियो, वॉयरलेस खोजा, *गैलीलियो* ने खोजी दूरबीन।
ग्राहम बेल की खोज है दूरभाष, *लोगीबेयर्ड* की खोज टी.वी. रंगीन।।
बैबेज ने खोज किया कम्पूटर, जो हर घर पर करता राज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

जॉर्ज ईस्टमैन ने खोजा फिल्म, कैमरा, छायाचित्रों की शुरुआत हुई।
लुईले प्रिन्स ने खोज किया सिनेमा, चलचित्रों से मुलाकात हुई।।
जहाँ हँसते, गाते, बोलते चित्र, संगीतों की मधुर आवाज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

भाप शक्ति से चालित इंजन का, *जॉर्ज स्टीफेन्सन* ने आकार दिया।
जेम्स वॉट, न्यूकमेन, ट्रैविथिक ने, रेल इंजन में बड़ा सुधार किया।।
बहुउद्देश्यीय प्रगति हुई रेलों की, व्यवस्थित विस्तृत साम्राज्य भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

मैकमिलन ने खोज किया साइकिल, *रोन्टेजन* ने एक्स-रे मशीन।
थिमोनियर ने खोजी सिलाई मशीन, *कार्लसन* ने जिरोंक्स मशीन।।
फारसिच ने खोज किया ट्रैक्टर, विधिवत करता कृषि काज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

सी. शोल्ज ने खोजा टंकण मशीन को, *पाटेक फिलिप्प* ने हाथ घड़ी।
जॉन गुटेनबर्ग ने खोजा छापाखाना, शिक्षा, विकास ने गति पकड़ी।।
वाटरमैन की खोज फाउन्टेन पेन, जो दुनियां का सरताज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वे:ण से जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

अल्फ्रेड नोबल की खोज डाइनामाइट, जॉन वाकर की दियासलाई।
ओपेन हीमर की खोज परमाणु बम, सहमी दुनियां धरती थर्राई।।
विश्व शान्ति प्रति बना रुकावट, जग जनगण को एतराज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

पॉल मूलर ने खोज की डी.डी.टी., *अल्फांस लैवर्न* ने मलेरिया रोग।
मुनि आत्रेय ने आयुर्वेद खोज की, *मुनि वृदुकुंट* ने खोजा सिद्धियोग।।
लुई पाश्चर खोजा टीका रैबीज, जो विषाणु इलाज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

फॉरेनहाइट ने खोजा थर्मामीटर, अस्वस्थ शरीर का ताप जांचने को।
फोर्न्स ने स्टेथोस्कोप खोजा, हृदय, फेफड़े की ध्वनियां मापने को।।
फ्लेमिंग की खोज की पेनीसिलीन, चिकित्सकीय वरदान आज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

इन्डर्स, पेबिल्स की खोज खसरा टीका, उन्मूलन प्रयास पर्याप्त करें।
जॉन सॉल्क की खोज पोलियो टीका, पोलियो जड़ से समाप्त करें।।
औषधियां, मशीनरी सुविधायें, आधुनिक चिकित्सा का साज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

कब, क्या, कहॉ, कौन, क्यों कैसे, इन शब्दों से बनें, सवाल अनेक।
करें समाधान वैज्ञानिक विधियां, जहां निश्चय, जिज्ञासा, ज्ञान, विवेक।।
विज्ञान जगत की हर अबूझ पहेली, वैज्ञानिक खोज का ताज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

शिक्षा, शिक्षक, शिक्षण के योग से, चलें शिक्षित समाज निर्माण करें।
कोई बनें चिकित्सक, विद्वान, वैज्ञानिक, कोई प्रहरी बन कल्याण करें।।
भरें जन-मन में नया जोश जागरण, शिक्षा स्वयं की लाज भी है।
निज शोध, खोज, अन्वेषण से, जो इतिहास रचा, वह आज भी है।।

ये कैसी सन्तान ?

प्रसाद म. पाध्ये
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

दवा के नाम पर अब
बिक रहे हैं मर्ज कई
तरक्की की कीमत चुका रहे हैं फर्ज कई।।

आबोदाना इस धरती का
बिलख – बिलखकर रोता है
मिला दिये इसके बीजो में
इन्सानों ने क्यों जहर कई ?

जंगल–नदियों का सौदा कर
पर्वत को भी चूर किया
गिरवी रखकर धरती की हरियाली
बना रहा अब महल कई।।

होड़ लगी है आकाशों मे
छेद रहा उसका भी दामन
बरस रहे हैं उन छेदों से
कयामत ढाते अस्त्र कई।।

सबसे लायक संतानों को धरती ने
''मानव'' कहकर नाम दिया
मिटा रहा है उस माँ की हस्ती
जिसने दिये थे कर्ज कई।।

वृक्ष और मैं

संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

जब मैंने आंखें खोली तुम्हें करीब पाया था।
दायी मां ने लकड़ी के पालने में सुलाया था।
मां ने लोरी सुना, खटिया पर सुलाया था।
मेरे रोने पर लकड़ी के झुनझुने ने हंसाया था।
पाये-पाये चलना भी तू ने ही सिखाया था (गड़ीलना)।।

शिक्षा भी पायी तुम्हारी ही गोद में (कुर्सी, मेज)।
खेलकूद, दौड़ भाग की तुम्हारे ही आंचल में (बैट-बल्ला)।
अपनी क्षुधा भी बुझायी तुम्हीं को झोंक चूल्हें में।
आज बैठा हूं कम्पूटर आपरेटर बन के तुम्हारी ही बाहों में।

जीवन संगिनी पायी तुम्हारी अग्नि के संग।
फिर पुत्र रत्न भी पाया तुम्हारी ही कृपा से (दवाईयां)।
अब रिटायर होकर भी तुम्हारे ही सहारे चल पा रहा हूं (छड़ी)।
वरदान है तुम्हारा जो पुत्र-पौत्रों के संग जीवन हंस के गुजार रहा हूं।

जब मैंने आंखे खोली तुम्हें करीब पाया था।

हे! दोस्त अब मैं थक चुका हूं, टूट चुका हूं
और तुम्हारी दुर्दशा भी देख चुका हूं
हे दोस्त तुम्हारा अहसान, कभी नही उतार पाउंगा।
और मृत्यु से पहले, एक नहीं हजार वृक्ष लगाउंगा।

दोस्त, फिर भी मेरी एक अंतिम इच्छा है,

जहां भी अन्तिम सांस लूं, तुम्हारी छांव में लूं।
और मृत्यु से पहले तुम्हें मुस्कुराता देख सकूं।

वृक्ष बचाएँ – बनें अच्छे इंसान

महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया एवं एस. के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

वृक्ष तो अनमोल है, उसको बचा के रखिये।
बेकार मत कीजिये इसे, जीने का तरीका सीखिए।।

वृक्ष को तरसते हैं, धरती पे काफी लोग यहाँ।
वृक्ष ही तो दौलत है, वृक्ष सा धन भला कहाँ।।

वृक्ष ही तो जीवन है, वृक्ष है गुणों की खान।
वृक्ष ही तो सब कुछ है, वृक्ष है पर्यावरण की शान।।

वृक्ष को न बचाया गया तो, वो दिन जल्दी ही आएगा।
जब धरती पे हर इंसान, बस वृक्ष–वृक्ष चिल्लाएगा।।

पैसे रूपये धन, कुछ भी काम न आएगा।
यदि इंसान इसी तरह, धरती को खोद के खाएगा।।

आने वाले भविष्य का, कुछ तो हम करें ख्याल।
वृक्ष के बगैर भविष्य, भला कैसे होगा खुशहाल।।

बच्चे, बूढ़े और जवान, वृक्ष बचाएँ–बने अच्छे इंसान।
अब तो उठ जाओ इंसान, वृक्षों में बसते हैं प्राण।।

मैं अब भी बहती रहती हूं....

संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ
कितने ही कष्ट दे दे मुझको, सदा पुत्र-पुत्र मैं कहती हूँ
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
पितृ तारण को मुझे भगीरथ ने धरा पर लाया था
नष्ट न हो ये धरा, यथा जल मेरा शिव जटा में समाया था
कैसे भूला गुण तू मेरे, सदा सोचती रहती हूँ
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
पाप नाशिनी, पितृतारिणी, माँ कहके सम्बोधित किया
फिर जल को अछूता बना, ये कृत्य तूने क्यों है किया
आज नहीं तो कल सुधरेगा इसलिए कल-कल करती रहती हूँ।
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
स्वर्ग विचरण की अनुभूति होवे है, जब माँ कहके तू पुकारे है।
ठहरे जल में जब कभी, आसमां खुद को निहारे है।
पर झीलों पर झील बनी इतनी, ठहरी के अब बहती नहीं
बस सरकती रहती हूँ।
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
सुरसरि जब मेरा परिचय था मैं चपल वेग से चलती थी
अविरल अविराम वेग से हिम शिखरों को चीर मचलती थी
अब तो तेरे बनाये बिलों से ही, रो-रोकर गुजरती रहती हूँ
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
मेरे संरक्षण हेतु आज तुमको कुछ करना ही होगा
मेरी करूण पुकार सुन जब तक हाथ तेरा न खड़ा होगा
क्षण-क्षण प्रतिक्षण इसी आशा पर हर घाट ठहरती रहती हूँ
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
सरस सलिल पावन पवित्र, जल था कभी अब है वो गंदा
वाहक बनकर रह गई आज क्या गंगा और क्या अलकनंदा
समदर्शी बनकर सभी खेतों के सिंचन करती रहती हूँ
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
होगी प्रलय बंजर धरा, जब अस्तित्व मेरा न यहाँ होगा
मेरे जल कण-कण को तरसेगा, तू जब जहाँ-जहाँ होगा
एक माँ हूं कवयित्री नहीं बस यूँ ही गुनगुनाती मैं रहती हूँ
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।
कितने ही कष्ट दे दे मुझको, सदा पुत्र-पुत्र मैं कहती हूँ।
लेकर तेरे पापों का दरिया, मैं अब भी बहती रहती हूँ।

संरक्षित करो इन पेड़ पौधों को

महेन्द्र कुमार सिंघाड़िया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पेड़-पौधे में भी जान वही है,
जो है जीव जंतु व पशु पक्षी के अन्दर।
हरे भरे जो पेड़ पौधे रहेंगे,
संसार होगा अति सुन्दर।
रखो सुरक्षित इन वन्यजीवों को,

संरक्षित करो इन पेड़-पौधों को।
लेकर वायुमंडल से कार्बन डाई ऑक्साईड,
दूर प्रदूषण ये करते हैं।
प्राण वायु देकर हम सब को,
जीवित ये रखते हैं।
है लाभ दोनो पक्षों को,
संरक्षित करो इन पेड़-पौधों को।

खुलकर सेवा करते हैं,
हम सबके लिए फलते, फूलते हैं।
कितने फल-फूल पैदा करते हैं,
पर ध्यान हमारा ही रखते हैं।
भूल नहीं सकते इनके अहसानों को,
संरक्षित करो इन पेड़-पौधों को।

वर्षा का पानी भी इनसे ही बनता,
वरना नष्ट हो जाता सारा जल।
करें आज संरक्षण का वादा,
क्योंकि आता नहीं दुबारा कल।
न भूलें अपने कर्त्तव्य को,
संरक्षित करो इन पेड़-पौधों को।

वन मूर्छित सहमी सी नदियाँ

संदीप चौहान एवं कुलदीप डोगरा
भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान, नोएडा

वन घायल है डरी सी नदियाँ
बेचैनी से भरी हैं नदियाँ
कहाँ गई वो परी सी नदियाँ
भारी भरकम उधर हैं गायब
इधर लुप्त छरहरी सी नदियाँ
प्राणी जिससे जल पीते थे
कहाँ गई तश्तरी सी नदियाँ
सभ्य कहे जाने वालों ने
खोटी कर दी खरी सी नदियां
जख्मी जंगल पुकारते हैं
मरहम से फिटकिरी सी नदियाँ
अब भी कोशिश करें अगर हम
जीवित होंगी मरी सी नदियाँ

सच्चा दोस्त पेड़ हमारा

सुरेश रघुनाथ पित्रे
वैद्य सदन, राघोबा शंकर रोड, चेंदनी, ठाणे
Email ID-enquiryhindi@gmail.com

बढ़ गया जगत् का तापमान। बिगड़ गया सृष्टि का आनबान।
पर्यावरण का रखो ध्यान।।1।।
पेड़ पौधों को तोड़ना। बिना जड़ पौधों को पूजना।
वन सम्पति को लूटना। यह है महा पाप ।।2।।
पेड़ पौधे मत तोड़ो। गलत परंपरा मत जोड़ो।
शाखाएं वटवृक्ष की मत तोड़ो।।3।।

सच्चा दोस्त पेड़ हमारा। पौधा यह बहुत प्यारा।
चित्र पेड़ का तुम यह हरा। पूजा के लिए रखो।।4।।
बीज धरती में बोया करो। एक दो पौधा लगाया करो।
पेड़ का दिलोजान से जतन करो। भावी पीढी के लिए।।5।।
पेड़ उपकार करता है बड़ा। पेड़ काटने चोर खड़ा।
पाप यह करता बड़ा। चन्दन पेड़ काटनेका।।6।।

नहीं चाहिये छोटे पेड़। नहीं चाहिये बोन्साई पेड़
बिना झरने मरते हैं पेड़। अकाल आता है।।7।।
पेड़ अपनी जान गवाता है। मानव को सर्वस्व देता है।
आदमी नमकहराम बनता है। काटता है पेड़ को।।8।।
मीठे फल मिलते पेड़ों से। सुगन्ध महकती है फूलों से।
मधुमक्खी चूसे मकरंद। शहद मिले फूलों से।।9।।

दवाई पत्तों से बनती है। शुद्ध हवा पेड़ से मिलती है।
ठंडी छांव भी मिलती है। पशु, पक्षी, मनुष्य को।।10।।
तुम जानो पेड़ का मूल्य। कल्पतरु पेड़ अमृततुल्य।
प्राणवायु देता है अमूल्य। सभी जीवों के लिए।।11।।
क्या तुम पेड़ को काटोगे। भविष्य अपना बरबाद करोगे।
या फिर पौधे लगाओगे। उज्ज्वल भविष्य के लिए।।12।।

पानी है जीवन

सुरेश रघुनाथ पित्रे
वैद्य सदन, राघोबा शंकर रोड, चेंदनी, ठाणे
Email ID-enquiryhindi@gmail.com

बूंद-बूंद जतन करो। बूंद-बूंद से तालाब भरो।
तालाब स्वच्छ साफ करो। पानी है अनमोल ।।1।।
बहता पानी तुम रोको। बात यही बोलो सबको।
हर एक जन आदमी को। पानी रोज चाहिए।।2।।
शहर में तालाब बान्धों। तालाब में पानी छोड़ो।
छत को पानी से भर दो। शहरी इमारतों में।।3।।
कुँवे में कचरा मत फेको। जो फेके उसको रोको।
जल बहाव रुकने ना दो। हमारा है यही लक्ष्य।।4।।
जल संपत्ति को बचाओगे। कुँवे का पानी पिओगे।
रोज पानी वापरोगे। तब होगी जलशुद्धि।।5।।
रुक गया झरना पानी का। समझो अंत है जीवन का।
सोच यह जो समझ सका। वही तो है इन्सान।।6।।
पानी प्रयोग करो सम्भाल के। सबको समझाओ घर जाके।
पानी मिले घर-घर सबको। इस कारण हेतु।।7।।
मत फेको बूंद भर भी पानी। अकारण खर्च ना करो पानी।
जमा करो बूंद बूंद पानी। पानी है जीवन।।8।।
पानी से प्यास बुझती है। पानी से खेती उगती है।
अनाज से भूख मिटती है। सभी प्राणी मात्र जन की।।9।।
पेड़ों के लिए पौधा लगाओगे। पौधे को पानी पिलाओगे।
पौधे से पेड़ बनाओगे। तो छांव मिलेगी सबको।।10।।
बार-बार बीज बो एजा। वन सम्पत्ति बढाए जा।
जल सम्पत्ति पाए जा। मिले सबको प्राणवायु।।11।।
हमको बचाना है पानी। जतन करना है पानी।
पौधों को देना है पानी। पूंजी है अपने भविष्य की।।12।।

मानव के सुख साधन

कुमारी राजरूपा साहा
कक्षा-IV, ए० पी० जे० विद्यालय
साल्टलेक, कोलकाता

जीव जन्तुओं और मानव के हित में, आया हूँ धरती पर।
एक सोच बस है मेरा, सब सुखी रहे धरती पर।।
मै देता फल, फूल और वह सब जो तुमको भायें।
मुझको चिन्ता रहती है, सब लोग पेट भर खायें।।
औषधि की हो तुम्हें जरुरत, मुझे याद कर लेना।
मेरे जड़, मेरे पत्तों के रस की बूंदें देना।।
लाखों लोग रात दिन गन्दा करते रहते वायु।
लोग पड़े बीमार और घटती जाती है आयु।।
मुझमे जितनी है ताकत, मैं इनके करुँ उपाय।
मानव के सुख का साधन है, मेरा सारा काय।।
अपना सब कुछ लुटा रहा, मानव को सुखी बनाने में।
जीवन मेरा धन्य हुआ, परहित में ही रम जाने में।।

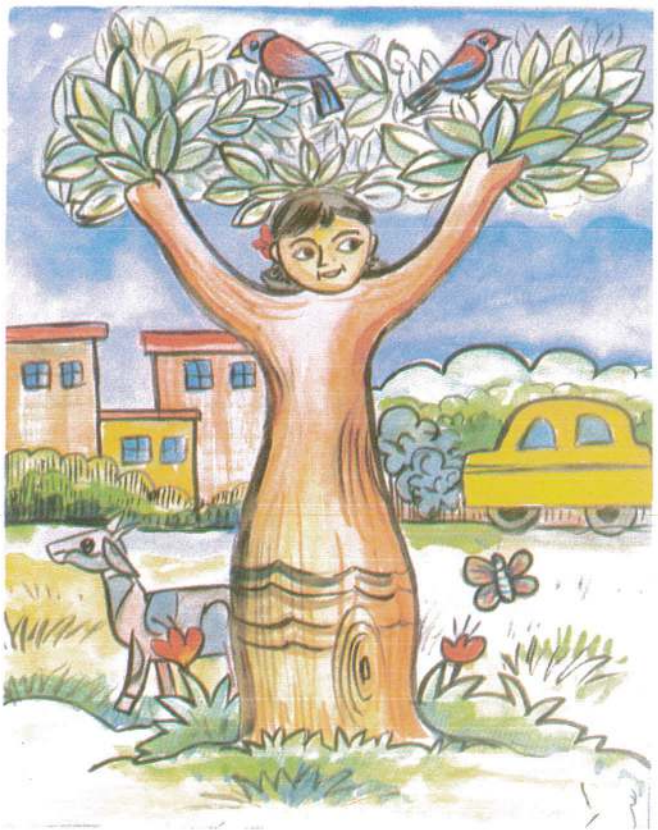

इन दिनों

मनोज कुमार
निदेशक/मुख्यालय
आ. नि. बोर्ड, कोलकाता

जीभ लपलपाते हुए सांप को
देखा है आपने, खुले हुए मैदान में ?
या फिर
गुजरा है कोई सर्र से
बगले से आपकी ?

पकड़ी है तितली
कभी फूलों पर बैठी
इठलाती हुई ?

क्या बैठती है गोरैया आकर
घर की मुंडेरों पर, आपके ?
क्या सुना है
मेढकों की टर्र-टर्र
गयी बरसात में इस बार ?

गूंजती हैं क्या
भौरों की गुन-गुन
बाग में इन दिनों ?
गए हैं किसी पोखर या
तालाब के पानी में ?
चूसा है खून आपका
किसी जोंक ने ?

देखा है किसी रोशनदान पर
चिड़ियों का घोंसला ?
पड़ा है कभी वास्ता
टिड्डियों के दल से ?
पूजा है गउओं को
इस साल दीवाली पर ?
दिया है दाना
कबूतरों को इन दिनों ?

नहीं न ?
हमारी फितरत ही हो गई है ऐसी
इन दिनों !
हमने छोड़ दी है परम्परा
और तोड़ डाला है संयुक्त परिवार
हो गए हैं एकाकी
बढ़ा ली है अपनी आबादी
मिटाकर उनको।
अपनी जिन्दगी से
कर दिया है बे-दखल इस तरह
कि ये सब
....अब होने को हैं विलुप्त !

आने वाली पीढियां
सुनेंगी इनके किस्से और कहानियाँ
कि होता था
एक तोता हरे रंग का
कि होती थी हरियाली
धरती पर कभी
कि बरसता था
फुहार-सा पानी धरा पर कभी
और इन सब के बीच
होता था मानव
जिसके चेहरे पर होती थी हंसी
उनके बीच भी होता था प्यार,
ऐसा था हमारा संसार।।

देंगे गिफ्ट में तब
इसी तरह का मॉडल, खिलोने, उपहार !

टूट-सा गया है ताना-बाना
पर्यावरण की शृंखला का।
मकान बनाने की होड़ में
नष्ट कर डाला हमने घर उनका,
जो होता था कभी
पेड़ की शाखाओं पर।

(स्वर्णिमा 2012 से साभार)

मन तरसे इक आंगन को

मनोज कुमार
निदेशक, आयुध निर्माणी बोर्ड

हुआ असहय
अब ये एकाकी
यांत्रिक जीवन
आपाधापी
मिले जो कोई मनभावन को,
मन तरसे इक आंगन को।

ओसारे पर ही बैठक
बहुओं की चुहलबाजियां
ननदों की शरारतें
देवरों की मस्तियां।

सासों के ताने
ससुर का खांसना
पुत्रवधुओं का घूंघट से
शर्माकर झांकना

देना इशारे छुप-छुप कर
सजनी का साजन को।
मन तरसे इक आंगन को।

शहर के फ्लैटों में
अपनों वाला आंगन नहीं
अपरिचित से चेहरे
बालकनी से झांकते कहीं-कहीं

कॉरीडोर की खुसर-पुसर
लिफ्ट का एकाकीपन
कंक्रीट के इस शहर में
ढूढ़ता मन
सर्द, शोख, चंचल, हवाएं
जो छूकर जाए दामन को।
मन तरसे इक आंगन को

अपने-अपने मन का संत्रास
दिल की व्यथाएं
ड्राइंग रूम की साजिशों में
दबती चौपाल की कथाएं

आंगन का तुलसी चौरा
सिमटकर गमले में
सुमनों की सुरभि की जगह
इत्र की शीशी का मकरंद

आग उगलती यहां की धरती
जाने क्या हो गया है सावन को
मन तरसे इक आंगन को।
वहां
छप्परों पर फैली कद्दूओं की लत्तियां
यहां
दो-चार मणीप्लांट की हरी-हरी पत्तियां
वहां
होली में गांव भर की भौजाइयों का
आकर रंगों से सराबोर कर जाना
यहां
पड़ोस के शर्माजी का, माथे पर
गुलाल का छोटा-सा टीका लगाना

औपचारिकता के बीच खोजूं
मानवता के आंगन को।
मन तरसे इक आंगन को।

(स्वर्णिमा 2012 से साभार)

पर्यावरण समाचार

संजीव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. विशालकाय तृणभोजी डायनासोर के मल से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हुई। उनके मल में मीथेन गैस का प्रतिशत बहुत अधिक होता था। मीथेन गैस कार्बनडाइक्साइड से भी अधिक प्रभावी होता है। इसके अतिरिक्त गाय, भेड़, जिराफ, हाथी जैसे अन्य शाकाहारी पशुओं के मल से 50 से 100 मिलियन मि. टन मीथेन गैस निस्सरण होता है। यह गैस पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करती है। (नैशनल जियोग्राफी)
2. रूस के कई शहरों में तापमान में अत्यधिक वृद्धि तथा जंगलों में आग के कारण कई शहरों का तापमान 38 डिग्री सेलसियस तक जा पहुँचा। पाकिस्तान में अभूतपूर्व बाढ़ से प्राय: 14 लाख लोग प्रभावित हुए। वैज्ञानिकों के अनुसार इन प्राकृतिक आपदाओं का एकमात्र कारण है 'तापमान में वृद्धि'। (दैनिक जागरण)
3. चेरनोबिल परमाणु दुर्घटना विश्व की सबसे भयानक नाभिकीय दुर्घटना मानी जाती है। उस समय 1,100 वर्गमील का इलाका खाली करवा लिया गया था। हाल के दिनों देखा गया है कि मनुष्य तो भय से इस इलाके में अभी नहीं जाते पर जानवरों का आवागमन फिर से प्रारम्भ हो गया है। (नैशनल जियोग्राफी)
4. अमेरिका और कुछ विकसित देश अब 'बोतल जल' की अपेक्षा नल के जल को प्रथमिकता देने लगे हैं। क्योंकि बोतल का जल बदला नहीं जाता। बोतल पोली कार्बोनेट प्लास्टिक के बने होते हैं जो हृदय रोग को बढावा देता है। अमेरिका व आस्ट्रेलिया में जल के टैंकों को हर समय साफ - सुथरा रखा जाता है। परन्तु विकासशील देशों में जल की सफाई चुस्त दुरुस्त नहीं है। (एनवायरनमेंट गारडियन)
5. तितलियों की प्राय: बीस हजार जातियां हैं। तितलियां विभिन्न रंगों की होती हैं। हम इन्हें पराबैंगनी रंगों में भी देख सकते हैं। वे अपने आपको छिपाने, रिझाने, इत्यादि के लिए रंगों का व्यवहार करते हैं। (एनिमल प्लेनेट)
6. क्यूबा में एक पादप प्रकाश में आया है जिसके पत्ते डिश आकार के होते हैं व ये फूल के उपर होते हैं। इस पादप का नाम *मार्कग्रेविया एवेनिया* है। इसके डिशनुमा पत्तों में एक विशेषता है कि ये चमगादड़ को काफी दूरी से भी अपनी ओर आकर्षित कर परागण करवा लेते हैं। (एनवायरनमेंट न्यूज नेटवर्क)
7. केले के छिलके जल प्रदूषण को नियंत्रण करने में उपयोगी हैं। विज्ञान के नवीनतम अनुसंधान के अनुसार केले के छिलके नदी में फेंकने से पानी में व्याप्त भारी धातु सिलिका व सीसा के अंश नहीं रहते। (वर्ल्ड मेटरेलोजिकल ऑर्गानाइजेशन)
8. रूस के वैज्ञानिकों ने साइबेरिया के निकट *साइलेन स्टेनोफाइला* नामक फूल का पौधा पाया है। रेडियों कार्बन डेटिंग ने पुष्टि की है कि इसका बीज 32 हजार वर्ष पुराना है व हिमयुग का है। इससे पहले का पौधा 30 हजार वर्ष पुराना था। (सांइस टुडे)
9. कोलकाता के एसप्लानेड, विक्टोरिया मेमोरियल, रेस कोर्स व हावड़ा के वनस्पति उद्यान के कई इलाकों में 'रेन ट्री' (समानिया समान) नामक वृक्ष सूखते जा रहे हैं। इन पेड़ों में सुगन्धित खुशबुदार गुलाबी और सफेद रंग के फूल खिलते हैं। छानबीन करने से पता चला कि कुछ खास किस्म के कीट इसके टहनी, छाल को चूसकर सुखा दे रहे हैं। (हिन्दुस्तान टाइम्स)
10. लंदन शहर हरियाली से परिपूर्ण है। इसके हर भाग में पार्क है। पार्क तालाब व वृक्ष से आच्छादित है। पूरे शहर में कुल 321 पार्क हैं। शहर के हर स्थान में हरियाली है। लंदन में मेयर ने 2 लाख घरों को हरियाली करने का वादा किया है। (एनवायरनमेंट गारडियन)

लेखकों के लिये निर्देश

सभी लेखक प्रकाशन हेतु रचनायें भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें-

- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना/अनुसंधान/उपयोग/महत्व, इत्यादि से सम्बन्धित एवं मौलिक होनी चाहिये। तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षो में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनायें A4 आकार के कागज पर 12 Font Size एवं द्विपंक्ति अन्तर (Double space) में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रूप से हस्तलिखित होनी चाहिये। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पाण्डुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छायाचित्रों की अधिकतम दो प्लेटें हों।
- कवितायें प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहें एवं कविता तुकान्त हो।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग : Class - वर्ग; Order - गण; Family - कुल; Genus - वंश; Species - जाति; Sub-species - उपजाति; Variety - प्रभेद; forma - रूप से करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम तिरछे अक्षरों (italics) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखांकित (underline) करें।
- वनस्पतियों का नाम लिखते समय कृपया ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् कोष्ठक में उस वनस्पति का वानस्पतिक नाम अंग्रेजी के अक्षरों में लिखें। यदि आवश्यक है तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित नामों के बाद करें।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार-बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग के पौधों से सम्बन्धित लेखों में रोगों के प्रचलित हिन्दी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- यदि आपका लेख मूल शोध पत्र नहीं है तो उसमें आभार एवं संदर्भों का प्रयोग नहीं करें।
- जहां तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रूप में प्रस्तुत करें जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में सम्मिलित फोटो-प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छाया चित्रों का अलग से जेपेग (jpeg) फाइल भेजें।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों में आभार सहित सन्दर्भ का उल्लेख आवश्यक है। कॉपी राइट नियमों का कदापि उल्लंघन नहीं करें।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं ही उत्तरदायी होंगे। अत: तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेंजे।
- सभी रचनायें प्रत्येक वर्ष की 30 अप्रैल तक अवश्य पहुँच जानी चाहिये अन्यथा उन्हें आगामी अंक में प्रकाशित करना संभव नहीं होगा।

राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु

सितम्बर 2011 में विभाग के सभी क्षेत्रीय केन्द्रों एवं कोलकाता / हावड़ा स्थित कार्यालयों में हिन्दी दिवस / सप्ताह/पखवाड़ा का आयोजन किया गया। इनमें विभिन्न प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रस्तुति हेतु सहभागियों को पुरस्कृत किया गया।

विभाग के अनेक कार्यालयों में 22 मई 2012 को अंतराष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के आयोजन में स्थानीय विद्यालयों के छात्रों के लिए प्रतियोगिताएं तथा जैव विविधता से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए।

अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर में डॉ.डी. आर सिंह, प्रभारी निदेशक, केन्द्रीय कृषि अनुसंधान ने सामुद्रिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव एवं उसके संरक्षण के उपायों की जानकारी दी। उन्होंने *मोरिंडा सीट्रीफोलिया* (नोनी) एवं बकौरिया स्पीडा (खट्टा फल) *यूलिफोलिया अंडामानिका* के औषधीय एवं आर्थिक गुणों पर प्रकाश डाला. डॉ. संतोष माने, अनुसंधान अधिकारी, आयुष अस्पताल ने सामुद्रिक संपदा के आयुर्वेदिक महत्व से विद्यार्थियों को अवगत कराया।

अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर, दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र, कोयम्बटूर, आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान एवं केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा ने राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण चेन्नई तथा पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा आयोजित समारोह में खाड़ी और तटीय वनस्पतियों पर पोस्टर प्रदर्शित किये।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के दक्कन क्षेत्रीय केन्द्र, हैदराबाद और भारतीय प्राणि सर्वेक्षण ने संयुक्त रूप से छात्रों के लिए विभिन्न प्रतियोगिताएं आयोजित की। विभाग के वैज्ञानिकों ने छात्रों को भारत में मैंग्रोव विविधता की जानकारी दी।
विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून) विभाग के लिए अत्यन्त महत्भपूर्ण अवसर होता है। इसके लिए आयोजित कार्यक्रम में जनजागरण को प्रमुखता दी जाती है।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा आयोजित ''विश्व पर्यावरण दिवस समारोह'' में डॉ. परमजीत सिंह, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण डॉ. सुधांशु शेखर दाश, वैज्ञानिक-सी, सहभागी हुए। श्रीमती जंयती नटराजन, राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) पर्यावरण एवं वन मंत्रालव ने विभाग द्वारा प्रकाशित ''वनस्पति अन्वेषण 2011'' का विमोचन किया।

निरीक्षण

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने 10 जनवरी 2012 को उत्तर क्षेत्रीय केन्द्र, देहरादून कार्यालय में एवं डॉ प्रसाद मधुकर पाध्ये, वैज्ञानिक-इ ने 23.8.2012 को पश्चिमी क्षेत्रीय केन्द्र, पुणे में राजभाषा कार्यान्वयन का निरीक्षण किया। श्री निर्मल कुमार दुबे, अनुसंधान अधिकारी (कार्यान्वयन) ने 10.9.2012 को मुख्यालय में राजभाषा का निरीक्षण किया।

हिंदी पदों पर भर्ती

विभाग के विभिन्न कार्यालयों के लिए सृजित कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक एवं हिन्दी टाइपिस्ट पदों पर भर्ती से संबंधित आदेश 20.10.11 को जारी किया गया।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोलकाता में सहभागिता

डॉ परमजीत सिंह, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण एवं क्षेत्रीय अध्यक्ष, कोलटालिक क्षेत्र-8 दिनांक 23.8.2012 को 41 वीं बैठक में सहभागी हुए।

डेक्कन क्षेत्रीय केंद्र, हैदराबाद में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस

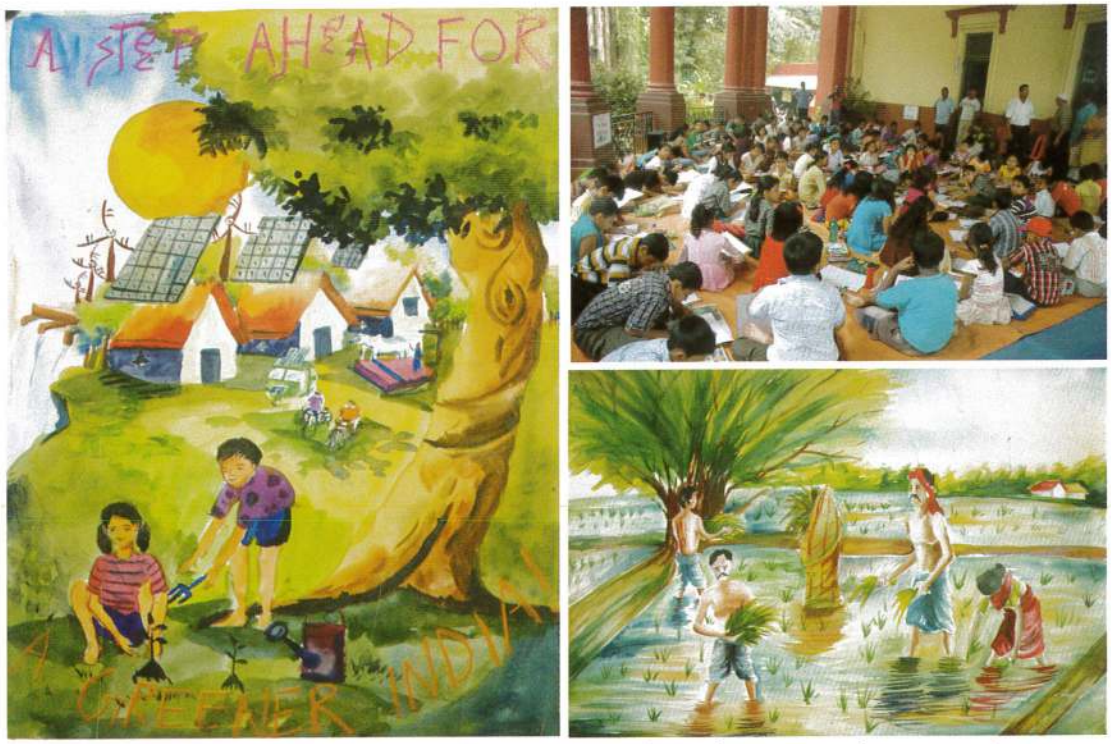

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून 2012 को चित्रकला प्रतियोगिता में प्रतिभाग करते छात्र-छात्राएं एवं प्रतिभागियों द्वारा दर्शाया गया प्रकृति-चित्रण।